नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

ाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
बिलंब न भात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल
ध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार
त करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न

हरिश्चन्द्र।

ाग ८ } सितम्बर सन् १९०३ ई० { संख्या १

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)

वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस

मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 25th August, 1903.

सभा सम्बन्धी समाचार ।

(१) सभा का दसवां वार्षिक अधिवेशन तारीख़ १६ ... को हुआ था जिसमें इस वर्ष के लिये निम्न लिखित कार्यकर्ता ... प्रबन्धकारिणी सभा के सभासद चुने गए–

सभापति–महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी ।
उपसभापति–बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए० ।
बाबू गोविन्ददास ।
मंत्री– बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० ।
उपमंत्री–बाबू बेणी प्रसाद ।

प्रबन्धकारिणी सभा के अन्य सभासद–
बाबू जुगलकिशोर । बाबू कार्तिक प्रसाद ।
पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए० ।
पण्डित छन्नूलाल । बाबू अमीरसिंह ।
बाबू माधव प्रसाद । बाबू राधाकृष्ण दास ।
पण्डित बाजीराव भाटे । बाबू रामप्रसाद चौधरी ।

(२) सभा का नियमित मासिक अधिवेशन शनिवार ता... २५ जुलाई को हुआ था जिसमें १५ महाशय नवीन सभासद ... गए और ३ महाशयों का इस्तीफ़ा स्वीकार किया गया । इस ... वेशन में पण्डित छन्नूलाल ने "अदालतों में नागरी का प्रच... विषय पर एक वक्तृता दी ।

(३) इस वर्ष के लिये पत्रिका के सम्पादक बाबू श्याम... दास बी० ए०, ग्रन्थमाला के सम्पादक बाबू राधाकृष्ण दास, ... कालय के सुपरिण्टेण्डेण्ट बाबू जुगलकिशोर, और नागरी प्रच... सुपरिण्टेण्डेण्ट बाबू माधव प्रसाद चुने गए हैं ।

(४) वैज्ञानिक कोश पर विचार करने के लिये पंजाब ... टेक्स्टबुक कमेटी ने लाला मुंशी राम के स्थान पर लाला ... राम को चुना है ।

(५) सभा ने निश्चय किया है कि वैज्ञानिक कोश को द... कर ठीक करने के लिये कोश के रचयिताओं, शिक्षा वि... के प्रतिनिधियों और चुने चुने वैज्ञानिक लोगों की एक सभा का... तारीख़ २१ सितम्बर से प्रारम्भ होकर २ अक्तूबर तक इस कार्...

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

आठवां भाग ।

मनोविज्ञान ।

(पण्डित गणपत जानकीराम दूबे बी. ए. लिखित)

अध्याय १ ।

खंड १ ।

विज्ञान अथवा शास्त्र–किसी विषय के युक्ति सहित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। कोई विषय होवे उसके नियम, उपपत्ति (Theory), उदाहरण द्वारा सिद्धता इत्यादि के संपूर्ण ज्ञान को विज्ञान यह नाम दिया जाता है। उदाहरण के लिये गणित शास्त्र लीजिए। इस शास्त्र के नियम और उपपत्ति इत्यादि इस तरह स्थिर हो चुके हैं कि गणित शास्त्र अब सर्वांगपूर्ण गिना जाता है। आधुनिक विज्ञानों में सबसे अधिक संपूर्णता को जिसने पाया है वह केवल गणित शास्त्र है। जिन विज्ञानों के नियम अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हो चुके हैं वे अपूर्ण दशा में हैं और क्योंकि विद्वान उन विज्ञानों के नियमों की खोज करने में और जो नियम हुए उन्हें स्थिर करने में लगे हुए हैं इसलिये उन विज्ञानों को अपूर्ण कहना चाहिए। जिन विज्ञानों की ऐसी उन्नति अभी हो रही है परिपक्व दशा की ओर जिनकी प्रवृत्ति ही है उन्हें अंग्रेज़ी में (Progressive Sciences) अर्थात प्रगतिशील विज्ञान कहते हैं।

इस लेख का विषय अर्थात् मनोविज्ञान, जिसे कोई कोई लोग मानस शास्त्र भी कहते हैं, उन्हीं प्रगतिशील विज्ञानों में से एक है। यह सब लोगों का अनुभव है कि जो विषय अधूरी

और अपरिपक्व दशा में है उस पर ग्रंथ लिखना पहिले तो कुछ कठिन है और दूसरे, विवाद का कारण होता है। जिन बातों को आज सत्य समझकर नियम बनाया, उन्हीं के कल नई खोज और शास्त्रीय अनुभव के कारण असत्य और अपवादक जान पड़ने का डर रहता है, तथा मनोविज्ञान जैसा गूढ़तम विषय, नवीन, और मनुष्य की नियमित बुद्धि से परे और अगम्य होने के कारण कहीं कहीं तो बहुतही दुर्बोध और दुर्गम हो जाता है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि और गूढ़ विज्ञानों की अपेक्षा इस शास्त्र का बिलकुल यही हाल है। इसी कारण लेखक को इस विषय की कठिनता और स्थल विशेष में अज्ञानता का भी पूरा अनुमान हो चुका है। परंतु इतनाही सोच कर कि हिंदी साहित्य में विज्ञान विषयक चर्चा की बहुत कमी है, यह बहुत छोटा यत्न किया गया है। यह साहस का काम तो है ही परंतु यहां यह भी साफ साफ कह देना चाहिए कि इस लेख का उद्देश्य न तो सारे विषय का विस्तृत विवरण करने का है और न यह बात आरंभ में हो भी सकती है। यह तो केवल इस ओर एक बहुत ही साधारण यत्न मात्र है, इससे अधिक नहीं है। आजकल के लोगों की, और विशेष कर पश्चिमी लोगों की यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि किसी विषय अथवा शास्त्र वा कला का बड़प्पन उस शास्त्र की उपयुक्तता और उपयोगिता की दृष्टि से समझा जावे। इस विचार से तात्विक और आध्यात्मिक विज्ञानों को भौतिक-विज्ञान-कार लोग कुछ काल तक केवल थोथा और अनुपयुक्त समझते थे। यहां तक कि तत्वज्ञ (Philosopher) एक ऐसा पशु गिना जाने लगा था कि वह इस संसार में किसी प्रकार भी उपयोगी पदार्थ नहीं जंचता था! परंतु परिवर्तन इस सृष्टि का नियम ही है। सारे भौतिक शास्त्रों की अंतिम दशा यह होती है कि मनुष्य का मन केवल जड़ पदार्थों के नियम और चमत्कारों का पूरा पूरा ज्ञान होने पर भी संतुष्ट नहीं रहता। वह उन नियमों को बनाने की शक्ति रखने वाले और उनको समझने वाले मन की ओर झुकने लगता है। इसी कारण वैज्ञानिक लोग, पदार्थ विज्ञान, रसायन, भिषक्, शारीर इत्यादि शास्त्रों की उन्नति करने पर भी

असंतुष्ट हो, मनोविज्ञान की ओर प्रवृत्त होने लगे। पश्चिमी देशों में भी मनोविज्ञान कुछ नवीन विषय नहीं है, क्योंकि तत्ववेत्ता सक्रतिक (Socrates) का यह सूत्र "Know thyself" अर्थात् "आत्मानं जानीहि" (क्या यह हमारे दार्शनिक 'तत्वमसि' इस सूत्र का समानार्थी है?) यह ज्ञात कराता है कि मानसिक तत्वों का विचार और उसकी खोज नई नहीं है किंतु पुरानी है। वही आज्ञारूपी सूत्र किसी प्रकार नए रूप में डिकार्तिक (Descartes) ने अपने "Cogito ergo Sum" यानी "To think is to live" अर्थात् विचार करना यही जीवन दशा का प्रमाण है, से व्यक्त किया है। फिर बाद में विरचिमाली (Malebranche), अर्णाल्ड (Arnold), लेबनीज़ (Leibnitz) लाक (Lock) बर्क्ले ह्यूम, इन सबों ने अपने अपने शास्त्रीय ग्रंथों में मनोविज्ञान को उत्तम स्थान दिया है। इनके पीछे काण्ट और रीड इन लोगों ने तथा उनके अनुगामियों ने, मानस शास्त्र को तर्क, नीति, अध्यात्म इत्यादि शास्त्रों की केवल प्रस्तावनारूप-अवस्था ही में नहीं छोड़ा, किंतु उसका स्वतंत्र विचार कर उसे एक निराले विज्ञान का रूप दिया, और तब से इसकी उन्नति हो रही है। आज कल तो इस शास्त्र की इतनी उपयुक्तता प्रमाणित की गई है कि उच्चशिक्षा की पूर्णता के लिये यह एक आवश्यक विषय समझा जाता है, और यह ठीक भी है, क्योंकि मनुष्य मात्र के सब काम, मन की केवल प्रतिबिम्ब रूप प्रत्यक्ष घटना हैं। इसीसे शिक्षा, शिशुपालन, व्यवहार, नीति, नियमन, शासन, कला, शास्त्रीय खोज, सौंदर्य विज्ञान, रसविज्ञान, स्वभाव रचना तथा स्वभाव परीक्षा इत्यादि अनेक विषयों के लिये मन के गूढ़ तत्वों का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक हो रहा है। तात्पर्य यह है कि मनोविज्ञान अब सब विज्ञानों का मुकुटमणि अथवा 'शेखर' हो बैठा है। उसके सिवाय किसी विज्ञान की उन्नति और सम्पूर्णता नहीं हो सकती। इसी कारण शास्त्रीय पद्धति के अनुसार मनोविज्ञान का अभ्यास अधिक यत्न के साथ किया जाता है और वह करना भी चाहिए।

खंड २।

मन और मनोविज्ञान की परिभाषा।

जब तक मन क्या वस्तु है इसका यथार्थ ज्ञान नहीं होगा तब तक मनोविज्ञान की परिभाषा ठीक नहीं होगी, न वह ठीक ठीक समझ में आवेगी। इस लिये हम मन ही के बारे में पहिले विचार करेंगे।

मनुष्य प्राणी को ईश्वर ने मन और शरीर इन दो चीजों से निर्माण किया है—यह लोग मानते हैं। शरीर तो स्थूल अथवा जड़-पदार्थ-विषयक होने के कारण भिषक् और प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओं ने इसका बहुत कुछ विचार किया है। पदार्थ विषयक शरीर, पदार्थ विज्ञान के नियमों के अनुसार केवल आलोचना करने के योग्य ही नहीं है किन्तु उसके व्यापार, क्रियाएं, गुण धर्म सब उसी शास्त्र के नियमों के अनुसार होते हुए देख पड़ते हैं, इसी कारण शरीर शास्त्र का अभ्यास कुछ कुछ सुलभ है। परन्तु मन तो अत्यन्त गूढ वस्तु होने के कारण मानसिक क्रिया, व्यापार, गुणधर्म इत्यादि का ज्ञान होने में कठिनाई होती है, और फिर उनके नियमों को छांट कर शास्त्र रूप में रखना तो और भी कठिन है। इसलिये मन क्या है तथा शरीर क्या है यह जानना सहज नहीं है, परन्तु मन का बोध उस के प्रकाशित कार्यों से होता है।

मन की परिभाषा पश्चिमी विद्वानों ने कई प्रकार से की है। हम उनमें से कुछ उदाहरण यहां अनुवाद रूप से देते हैं "मन इस शब्द से जो कुछ हमें बोध होता है वह यह है कि मनुष्य में मन वह (वस्तु) है जो विचार करता है स्मरण करता है, तर्क करता है और आकांक्षा करता है।" यह व्याख्या पंडितवर रीड साहिब ने की है। परन्तु यह किसी प्रकार मन की परिभाषा नहीं हो सकती। इसे हम "वर्णन" कह सकते हैं। मानसिक क्रियाओं का अनुभव करने से यह ज्ञात होता है कि मन इतने कार्यों का कर्ता है। इससे पहिले तो मन की सारी क्रियाओं का ही नामनिर्देश नहीं किया,

यदि इतना किया होता तो किसी प्रकार वर्णन तो संपूर्ण होता। दूसरे मन के विशिष्ट गुण का (Differentia) अथवा गणजाति (Genus) का बोध नहीं होता है। तर्क शास्त्र में परिभाषा की परीक्षा करने के जो नियम दिए हैं उनमें एक नियम ऐसा है कि परिभाष्य वस्तु का विशिष्ट गुण दिया जाय, अथवा गणजाति और विशिष्ट गुण दोनों दिए जांय, परन्तु यहां विशिष्ट गुण देने में अपूर्णता रह गई और गणजाति में मन को (वस्तु) कहा है, परन्तु वस्तु यह शब्द अर्थपूर्ति के लिये अनुवादकर्ता ने लिखा है। मूल में उस अर्थ का कोई शब्द नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि रीड साहिब को मन की गणजाति का पता नहीं चला!

फिर पश्चिमी वैज्ञानिकों में रीड साहिब का समकालीन और रीड के ग्रंथों का समालोचक ह्यूम नामक एक बड़ा संशयात्मा पुरुष था। उसकी कुशाग्र बुद्धि होने पर भी वह मन के तत्व को पूरी तरह समझ न सका। मन के विषय में ह्यूम ने इस प्रकार कहा है। "जिसे हम मन कहते हैं वह केवल भिन्न भिन्न विषयक इंद्रिय ज्ञान की राशि अथवा ढेर है, जो किसी अज्ञात संबन्ध से एकत्रित हो जाता है।" इस परिभाषा की ओर देखिए! ह्यूम (धात्वर्थ से हिनोति प्रेष्यति युतिं संबन्धं इति ह्यूमः, one who sends out the Law of Cause and Effect) कार्य कारण भाव का प्रसारक हो कर भी मन के विषय में, कौन सा संबन्ध इन्द्रिय ज्ञान की राशि बनाता है यह स्वयं न देख सका, और दूसरे, मन को एक राशि अथवा ढेर समझने वाला तत्ववेत्ता एक तो भाषा से अनजान होगा अथवा जड़ पदार्थों के सिवाय आध्यात्मिक सृष्टि से कुछ भी परिचित नहीं होगा! हा! संशयात्मा ह्यूम! औरों के मतों के खंडक होकर भी तुम मन की व्याख्या करने में स्वयं असमर्थ रहे!

अब बर्क्ले (वर्हते वदति परं क्लाम्यते भ्रांतिमायाति, speaks but is confused बोलता है परन्तु भ्रांत होता है) जो कि कल्पनावादी थे मन के विषय में यों कहते हैं। "ज्ञान विषयक कल्पनाओं के परे एक कोई ऐसी वस्तु है जो इन कल्पनाओं को देखती है, समझती है और उन कल्पनाओं के विषय में कई प्रकार की क्रिया करती है

जैसे आकांक्षा, तर्कना, स्मरण। यह देखने वाली चैतन्यमय वस्तु वह है जिसे मैं मन, जीव, अथवा आत्मा कहता हूं।" इस परिभाषा को पढ़ते ही यह ज्ञात हो जाता है कि मन के विषय में कहा तो सही परन्तु मन को भ्रांति के कारण आत्मा और जीव का समानार्थी समझ लिया, अर्थात् मन की परिभाषा में, भ्रम हो जाने के कारण, जीव और आत्मा को भी घसीट लिया। हमारे दार्शनिक ऋषियों की, प्रश्नोपनिषत् में दी हुई आत्मा की परिभाषा को देखिए।

"एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः" (सरस्वती)

इसमें विशिष्टगुण वर्णन तो दिया ही है परन्तु गण जाति भी दी है, अर्थात् पारिभाषिक नियम को उत्तमता से निबाहा है।

आगे चलकर आधुनिक वैज्ञानिकों में अति प्रसिद्ध तत्ववेत्ता मिल्ल साहिब (मिलति लसति च मिल्लः associates and shines अर्थात् मिलता है और शोभता है) क्या कहते हैं वह देखें। मिल्ल साहिब कहते हैं "मेरा मन केवल मनोविकारों की एक प्रणाली अथवा माला है अथवा जैसे कहा है अन्तर्बोध की रस्सी है।" मिस्टर मिल्ल अनुभववादी हैं और अपने मन के केवल एक ही ओर का अनुभव पाने के कारण मन को केवल मनोरागों की प्रणाली प्रतीत करते हैं। मनोराग (Feeling) मन के स्वरूप का एक अंश मात्र है। तो मिल्ल साहिब को भी मन का ठीक अन्त न मिला।

मनोराग के अतिरिक्त मन के दूसरे अंगों का विचार जिस तत्ववेत्ता ने किया वह बेन है। (बेन को यदि हम वेण बनावें तो वेण धातु का अर्थ to know, to preceive, to reflect जानना, परिज्ञान करना, चिन्तन करना है, अर्थात् वेण्यते ज्ञायते अनेन इति वेणः ऐसा यदि हम घटित करें तो गीर्वाण रीति से बेन शब्द ही का अर्थ तत्त्वविद् होता है। देखिए! कैसा काकतालीय न्याय है!) वेण पण्डित भी मन की वैज्ञानिक-परिभाषा देने में असमर्थ हो कहते हैं कि "मनोविज्ञान की दृष्टि से मन के तीन विशेष गुणों की गिनती करने से मनस् का यथार्थ बोध होगा। वे तीनों गुण अर्थात् मनोराग (Feeling) संकल्प (Willing) और बुद्धि (Intellect) हैं जिन

के द्वारा हमें अपने मानसिक तथा पदार्थ विषयक अनुभवों का बोध होता है।"

. ऊपर लिखे प्रतिपादन से यह ज्ञात हो जायगा कि मन यह वस्तु इतनी गूढ़ है कि उसके गुणों में से विशिष्ट गुण का निश्चित करना ही बड़ा कठिन है, और उसकी गणजाति कहना तो उससे भी कठिन है। इसी कारण मन की शास्त्रीय परिभाषा बनाने में वैज्ञानिक लोग अब तक असमर्थ हो रहे हैं। तो भी इस विषय में पश्चिमी तत्ववेत्ताओं ने किस प्रकार उन्नति की है और वे कितने चिन्तनशील हैं इसका पूरा अनुमान हो जायगा। क्योंकि आज तक किसी तत्ववेत्ता ने मन की यथाशास्त्र परिभाषा नहीं की। आज तक साधारण रीति से सब मनोविज्ञानकार लोग बेण पण्डित ही की गिनती को स्थिर समझ कर मन का वर्णन अथवा व्याख्यान करते हैं और उसीसे अपना काम चलाते हैं। इस लेख में भी "महाजनो येन गतः स पन्था" इस न्याय से बेण पण्डित ही की व्याख्या का अनुकरण किया है।

इस लेख का यह उद्देश्य नहीं है कि पश्चिमी विज्ञान से दार्शनिक विचारों की समता या उसका भेद बताया जावे। तो भी मन के विषय में हमारे भारतवासी ऋषियों ने कहां तक सोचा था इतना ही बतलाने के लिये एक दो उदाहरण लेते हैं। हमारे भारतीय दार्शनिक ऋषियों ने मन को द्रव्य माना है। वैशेषिक सूत्रों में द्रव्यों की गिनती इस प्रकार दी है—

"पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशंकालोदिगात्मा मन इति द्रव्याणि" अ० १ आ० १ सू० ५। (सरस्वती)

द्रव्य वह है जिसमें क्रिया और गुण होते हैं परन्तु इससे यह नहीं जान पड़ता कि मन में क्रिया पैदा करने की भी शक्ति है अथवा नहीं परन्तु इस बात को न्यायशास्त्रकारों ने अधिक स्पष्ट कर दिया है। वे लिखते हैं—

"सर्वेन्द्रियप्रवर्तके अन्तरेन्द्रिये" मनः।

इससे यह जान पड़ता है कि मन एक अन्तरेन्द्रिय है जो सारी इन्द्रियों का—चाहे वे मानसिक हों या शारीरिक,—प्रवर्तक है।

अर्थात् मन के अनुरोध से सारी इन्द्रियों के कार्य होते हैं। मन सब इन्द्रियों का एक नियमबद्ध करने वाला राजा है। इससे यह ज्ञात होता है कि हमारे दार्शनिक ऋषियों ने मन को अन्तरेन्द्रिय माना है। अब वह अन्तरेन्द्रिय है या नहीं यह प्रश्न अलग है, परन्तु मन की व्याख्या देखिए कैसी सशास्त्र है। गणजाति और विशिष्ट गुण दोनों इस परिभाषा में विद्यमान हैं।

मनोविज्ञान की परिभाषा।

मनोविज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें मन, उस की स्थिति, अनुभव, और क्रियाओं का तथा उन्हें नियमन करने वाले नियमों का पूरा विवरण दिया हो। थोड़े में, मन सम्बन्धी शास्त्र को मनोविज्ञान कहते हैं।

खंड ३।

मनोविज्ञान का स्थान, उसके विभाग तथा और विज्ञानों से उसका सम्बन्ध।

सजीव वस्तु विषयक शास्त्रों में मनोविज्ञान को दूसरा स्थान दिया जाता है। जो शास्त्र प्राणिमात्र के विषय में विचार करता है उसे प्राणिशास्त्र कहते हैं। प्राणिशास्त्र का क्षेत्र अधिक फैला हुआ होने के कारण उसे पहिला स्थान दिया गया है। और सब प्राणियों में वह प्राणी जो मनोविभूषित है उसके विषय में जिस शास्त्र में व्याख्यान किया जाता है उसे मानसशास्त्र अथवा मनोविज्ञान कहते हैं। मनोपण्डित प्राणि जिसे मनुष्य कहते हैं समाजकर्ता हो सकता है! इसलिये समाज-करण-शील मनुष्य का जिस शास्त्र में विवरण हो वह समाज शास्त्र कहाता है। इससे पहिले

(१) प्राणिशास्त्र, फिर
(२) मनोविज्ञान और तब
(३) समाज शास्त्र।

मनोविज्ञान के विषय के अनुरोध से उसके तीन विभाग हो सकते हैं। मन के तीन गुणों के अनुसार ये विभाग होते हैं-जैसे (१) जब मन का विषय, बोधन होता है तब उस विद्या को बुद्धि विशिष्ट-मनोविज्ञान कहते हैं (Psychology of knowing)। इसी को तर्क विद्या कहते है। तर्क विद्या में विचार पद्धति, तथा विचार शक्ति के नियमों का व्याख्यान होकर अलंकार अथवा चित्त प्रसादन की कला तथा मत विधान भी हों। (२) जब मन का विषय मनोराग होता है तब उस विद्या को मनोराग-विशिष्ट मनोविज्ञान कहते हैं (Psychology of Feeling)। यह सौंदर्य शास्त्र है। अचम्भा उत्पन्न करने वाली और सुन्दर वस्तुओं से जो नियम हमारे मनोरागों पर अधिकार करते हैं उन नियमों का जिसमें समावेश होता है उसे सौंदर्य शास्त्र कहते हैं। (३) और जब मन का विषय संकल्प होता है तब उस विद्या को संकल्प-विशिष्ट-मनोविज्ञान कहते हैं (Psychology of Willing)। यह नीति विद्या है। अच्छे और बुरे के विचार से कर्तव्याकर्तव्य का विचार जिसमें कहा है उसे नीति शास्त्र (Ethics) कहते हैं। उसमें राजनीति, प्रजापालन, शासन, प्रबन्ध के नियम इत्यादि भी होते हैं। अर्थात् मनोविज्ञान के अंश तीन शास्त्र हैं-(१) तर्क शास्त्र, (२) सौंदर्य शास्त्र और (३) नीति शास्त्र। मनोविज्ञान में इन तीनों का केवल तात्विक विचार किया जाता है याने मन की तीन शक्तियां उनके गुण और कार्य तथा उनसे उत्पन्न होने वाली और मानसिक शक्तियों का विचार किया जाता है। इन विद्याओं से मनोविज्ञान का तो सचमुच सम्बन्ध है ही, परन्तु जितने शास्त्र मनुष्य के विचार, मनोराग और कार्यों से सम्बन्ध रखते हैं अथवा उन्हें रास्ता दिखाते हैं उन सभों का मूल मनोविज्ञान ही है। इस कारण वक्तृता, कायदे बनाना, इत्यादि बड़े काम मनुष्य के मनोधर्म और तत्वों के ठीक ठीक ज्ञान पर निर्भर हैं।

मनोविज्ञान का जिस शास्त्र से घना सम्बन्ध है वह प्राणिशास्त्र है। प्राणिशास्त्र को अंग्रेज़ी में (Physiology) कहते हैं। जीवधारी तथा वनस्पतियों के अवयवों का और उनके कार्यों का वैज्ञानिक

रीति पर विचार इस शास्त्र में किया जाता है। मनोविज्ञान का प्राणिशास्त्र से इतना निकट सम्बन्ध होने का कारण यह है कि किसी न किसी प्रकार मानसिक स्थिति की भावना, शारीरिक इन्द्रियों के कार्यों पर निःसंदेह निर्भर होती है। जैसे आंख के बिना देखना, और कान के बिना सुनना नहीं हो सकता। मन की शक्तियों की उत्पत्ति और कारणों का जानना यदि बड़ा तात्त्विक प्रमेय है तो जो तत्ववेत्ता उसको, शरीर सम्बन्धी चैतन्य विद्या के (Physiology of Sensation) बिन जाने, हल करने का यत्न करता है उसका यत्न उतना ही मूर्खता का होगा जितना कि किसी प्राणिशास्त्रवेत्ता का, जो कि यन्त्र शास्त्र के नियमों को जाने बिना एंजिन पर व्याख्यान देने पर कटिबद्ध हो जावे! मतलब इतना ही है कि मनोविज्ञानकार को शारीरिक क्रिया और शारीरिक इन्द्रियों के गुण धर्मों का ज्ञान अच्छी तरह होना चाहिए। और मानसिक बोध होते समय शारीरिक इन्द्रियों में क्या क्या प्राकृतिक क्रियाएं हो जाती हैं इसका ज्ञान वैज्ञानिक रीति से होना चाहिए।

खंड ४।

मन और मस्तिष्क।

मन का शरीर से निकट सम्बन्ध है। जब मन में कोई क्रिया होती है तो उसी समय मस्तिष्क में कुछ क्रिया होती है—यह बात अब सिद्ध हो चुकी है परन्तु इससे यह नहीं जान पड़ता है कि मस्तिष्क में ज्ञानतन्तुओं में एक विशेष क्रिया होने से अन्तर्बोध होता है। यदि कोई यह कहे कि अन्तर्बोध मज्जा-तन्तुओं की क्रिया से उत्पन्न होता है तो समझना चाहिए कि वह बड़ी भूल करता है। मज्जा में विचार करने की शक्ति नहीं है। उसमें केवल गति होती है। मज्जा तन्तु-जाल (Nervous System) में यदि कोई व्यापार हो तो उसकी कल्पना केवल यही हो सकती है कि उसमें किसी एक प्रकार का चलन हो गया। वैसे ही चेतना (Sensation), अंतःबोध (Consciousness) आदि का स्थान नहीं स्थिर कर सकते, जैसा

कि संचलन होना मज्जा तन्तुओं में स्थिर कर सकते हैं। मन और मज्जा की क्रियाओं में सहकालता का ही एक सम्बन्ध है। मन की क्रियाओं का विचार और स्पष्टीकरण मस्तिष्क की क्रियाओं से नहीं हो सकता, मन का विचार मस्तिष्क को छोड़कर कर सकते हैं, जैसा कि डाकृर वारद ने किया है। परन्तु कहीं कहीं डाकृर साहिब को प्राणिशास्त्रीय दृश्यों का सहाय लेना ही पड़ा। सच तो यह है कि शरीर के अद्भुतालोकों का विचार न करते मन का विवेचन होना असम्भव है। यह बात विज्ञानों की उन्नति से दृढ़ होती जाती है और आधुनिक मनोविज्ञान के तत्ववेत्ता लोग इस शास्त्र का विचार निरी मानसिक दृष्टि से नहीं करते। उपाध्याय राबार्तसून (Robertson) कहते हैं कि यदि मन और शरीर का निरीक्षण साथ ही साथ होना उचित है तो हमारा यह कर्तव्य है कि अपनी मनोविज्ञान की विचारणा को जहां तक हो सके हम प्राणिशास्त्र के विचारों से सम्मिलित करें और यदि यह करना आवश्यक है तो हमें मज्जा-तन्तु-जाल के कार्यों से बार बार सम्बन्ध दिखलाना पड़ेगा। इस लिये यहां यदि उस मज्जा-तन्तु-जाल का संक्षिप्त वर्णन देदिया जाय तो अयोग्य न होगा।

मज्जा-तन्तु-जाल, तन्तु (fibers) और घटकों का (cells) बना होता है, और देखने में मुंड के मध्य टेढ़ा मेढ़ा सा गोलाकार होकर पृष्ठवंश में से नीचे को पेड़ की डालियों सा फैलता हुआ मालूम होता है। तन्तु और घटक बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। कई तन्तु एकट्ठे होने से नसें बनतीं हैं। उन्हें स्नायु भी कहते हैं। तन्तु सर्वत्र घटकों में जाकर मिलते हैं और घटक फैलकर तन्तु बन जाते हैं। घटक शक्ति के संग्रह का स्थान हैं जहां शक्ति का समूह इकट्ठा जमा रहता है। तन्तु संचालन अथवा गति के नेता होते हैं। वह संचालन जो कि तन्तु द्वारा भीतर को जाता है उसे प्रोत्साहन (Stimulons) कहते हैं, प्रोत्साहन शक्ति को ले जाकर घटक में छोड़ देता है। वह शक्ति घटक में से दूसरे तन्तु के द्वारा जाकर परमाणुओं में चलन उत्पन्न करती है। इस परमाणु संचलन को उत्तेजन (Impetus) कहते हैं। कुछ तन्तु समूह अर्थात नसों में दो प्रकार की गतिवाहक शक्ति

होती है, जैसे कि पृष्टवंश की नसों में। इनमें यह शक्ति है कि वे प्रोत्साहन को लेती हैं और उत्तेजन को बाहर भेजती हैं। वे नसें जो प्रोत्साहन को ले जाती हैं उन्हें (Sensory Nerves) अर्थात् चेतना वाहक नसें कहते हैं और जो नसें उत्तेजन को ले जाती हैं उन्हें (Motor Nerves) गति वाहक नसें कहते हैं। तन्तु सम्बन्धी हर एक क्रिया फिर वह कितनी भी संकीर्ण अथवा मिश्र हो इस ऊपर कही हुई प्रणाली में सन्निविष्ट की जा सकती है, यद्यपि एक क्रिया के लिये सारे तन्तु-जाल की आवश्यकता नहीं होती। कोई घटक को केंद्र भी कहते हैं। केंद्र दो प्रकार के होते हैं-सूक्ष्म अथवा लघु केंद्र और उच्च केंद्र। लघु केंद्र उच्च केंद्रों के सहायक होते हैं, परन्तु वे मज्जा तक प्रोत्साहन को नहीं ले जाते। एक तन्तु केंद्र से दूसरी जाति के केंद्र को उच्च केंद्र इस लिये कहते हैं कि पहिला दूसरे के समान अधिक संकीर्ण नहीं होता। उच्च केंद्र सूक्ष्म केंद्र का समान क्रम (Co-ordinate) होता है और उसी प्रकार प्रतिषेधक भी (Inhibitory) होता है। उच्च केंद्र में उसी क्रिया की पुनरुक्ति होती है जो पहिले अर्थात् सूक्ष्म केंद्र में हो चुकी हो। इस प्रकार सब से ऊँचा केंद्र अर्थात् मस्तिष्क सारे केंद्र और तन्तु जाल से लगा हुआ है। वह सारी मज्जा प्रणाली का देखने वाला है। मज्जा तन्तुओं का उस पर परिणाम होता है, और वह मस्तिष्क के आधीन, मज्जा तन्तु, केंद्र आदि का चलानेवाला है। तो भी जो कुछ काम मस्तिष्क में होता है वह एक मिश्र जातीय परिमाणुओं की गति की घटना मात्र है।

जो कार्य मज्जा केन्द्रों में होता है उसके हो जाने पर उसका कुछ परिणाम मज्जा में रह जाता है और जितना वही कार्य बार बार होवे उतना ही मज्जा के घटकों की रचना में अदल बदल होता है और उत्तेजन, परिक्रम (Circuit) और प्रोत्साहन के कार्य पर उस का परिणाम होता जाता है। इसको बुद्धि का संस्कार यदि कहें तो मेरी समझ में कुछ भूल न होगी। इस बात के जान लेने से यह गूढ़ तत्व जिसे हल करने में निरे मानसिक वैज्ञानिकों को कठिनाई पड़ती है स्पष्ट हो जाता है। एक ही बात बार बार देखने से या पढ़ने से मस्तिष्क की क्रिया में पुनरुक्ति होती जाती है और उसका यह

परिणाम होता है कि वह वस्तु स्मरण में पूरी तरह से गड़ जाती है।

मस्तिष्क के उस भाग का जिसे (Cerebrum) कहते हैं, स्थान अभी पूरी तरह स्थिर नहीं हुआ है। हां, साद्रे अंतर्बोध (जिसे चेतना कहते हैं) के स्थान के विषय में निश्चय हो चुका है। इसके सिवाय और कुछ मालूम नहीं हुआ है। इस विचारणा से यह फल निकला है कि (१) हर एक मानसिक क्रिया के साथ ही साथ मस्तिष्क की क्रिया होती है (२) यह कहने के लिये आधार है कि मज्जा प्रणाली के किसी भाग में जहां कहीं चलन वलन होता है वह अंतर्बोध के सिवाय नहीं होता और (३) मस्तिष्क केन्द्र उन हिस्सों को कहते हैं जिनमें, नसों की क्रिया का अंतर्बोध से संयोग होने के पहिले संचलन होना ही चाहिए।

खंड ५।

मन की समुन्नति और वृद्धि।

ऊपर लिखे विवरण से यह मालूम होगा कि मज्जा-तन्तु-प्रणाली का यह एक धर्म है कि उस पर वस्तुतः प्रभाव पड़ता है और दूसरा धर्म यह है कि उसमें ऐसी शक्ति है जो उत्तेजन को प्रेषित करती है। इस तन्तु जाल में जड़ता का धर्म है जिस कारण इसमें ग्रहण करने की शक्ति है। दूसरा एक और गुण है जिसे चैतन्य शक्ति कहते हैं उससे वह क्रिया को उत्पन्न करती है और इन दोनों के बीच तीसरा भी एक गुण इसमें निवास करता है जिससे यह अपनी ग्रहण करने और उत्पन्न करने की शक्ति को एक दूसरे से मिला देती है। जब तंतु जाल केवल चलित अथवा सचेत होता है तब उसकी उस स्थिति की समांतर मानसिक स्थिति को हम मनोराग (Feeling) कहते हैं। जब वह क्रियोत्पादन करती है तो उस समय की उसकी स्थिति की समांतर मानसिक स्थिति को हम संकल्प (Willing) कहते हैं। और तीसरे जब इन दोनों का मेल होकर मस्तिष्क सचेत और क्रियोत्पादक होवे तो उसकी समांतर मानसिक स्थिति को

बोधन (Knowing) कहते हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म भी मनोराग हो तो भी तन्तुजाल की क्रिया बड़ी संकीर्ण और मिश्र होती है और इस विषय में मस्तिष्क की क्रिया स्वयं और उसकी समांतर मानसिक क्रिया वास्तव में मिश्र होती ही है।

अब इस बात का विचार करेंगे कि मन की समुन्नति और वृद्धि क्योंकर होती है। किसी वस्तु के अवयवों के क्रमशः होने वाले विकास को समुन्नति कहते हैं। और उसके अवयवों की पुष्टता के कारण होने वाले रूपांतर को वृद्धि कहते हैं। मन की समुन्नति और वृद्धि उसी प्रकार होती है जैसे किसी पेड़ की। जैसे, पहिले बीज अपनी स्वाभाविक स्थिति में रहकर उसमें अंकुर उत्पन्न होते हैं। यह उस की जीवन दशा का विकास है। फिर वह अंकुर पौधा बन जाता है और धीरे धीरे बढ़कर पेड़ बन जाता है। बिलकुल यही बात मन की रचना में हैं। पहिले अंतर्बोध केवल निचेष्ट दशा में रहता है। परन्तु उसीके जाग्रत होने पर चेतना, इंद्रियबोध, मनोराग इत्यादि कला एक के बाद एक विकसित होती जाती हैं, और इस प्रकार अनुभव के साथ मन की सब शक्तियां बदलती जाती हैं अर्थात् मन की शक्तियों के धीरे धीरे होने वाले विकास को मन की समुन्नति कहते हैं। और अंतर्बोध के अनुभवों के विस्तृत और विचित्र होने को मन की वृद्धि कहते हैं। हर एक मनुष्य के अंतर्बोध की रचना निराली होने का यह कारण है कि मन में घटक अवयवों की रचना हर एक की अलग होती है। एक की रचना दूसरे से कभी नहीं मिलेगी। यही कारण है कि मनुष्यों में सब एक से बुद्धि मान नहीं होते। यद्यपि यह भेद भिन्न भिन्न पुरुषों में भिन्न भिन्न रूप से दिखाई देता है तो भी सब मनुष्यों के मन होता ही है। उसकी उन्नति और वृद्धि सब में एक ही नियमों के अनुसार धीरे धीरे होती जाती है। और प्राकृतिक शक्ति, संगति, शिक्षा इत्यादि के कारण अंतर पड़ता चला जाता है यह बात निर्विवाद है।

मन की समुन्नति और वृद्धि का शास्त्रीय विचार मन की शारीरिक स्थिति की दृष्टि से करना चाहिए। उसके कई लाभ हैं। (१) पहिले तो यह जाना जाता है कि मनुष्य प्रकृति से कुछ

विशेष मानसिक शक्तियों से विभूषित है (२) बालक के जन्म काल के समय उसकी मज्जा-प्रणाली बहुत ही अपूर्णता से समुन्नत होने के कारण उस अवस्था के, याने जब अंतर्बोध जागृत ही नहीं होता है, मानसिक अनुभवों की स्थिति संकुचित और अपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि मज्जा तन्तुओं पर इस अवस्था में चेतना के कार्यों की पुनरुक्ति के आघात बहुत ही कम हुए होते हैं। इसीसे जो अतर्बोध प्रारम्भ अवस्था में जागृत होता है फिर लुप्त हो जाता है और हमें अपने बिलकुल पहिले अंतर्बोध के अनुभवों की याद नहीं रहती (३) जब हमें यह मालूम हुआ कि मन रूपी रचना की समुन्नति का जितना सहारा उसकी प्राकृतिक शक्तियों पर होता है उतना बाहरी परिस्थिति पर नहीं तो हम साफ साफ समझ सकते हैं कि मानसिक समुन्नति के नये नये स्वरूप समय समय पर किस प्रकार प्रकाशित होते हुए दिखाई देंगे (४) शारीरिक स्थिति के अनुसार मज्जाप्रणाली की वृद्धि पहिले ही से होती जाने के कारण यह हमें स्पष्ट मालूम हो जायगा कि मन का विस्तार कैसे होगा, और आकस्मिक अनुभव अथवा विशेष शिक्षा के अनुसार किस प्रकार मन का स्वभाव बनेगा।

यहां केवल एक बात और कहने की आवश्यकता दिखाई देती है। वह यह है कि मन की समुन्नति का हाल हमें पूरा पूरा नहीं मिल सकता। केवल इतना ही हमें ज्ञात हुआ है कि मज्जा-तन्तु-प्रणाली की उन्नति के साथ मन की उन्नति का सम्बन्ध है, परन्तु किस एक मस्तिष्क केन्द्र की उन्नति होने से मन की कोई एक शक्ति का विकास होता है यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है और न थोड़े ही काल में होने की संभावना है, क्योंकि जैसा हम कह चुके हैं कि सादे आंतरिक अनुभव के होते समय मस्तिष्क के मज्जा तन्तुओं में संचलन की एक ही धूम मच जाती है, और मस्तिष्क के कई पुर्जे काम करने लग जाते हैं। इस कारण यह बात निश्चित नहीं हो सकती कि कौन कौन मस्तिष्क केन्द्रों की समुन्नति के साथ मन की कौन कौन शक्ति का विकास होता है। तो भी मन की समुन्नति के विषय में यह कहा जा सकता है कि उसकी समुन्नति होने की दशा में कई

रूपान्तर होते हैं और कदाचित् उन्नति को रुकावट भी हो जाती है। परन्तु उन्नति एक दम थोड़े ही काल में नहीं हो सकती, न हम उस उन्नति-काल को घटा बढ़ा सकते हैं। यह तो मन की समुन्नति के विषय में हुआ। अब मन की वृद्धि के विषय में यदि देखा जाय तो यह मालूम होगा कि मन की वृद्धि के विषय में हमें अधिक पूरा ज्ञान हो सकता है, क्योंकि समुन्नति पथ में मन की वृद्धि, अनुभव से विदित हो सकती है। जिसे हम शरीर के विचार से वृद्धि कहते हैं वही मन के विषय में अनुभव है।

अध्याय २।

खंड १।

अंतर्बोध (Consciousness) और इन्द्रियज्ञान (Sensation)

मनोविज्ञानकार वैण पंडित के विषय में हम कह चुके हैं कि मन की परिभाषा देने में असमर्थ होकर मन के तीनों गुणों से मन का बोध होता है यह कहकर मनोराग, संकल्प, और बुद्धि ये तीन गुण उसने क्रमशः दिए हैं। इस क्रम से यह मालूम होता है कि मनोराग अर्थात् चैतन्य विषयक ज्ञान को पहिला स्थान देकर फिर संकल्प और फिर बुद्धि को रक्खा है। परन्तु इस लेख में पहिले मनोराग, फिर बुद्धि और सबके पीछे संकल्प का विचार किया गया है।

प्रायः सब मनोविज्ञान पंडित लोग मनोविज्ञान का विचार अंतर्बोध से आरंभ करते हैं और अंतर्बोध के पीछे और और मानसिक स्थितियों का विचार करते हैं। अंतर्बोध क्या है इस विषय में वैज्ञानिक लोगों में इतना मतभेद दिखाई देता है कि कुछ कहा ही नहीं जाता। जैसा हम पहिले अध्याय में बतला चुके हैं कि कोई

मन को माला बतलाता है तो कोई ढेर और कोई तो रज्जु! वैसे ही अंतर्बोध के विषय में है। कोई अंतर्बोध को तात्कालिक ऐन्द्रिय-ज्ञान समझता है, कोई उसे कुछ मानसिक स्थितियों का द्योतक बतलाता है और कोई उसे सब मानसिक शक्तियों की कार्यपरता की स्थिति कहता है, यहां तक कि एक मनोविज्ञानी पंडित ने तो हार मानकर यह कह दिया कि अंतर्बोध की कल्पना इतनी तत्त्वमय है कि उसके विभाग नहीं हो सकते, उसके लिये कोई गणजाति वाचक शब्द नहीं मिलता और इसी कारण अंतर्बोध की परिभाषा नहीं हो सकती। उस पंडित का नाम भी इस नैराश्य-प्रचुर उद्गार का उत्तम दर्शक है। हमने उसका नाम 'हामिलितव' यही रक्खा है और देखिए वह कितना सार्थक है। अंग्रेज़ी भाषा में इस नाम को (Hamilton) इस प्रकार पढ़ते हैं-अस्तु।

और सब मनोविज्ञानकारों ने अपनी विचारणा को अंतर्बोध से आरंभ किया है और अंतर्बोध की श्रेष्ठता का विचार करने से यह उनका करना ठीक भी मालूम होगा, तोभी इस लेख में अंतर्बोध को पहिला स्थान नहीं दिया है। क्योंकि अनुभव और वैज्ञानिक शोध से यह मालूम होता है कि अंतर्बोध कई उपकरणों के रहते ही ज्ञात हो सकता है अन्यथा नहीं। इस विषय में एक उदाहरण लेकर देखें कि एक विशेष मानसिक क्रिया के होने में सबसे पहिले और मूल कौन सी मानसिक शक्ति अपना प्रभाव बतलाती है, अथवा काम में आती है। कल्पना कीजिए कि मैं एक खंभे की ओर देख रहा हूं। देखते ही मुझे उस खंभे का अंतर्बोध तो हुआ, परन्तु उस अंतर्बोध में और कितने मानसिक प्राथमिक कार्यों का समावेश होता है यह देखना चाहिए। मुझे दृष्टि से मालूम हुआ कि उसका रंग हरा है। स्पर्श से मालूम हुआ कि उसमें कड़ापन है। उसे बजाने से उस की आवाज़ सुनाई देती है। उसका आकार गोल और लंबा है। अर्थात् मेरा उस खंभे का ज्ञान मेरी इन्द्रियों के अनुभव से उत्पन्न ज्ञान की केवल एकरूपता है। इतना होकर भी खंभे के विषय में हर एक ऐन्द्रियज्ञान स्वयं ऐसा अमिश्र है कि उसके और विभाग नहीं हो सकते। तात्पर्य यह है कि जो अंतर्बोध मेरे मन को खंभे के विषय में

हुआ है। वह केवल और सब ऐन्द्रिय बोधों का ऐक्यमय रूप है। इससे यह फल निकलता है कि अंतर्बोध ही का अच्छी तरह से बोध होने के लिये और साधनों की आवश्यकता होती है, तो यह साफ है कि उन साधनों का अर्थात् ऐन्द्रिय बोधों का ही पहिले विचार किया जाय और फिर अंतर्बोध की समीक्षा की जाय। इस लिये यहां इन्द्रियज्ञान ही से आरंभ किया है।

यदि उपरोक्त उदाहरण पर यह शंका की जाय कि यह उदाहरण उस अवस्था का है जब कि मन की शक्तियों की समुन्नति होकर वह प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो चुका हो, परन्तु बालक के विषय में कदाचित यही उदाहरण युक्ति सम्मत न होगा। शंका विचार करने योग्य है, क्योंकि मनुष्य अपनी प्रौढ़ावस्था में अंतरीय अवलोकन कर सकता है और अंतर्दृष्टि से (Introspection) यह जान सकता है कि अंतःकरण में कौन कौन सी क्रिया होकर एक परिणाम उत्पन्न हुआ परन्तु बालक इस प्रकार अंतरीय अवलोकन नहीं कर सकता। यद्यपि यह बात सच है तथापि निरीक्षण से यह जान पड़ेगा कि बालक को अहंकार अर्थात् मैं स्वयं और पदार्थों से भिन्न हूं यह ज्ञान आरंभ में होने के पहिले जो ज्ञान मिलता है वह बिलकुल पहिली अवस्था में इन्द्रियज्ञान से आरंभ होता है। कल्पना कर ली जाय कि बालक को पहिले स्पर्शज्ञान होता है। स्पर्शज्ञान के होते समय यह तो अवश्य होता है कि मस्तिष्क में संचालन होवे, यह एक शुरू अवस्था का बहुत ही सादा अनुभव उत्पन्न करता है और वही स्पर्शज्ञान फिर बार बार होने से मस्तिष्क के केन्द्रों में उसी क्रिया की पुनरावृत्ति होकर उसका मानसिक परिणाम यह होता है कि बालक अपनी व्यक्ति की भिन्नता और अस्तित्व के बोध का अनुभव करने लगता है। यही पहिला आत्मीय अंतर्बोध है। यह आरंभ में बहुत ही सूक्ष्म और अज्ञात दशा में होता है और आरम्भ के अनुभवों से दिन दिन विकास पाता जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि बालक की बिलकुल छोटी अवस्था में भी अंतर्बोध का ज्ञान उसे इन्द्रिय ज्ञान की परम्परा के अनंतर होता है। इसलिये पहिला स्थान इन्द्रियज्ञान को मिलना ठीक मालूम होता

है। मनोराग के अंतर्गत जो शक्तियां हैं उनमें अंतर्बोध के पहिले इन्द्रियज्ञान का क्रम पहिला है इसलिये इन्द्रियज्ञान ही के विषय में आगे लिखेंगे।

खंड २।

इन्द्रियां (Organs of Sense) और उनका वर्गीकरण।

इन्द्रिय उसे कहते हैं जिससे हमें किसी प्रकार की चेतना का अनुभव हो। मनोविज्ञान में इन्द्रियों के दो भाग किए जाते हैं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय। ज्ञानेन्द्रिय ५ हैं, उसी प्रकार कर्मेन्द्रिय भी ५ हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों में स्पर्श, रसना, घ्राण, श्रोत्र और चक्षु ये हैं। और इन्हींके कार्यों को करनेवाले शारीरिक अवयवों को जिन्हें हमने कर्मेन्द्रिया कहा है वे यथाक्रम त्वचा, जिह्वा, नासिका, कान और आंख हैं। इन पांचों को इन्द्रिय कहना ठीक नहीं क्योंकि ये केवल उन उन इन्द्रियों के लिये साधनरूपी शारीरिक अवयव हैं। जैसे, जिह्वा से स्वाद का ज्ञान नहीं है परन्तु जिस वस्तु का जीभ से स्पर्श होवे उसके स्पर्श के कारण जिह्वाग्र की नसों में संचलन उत्पन्न होता है। वह तारायंत्र की तरह क्षणमात्र में मस्तिष्क में पहुंचकर वहां भी गति उत्पन्न करता है और वहां जो रसनेन्द्रिय का स्थान है उसमें चेतना उत्पन्न हो जाती है। यह सब होता है परन्तु जब तक इन्द्रिय का अंतर्बोध से मेल नहीं होता ऐन्द्रियज्ञान कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। इन्द्रियज्ञान न तो मस्तिष्क में, और न मज्जातन्तुओं में उत्पन्न होता है। सर्वसाधारण की मोटी समझ है कि किसी वस्तु का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा होता है। जैसे किसी से पूछा जाय कि स्वाद का ज्ञान क्योंकर मालूम होता है? तो वह शीघ्र ही कह देगा कि जिह्वा से अथवा रसनेन्द्रिय से परन्तु वैज्ञानिक शोध से यह मालूम हुआ है कि जिह्वा में न तो स्वाद का ज्ञान कराने की शक्ति है, न जिह्वाग्र के तन्तुओं में और न उसके सम्बन्धयाले

मस्तिष्क के मज्जातन्तुओं में। परन्तु केवल एक अंतर्बोध में वह ज्ञान उत्पन्न होने की पात्रता है। हां, निःसंदेह जिह्वा, उस की नसें, उससे सम्बन्ध रखनेवाला मस्तिष्क केन्द्र ये सब साधनरूप अवश्य हैं। यही सब से बड़ा कारण है कि मानसिक शास्त्रवेत्ताओं ने अंतर्बोध ही को सब से ऊंचा माना है। क्योंकि इन्द्रियों का जब तक अंतर्बोध से संयोग नहीं होता तब तक ज्ञान उत्पन्न कभी नहीं होगा। मन और मस्तिष्क की रचना ईश्वर ने ऐसी कुछ विचित्र की है कि दोनों के कार्यों में अत्यन्त निकट और सूक्ष्म सम्बन्ध है और वे इतनी शीघ्रता से हो होते हैं कि उसकी कल्पना होनी भी कठिन है। कार्य होते हुए समझ में नहीं आते परिणाम मात्र ज्ञान रूप से समझ में आता है। सारांश यह कि इन्द्रियों का अंतर्बोध से ऐसा स्थायी सम्बन्ध है कि जो ऐन्द्रियज्ञान अंतर्बोध को होता है उसे अब वैज्ञानिक लोग ऐन्द्रियांतर्बोध (Sense Consciousness) कहने लगे हैं।

अब यह देखना चाहिए कि यह ऐन्द्रियांतर्बोध सब इन्द्रियों में एकसा ही होता है अथवा कम ज्यादा। यदि कम ज्यादा होता है तो वह कमी अथवा अधिकता उसके महत्व पर निर्भर है अथवा मिश्रता पर अथवा और किसी बात पर। इस विषय में विचार करने से यह प्रतीत हुआ है कि सब इन्द्रियों में सब से अमिश्र ज्ञान उत्पन्न करनेवाली स्पर्शेन्द्रिय है। स्पर्शेन्द्रिय के पीछे रसना और घ्राण क्योंकि त्वचा की अपेक्षा इनसे अधिक मिश्र प्रकार का ज्ञान होता है। और सब से अधिक मिश्र ज्ञान श्रवण और दर्शनेन्द्रिय से होता है। अथवा यों कहिए कि स्पर्शज्ञान के होने में जितने तन्तु अथवा नसें संचलित होती हैं उनसे अधिक रसना और घ्राणेन्द्रिय से ज्ञान होने में संचलित होती हैं और इनसे भी अधिक श्रवण और दर्शनेन्द्रिय से ज्ञान होने में संचलित होती हैं, यहां तक कि हर एक इन्द्रिय विषयक प्रोत्साहन की वाहक एक ही प्रकार की नसें होती हैं और वे दूसरा कार्य नहीं करतीं। उदाहरण के लिये प्रकाश लीजिए। प्रकाश का ज्ञान ऐसे उत्पन्न होता है कि आकाशतत्व (Ether) की लहरें आंख की नसों के द्वारा आंख की पुतली पर परिणाम उत्पन्न करती हैं परन्तु यही प्रोत्साहन दर्शनेन्द्रिय की मुख्य

नसों के अतिरिक्त और किसी दूसरी नस को दियाँ जावे तो कुछ भी परिणाम नहीं होगा।

यद्यपि ऊपर इन्द्रियों के तीन भाग किए हैं अर्थात् (१) स्पर्शेन्द्रिय (२) रसना और घ्राण और (३) श्रवण और दृष्टि, तथापि यहां एक विशेष बात समझ लेनी चाहिए। इन्द्रियों में सब से साधारण इन्द्रिय अकेली स्पर्शेन्द्रिय है। इसीकी उन्नति से और इन्द्रियों की उन्नति होती है। प्रकृति से बालक किसी वस्तु को देखते ही उसे छूने का, उठाने का या पकड़ने का यत्न करता है। फिर जो चीज हाथ आई उसे मुंह में रख लेता है जिससे उस का परिचय रसनेन्द्रिय से होवे। किसी वस्तु का ज्ञान स्वाद के द्वारा होने के लिये उसका स्पर्श जीभ को अवश्य ही होना चाहिए, नहीं तो स्वाद ही नहीं मालूम होगा। अर्थात् रसनेन्द्रिय की उन्नति स्पर्श के सिवाय नहीं हो सकती। अब रहीं घ्राण, श्रवण और दृष्टि। इनमें वस्तु ही के स्पर्श की यद्यपि आवश्यकता नहीं होती तोभी उसके निकट रहने की तो होती ही है। घ्राण में गंधयुक्त कणों का स्पर्श होता है, श्रवण में ध्वनि की लहरें और दृष्टि में प्रकाश की किरणों का स्पर्श इन्द्रियों को होता है। वस्तुतः स्पर्श होना चाहिए इसमें संदेह नहीं। इससे कहा कि सबसे पहिली इन्द्रिय स्पर्श है और उसी इन्द्रिय के द्वारा और इन्द्रियों के अनुभवों का आरंभ होता है।

शरीर शास्त्र की दृष्टि से इन्द्रियों के दो भाग किए जाते हैं। साधारण और विशेष। वे इन्द्रियां जिनके तन्तु विशेष कार्य के करने वाले बने हुए नहीं होते वे साधरण इन्द्रियां कहातीं हैं—जैसे त्वचा। इसमें चेतनावाहक नसों की समृद्धि है। उन नसों के मूल स्थान होते हैं। परन्तु नसों का अपने मूल स्थानों में जाकर अंत हो जाता है। परन्तु विशेष इन्द्रियां उन्हें कहते हैं जिनमें विशेष गुण के बोध करानेवाले तन्तुओं के मूलस्थान स्वतंत्र बने होते हैं जिनके द्वारा एक प्रकार के इन्द्रियज्ञान की भिन्नता दूसरे से जान पड़ती है। विशेषेन्द्रियों की नसें अथवा तन्तु जो कि चेतना वाहक होते हैं मस्तिष्क के उस भाग में जाकर अंत होते हैं जिसे पेरिफरी (Perephery)

कहते हैं, और वे वहां जाकर केवल अंतही पाकर नहीं रह जाते, परन्तु एक प्रकार की सूक्ष्म रचना अथवा घटक बना लेते हैं जो साधारणेन्द्रिय में नहीं होते। ये तन्तु के बने हुए घटक हर एक इन्द्रियज्ञान के लिये अलग अलग होते हैं और पदार्थों के बोध होने में और भिन्नता समझने में हमारे सहायक होते हैं। जिन इन्द्रियों के द्वारा हम शारीरिक सुख दुःखों का अनुभव करते हैं वे साधारणेन्द्रियां गिनी जाती हैं और जिनके द्वारा हमें पदार्थों के गुण और भिन्नता का ज्ञान होता है वे विशेषेन्द्रियों में गिनी जाती हैं। साधारण और विशेषेन्द्रियों के भाग इस प्रकार होंगे।

साधारण { चेतना, त्वगिन्द्रिय }
त्वगिन्द्रिय, घ्राण और रसना, श्रवण और दृष्टि } विशेष।

इससे यह स्पष्ट होगा कि त्वगिन्द्रिय, साधारण और विशेषेन्द्रिय इन दोनों में साधारण है, मानो दोनों को मिलानेवाली मध्यस्थ है। इसी कारण बहुतेरे तत्ववेत्ता लोग इसे और इन्द्रियों की कारणेइन्द्रिय समझते हैं।

खंड ३।

विशेषेन्द्रियों का विचार।

त्वगिन्द्रिय-त्वचा में जो बारीक स्पर्शज्ञान वाहक नसें हैं और जो सारे शरीर में त्वचा में फैली हुई हैं उनका संयोग पृष्टवंश और मस्तिष्क तक जाना गया है। इन नसों का मार्ग त्वचा से लेकर मस्तिष्क तक एक रस्सी की नाईं प्रतीत होता है। स्पर्शज्ञान तन्तु जो कि त्वचा में सूक्ष्म होकर अंत पाते हैं एक दूसरे से मिलकर वृक्ष की शाखाओं की भांति मिल जाते हैं और अंत में नसों का समूह बन जाते हैं। परन्तु चमत्कार यह है कि त्वगिन्द्रिय की नसों के अतिरिक्त एक भी दूसरी नस, इस नसों के समूह में नहीं मिलती।

इससे यह प्रमाणित होता है कि त्वचा का एक भाग तथा उसका स्पर्शतन्तु, स्पर्शज्ञान वाहक नसों की शाखाओं से लगा रहता हैं और उनका सम्बन्ध मस्तिष्क से लगा हुआ होता है और यह सब रचना उसी प्रकार की है जैसे कि तारघर में सब तारों की अंतिम केन्द्र से होती है।

वस्तुमात्र के आकार का बोध जिसके द्वारा होता है, त्वचा के उस विशिष्ट गुण को स्पर्शेंद्रिय कहते हैं। त्वचा पर किसी वस्तु का आघात अथवा भार पड़ने से जो ज्ञान होता है उसका अनुमान करनेवाली शक्ति को भारबोधक शक्ति कहते हैं और त्वचा की उस शक्ति को जो गरमी अथवा सर्दी का बोध कराती है उष्णता बोधक शक्ति कहते हैं। इन तीनों शक्तियों के संयोग से हमें किसी पदार्थ के गुणों का बोध स्पर्शेंद्रिय से कुछ कुछ होता है।

त्वचा के विशेष गुण के विषय में वेबर साहिब ने एक विलक्षण विचारणा करके एक नियम स्थापित किया है। इस नियम को वेबरीय नियम कहना चाहिए और उक्त साहिब ने जिस प्रयोग को करके इसे सिद्ध किया है उसे वेबरीय-त्वच-प्रयोग कहना ठीक होगा।

वेबरीय नियम इंद्रियज्ञान की अधिकता प्रोत्साहन की अधिकता के प्रमाण से नहीं बढ़ती। इसका कारण यह है कि ऐन्द्रिय-ज्ञान की घनिष्टता यदि गणित श्रेढी के प्रमाण से वृद्धि पावे तो प्रोत्साहन की घनिष्टता भूमिति श्रेढी के प्रमाण से बढ़नी चाहिए। यह नियम जिस प्रयोग से सिद्ध किया गया वह प्रयोग इस प्रकार लिखा है। कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के त्वचज्ञान की परीक्षा कर रहा है। इसके लिये एक कंपास की आवश्यकता होती है। कंपास की नोकें बहुत नुकीली और तीक्ष्ण नहीं परन्तु कुछ बोथी हों। कंपास के दोनों पादों की नोकें दूसरे मनुष्य के शरीर के किसी भाग पर रक्खी जांय; और वह दूसरा मनुष्य बतलावे कि उसे या तो दोनों नोकों के स्पर्श का ज्ञान दो जगह होता है अथवा दोनों स्थानों का बोध इकट्ठा होकर एक ही जगह से स्पर्श होता हुआ मालूम होता है। इस प्रयोग का अनुभव कम सचेतन त्वचा के स्थानों से जो हुआ है वह बड़ा आश्चर्य जनक है। उदाहरण—यदि कंपास

की नोकें हाथ पर हाथ की लंबाई की दिशा में, एक दूसरे से १.५८ इंच के अंतर पर रक्खी जांय तो स्पर्शज्ञान दो स्थानों से होगा। परन्तु अंतर में कमी होने से अर्थात् १.१८ इंच कर देने से स्पर्श का ज्ञान एक ही स्थान से होता हुआ जान पड़ता है। इस प्रयोग से यह ज्ञात हुआ है कि शरीर की त्वचा के सब भागों में सब से अधिक स्पर्श चैतन्य रखनेवाला भाग जिव्हा का अगला भाग है। क्योंकि उस स्थान पर .०३९४ इंच के अंतर पर भी एक साथ ही दो जगह से स्पर्श ज्ञान होता हुआ मालूम पड़ता है।

खंड ४।

रसना और घ्राण।

अपनी निरी आंखों से अर्थात् उपनेत्र न लगाकर भी, देखने से मालूम होता है कि जिह्वा पर कुछ खरखरापन है। छोटे छोटे उन्नत बिंदु और अवनत बिंदु दिखाई देते हैं। इन में से कुछ तन्तुओं के समूह तक जा मिलते हैं और कुछ थोड़े और मिले हुए होते हैं। वे तन्तुओं से संबद्ध होकर कंठ के ऊपरी भाग में अर्थात् जिह्वा के मूल में नसों के केन्द्रों से मिले हुए होते हैं। यह नहीं निश्चय कर के कह सकते हैं कि स्वाद की खास नसें होती हैं या नहीं तथापि एक नस जिसे Glaso pharyngeal nerve कहते हैं निःसंशय ऐसी नस है जिसे स्वाद के कार्य में श्रेष्ट समझते हैं। परन्तु और इन्द्रियों की विशेष नसों में और इसमें यह भेद है कि वे स्वतंत्र होतीं हैं और यह दूसरों से मिली हुई है। जब हम कोई वस्तु मुंह में रखते हैं तो उसका स्पर्श जिह्वा को होकर लार से मिश्रित होने से जीभ के नतोन्नत भागों में पैठते ही वह तन्तुओं के द्वारा केन्द्रों में, और वहां से नसों के द्वारा मस्तिष्क में पहुंच कर स्वाद का बोध उत्पन्न करता है। स्वाद के लिये जिह्वा मुख्य है परन्तु कभी कभी तालू का अगला भाग भी स्वाद का ज्ञान कराता है। स्वाद कई प्रकार के हैं मधुर, कटु, अम्ल, लवण, तीक्ष्ण इत्यादि। इन स्वादों

के बारीक भेद घ्राण से मालूम होते हैं। इसी कारण रसना और घ्राण इन दो इन्द्रियों का एक संग विचार किया जाता है।

घ्राण।

नासिका के भीतर ऊपर के भाग में नसों की ऐसी रचना है कि जब हम अपने नासिका पुटों के भीतर वायु को लेते हैं तो उन नसों को प्रोत्साहन देने की क्रिया भी उसी समय होती है। वह प्रोत्साहन उत्पन्न करनेवाले सुगन्धमय रज के अति सूक्ष्म कण हैं जो कि सुगन्धित पदार्थ से निकलते हैं और हवा में फैले हुए होते हैं। जब ये सूक्ष्म कण नाक के भीतर नसों से स्पर्श करते हैं तो प्रोत्साहन उत्पन्न करते हैं और वह प्रोत्साहन नसों के द्वारा मस्तिष्क में पहुंचा दिया जाता है। सौगन्ध कणों का अस्तित्व इससे प्रतीत होता है कि कुत्ते के मुंह पर यदि कागज़ लपेट दिया जाय तो वह अपने शिकार का मार्ग नहीं पा सकता।

अब तक रासायनिकतत्ववेत्ताओं को यह नहीं मालूम हुआ है कि नाना प्रकार के पदार्थों से उत्पन्न होनेवाले गन्धों के रासायनिक कारण क्या हैं। उसी प्रकार गन्धों के कितने प्रकार हैं यह भी अभी तक मालूम नहीं हुआ है। हां, खुशबू और बदबू, सुगन्ध और दुर्गन्ध तो, सब ही जानते हैं। परन्तु गुलाब के सुगन्ध को क्या कहेंगे अथवा कपूर के गन्ध का क्या नाम है ऐसा यदि कोई पूछे तो कुछ नहीं बता सकते। तो भी उनके विकारों को जानते हैं। जैसे कुछ गन्ध उत्साहवर्धक होते हैं और कुछ उत्साहनाशक होते हैं। घ्राणेन्द्रिय और सब इन्द्रियों में सबसे जड़ और सबसे कम बुद्धिमती है।

खंड ५।

श्रवण और दृष्टि।

श्रवणेन्द्रिय के शरीर के विचार से तीन विभाग हैं। (१) बाहरी कान (२) बीचवाला कान और (३) पिछला या भीतरवाला कान। इनमें से पहिले दो तीसरे के सहायक हैं। श्रवणेन्द्रिय सब इन्द्रियों

की अपेक्षा अधिक गुणवाली इन्द्रिय है, क्योंकि जब हम देखते हैं कि किसी मनुष्य को दृष्टि नहीं होती तो वह अपनी श्रवणेन्द्रिय ही से दृष्टि की कमी को बहुत कुछ पूरा करता है। कर्णेन्द्रिय की रचना बहुत अद्भुत है। बाहरी और बीच वाला कान केवल प्रोत्साहन के वाहक हैं। इनमें चैतन्य का अभाव है। परन्तु भीतर वाले कान में चेतनावाहक तन्तुओं की प्रणाली विरचित है। कर्णेन्द्रिय के ज्ञान को उत्पन्न करने वाली और प्रोत्साहन को पहुंचाने वाली एक विशेष नस होती है जो केवल ध्वनि-बोध-वाहक है। क्योंकि श्रवणेन्द्रिय की विशेष रचना भीतरी कान में है जिससे श्रवण के भेदाभेद के जानने में सुलभता होती है। और यही कारण है कि पदार्थ विज्ञान शास्त्र में ध्वनि एक महत्व का विषय समझा जाता है। हमें ध्वनि का समीचीन और सशास्त्र ज्ञान तथा गायन, वादन आदि सुन्दर कलाओं का ज्ञान श्रवणेन्द्रिय ही से होता है। सुरों में सप्त स्वर, उनमें कोमल तीव्र, मधुर, कठोर, तीन ग्राम और "उञ्चास कोटितान" इत्यादि की सम्पूर्णता श्रवणेन्द्रिय ही की अद्वितीय शक्ति का प्रभाव है।

मानस शास्त्रवेत्ताओं का मत है कि श्रवणेन्द्रिय केवल दृष्टि ही की अपेक्षा नहीं किन्तु और सारी इन्द्रियों से अधिक बुद्धिमती है। वेण पण्डित ने श्रवण का नाप तोल तक सिद्ध किया है। क्योंकि ध्वनि की गुरुता अथवा लघुता का क्रम गणित की रीति से गणना योग्य है।

दृष्टि।

दृष्टि का बाहरी अंग आंख है। यह बहुधा गोलाकार होती है और इसके भीतर एक अन्धकार मय कमरा, आदर्श चित्रण के यंत्र के कॅमरा ऑबस्क्यूरा की तरह होता है। जिस द्वार से प्रकाश इस अंधियारे कमरे के भीतर प्रवेश करता है वह केवल एक ही है जिसे आंख की पुतली कहते हैं। यह पुतली काले रंग की दिखाई देती है क्योंकि भीतर का भाग केवल अन्धकारमय है। आंख के बाहरी पृष्ठ भाग के भीतर एक तरह के काले रंग का आस्तर

होता है जिसके कारण भीतर अन्धियारा होता है। वस्तुत: आंख का भीतरी भाग प्रकाशगम्य है। क्योंकि वह पारदर्शक नलिकाओं से भरा हुआ है। इन पारदर्शक नलिकाओं में सब से श्रेष्ठ स्फटिक नलिका है जिसे विज्ञानी लोग (Christaline lense) कहते हैं। यह पुतली के ठीक साम्हने होती है और इसी कारण, जो प्रकाश किरण पुतली के साम्हने आती हैं उनका परिवर्तन करती है। यह नलिका नतोदरवक्र होने के कारण उन प्रकाश किरणों को केन्द्रस्थ कर देती है। और इस प्रकार दिखने वाले पदार्थ का चित्र आंख के भीतरी अस्तर पर उतार देती है। इस अस्तर को अंग्रेजी वैज्ञानिक लोग रेटिना कहते हैं। क्योंकि विशेष कर रेटिना केवल सूक्ष्म तन्तु जाल है, जो कि प्रकाश नलिकाओं से बना हुआ होता है। प्रकाश की परिवृत किरणों से इन तन्तुओं में प्रोत्साहन उत्पन्न होता है जिस का परिणाम चक्षुज्ञान है।

ऊपर कही हुई क्रिया दृष्टि की सब शक्तियों की संपूर्णता और उन्नति हो जाने पर होती है। वस्तुत: छोटे बच्चों को आरम्भ में दूर की वस्तु दिखाई नहीं देती, क्योंकि दृष्टि की गति दूर तक नहीं होती। उसी प्रकार रंगों का भी ज्ञान कुछ कम ही होता है। हम देखते हैं कि जब किसी मनुष्य की आंखों के साम्हने एक वस्तु रक्खी जाय तो उस की उलटी प्रतिमा आंख की पुतली पर दिखाई देती है। और यह भी देखते हैं कि दोनों आंखों की पुतलियों पर प्रतिमा निराली दिखाई देती है। परन्तु वस्तुत: दृश्य वस्तु एक ही होती है और यद्यपि दो प्रतिमा दोनों पुतलियों पर उठतीं हैं तो भी एक ही वस्तु का चक्षुज्ञान होता है। यह अद्भुत चमत्कार है। यह सचमुच बड़ा चित्ताकर्षक विषय है परन्तु इस छोटे से लेख में इसे ऐसे ही छोड़ देना उचित जान पड़ता है।

खंड ६।

स्नायुज–इन्द्रियज्ञान (Muscular Sense.)

इस अध्याय में उन इन्द्रियों के विषय में कहा है जो कि बहुत प्रसिद्ध हैं। सर्वसाधारण तथा विज्ञानकार लोगों का यही मत रहा

है कि ज्ञान के मार्ग दस ही हैं। अधिक नहीं। अर्थात् ५ शारीरेन्द्रियां जिन्हें अपने दार्शनिक ग्रंथों में कर्मेन्द्रियां कहा है, और ५ मानसिक इन्द्रियां जिनको ज्ञानेन्द्रियों के नाम से लिखा है। अब, क्योंकि पहिली ५ इन्द्रियां स्थूल शरीर में प्रत्यक्ष अवयव रूप से दिखाई देतीं हैं, उन्हें कोई लोग बाह्येन्द्रियां (External Senses) कहते हैं और दूसरी ५ इन्द्रियां जो बाहर से नहीं दिखाई देती, उन्हें अंतरेन्द्रिया (Internal Senses) कहने लगे हैं। इसमें संदेह नहीं कि जितना ऐन्द्रियज्ञान है वह उनमें से किसी न किसी एक इन्द्रिय द्वारा अथवा एक से अधिक इन्द्रिय द्वारा प्राप्त होता है। परन्तु अब यह पूछना है कि इन सब इन्द्रियों के अतिरिक्त और भी कोई ज्ञानप्राप्ति का मार्ग है जिसके द्वारा इन्हींके समान कार्य होता हो। जिन मनोविज्ञानी लोगों ने मनोविज्ञान की आलोचना शारीर शास्त्र की दृष्टि से की है उन्होंने इस प्रश्न को हल किया है और उनका अनुभव यह है कि एक प्रकार की चेतना अथवा इन्द्रियज्ञान, स्नायु सम्बन्धी आकुंचन से उत्पन्न होता है, और वह स्नायु सम्बन्धी आकुंचन ऐसा होता है कि उसका सम्बन्ध किसी विशेषेन्द्रिय से नहीं होता। उसका कार्य और सब इन्द्रियों से बिलकुल स्वतन्त्र होता है और उसी प्रकार का परिणाम उत्पन्न होता है जैसा किसी और उक्त इन्द्रियों में होता है। इसलिये इसे भी इन्द्रियज्ञान कहने में कोई दोष दिखाई नहीं देता। यह ज्ञान नसों के आकुंचन से उत्पन्न होता है और केवल चेतना वाहक नसों के प्रोत्साहन ही पर अवलम्बित नहीं होता किन्तु अलगही प्रकार की ख़ास नसों के प्रोत्साहन के कारण उत्पन्न होता है। ये नसें सांधों में जा मिलतीं हैं और सांधों की निकटवर्ती अंतरेन्द्रियों में तथा नसों के ऊपर फैली हुई चैतन्ययुक्त त्वचा में जा मिलती हैं। यह स्नायुज इन्द्रियज्ञान अत्यंत गूढ़ और चमत्कारिक होता है। इसमें और साधारण इन्द्रियज्ञान में यह भेद है कि इसमें और इन्द्रियों की नाईं प्रोत्साहन बाहर के कारण से उत्पन्न नहीं होता अथवा किसी जड़ पदार्थ के कारण से उत्पन्न होनेवाले इन्द्रियज्ञान के समान भी नहीं होता, न किसी साधारण अथवा विशेषेन्द्रिय से

होनेवाले ज्ञान के सदृश होता है।

अब यह देखना चाहिए कि साधारण अथवा विशेषेन्द्रियों से होनेवाले ज्ञान से स्नायुज इन्द्रियज्ञान का क्या सम्बन्ध है यद्यपि स्नायुज इन्द्रियज्ञान स्वतन्त्र है। यहां इस बात को भली भांति समझना चाहिए कि इन्द्रियज्ञान दो प्रकार का होता है। एक परकीय और दूसरा आत्मीय। परकीय (Passive Sense) इन्द्रियज्ञान उसे कहते हैं जो किसी बाहरी कारण से उत्पन्न होता है। और आत्मीय (Active Sense) इन्द्रियज्ञान उसे कहते हैं जो बाहरी कारण पर निर्भर नहीं रहता अर्थात् जिसमें मेरा स्वयं का ही सम्बन्ध अधिक है। जैसे मुझे किसी ने स्पर्श किया। तो दूसरे के स्पर्श करने में अर्थात् बाहरी कारण से मुझे स्पर्शज्ञान हुआ वह अचेतन अथवा परकीय है। परन्तु जब मैं किसी दूसरे को स्पर्श करता हूं तो मैं स्वयं भी स्पर्शज्ञान का अनुभव करता हूं। इसमें मैं स्वयं कार्यकर्ता होने के कारण इस स्पर्शज्ञान को आत्माय अथवा सचेतन इन्द्रिय ज्ञान कहते हैं और यही बात और इन्द्रियों के विषय में भी समझनी चाहिए।

बहुधा इन्द्रियज्ञान का विचार करने में अचेतन इन्द्रियज्ञान का ही विचार किया जाता है और इसी कारण स्नायुज-इन्द्रियज्ञान के पहिले जो विचार किया है वह सब बाहरी कारणों के सम्बन्ध से ही किया गया है।

अब यह देखें कि स्नायुज-इन्द्रियज्ञान का कार्य क्या है। स्नायुज-इन्द्रियज्ञान का कार्य यह है कि वह अचेतन-इन्द्रिय-ज्ञान का सचेतन ज्ञान में रूपान्तर कर देने में सहकारी होता है इसमें प्रोत्साहन बाहर से मस्तिष्क में नहीं जाता किन्तु मस्तिष्क से निकलकर गतिवाहक नसों के द्वारा कार्यपरता उत्पन्न करता है। अचेतन का रूपान्तर सचेतन इन्द्रियज्ञान में करने की अद्भुत शक्ति केवल स्नायुज इन्द्रियज्ञान में है। और इन्द्रियों की तरह इसका भी अंतर्बोध से सम्बन्ध है इसलिये इसे निराली इन्द्रिय मानने में कोई बाधा नहीं है।

अध्याय ३।

खंड १।

अन्तर्बोध।

हम दूसरे अध्याय के पहिले खंड में अन्तर्बोध के बारे में विचार करते हुए यह बतला चुके हैं कि बहुधा सब मनोविज्ञानकार लोग अन्तर्बोध से ही मनोविज्ञान की आलोचना करते हैं। परन्तु हमने ऐन्द्रियज्ञान को पहिला स्थान देकर अन्तर्बोध को वैसे ही छोड़ दया था। अब यहां अन्तर्बोध का संक्षिप्त बिचार करेंगे। पहिले तो यह प्रश्न है कि अन्तर्बोध का ज्ञान क्योंकर होता हैं? (२) फिर यह देखना चाहिए कि अन्तर्बोध के विशिष्ट गुण कितने हैं और (३) फिर यह जान पड़ेगा कि अन्तर्बोध की स्थितियां कितनी और कौन कौन होती हैं।

(१) मनोजीवन में अन्तर्बोध, चैतन्य शक्ति और स्थित्यन्तर से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिये किसी वस्तु का ऐन्द्रियज्ञान, बालक की अत्यन्त प्रारम्भ अवस्था में, अन्तर्बोध को जाग्रत नहीं करता। परन्तु वही ऐन्द्रियज्ञान बार बार होने से अथवा उसीके स्थित्यन्तर का अनुभव होने से अन्तर्बोध की जागृति होने लगती है और जीव को यह ज्ञात होने लगता है कि मैं (अहम्) कोई रूपान्तर अथवा स्थित्यन्तर का देखने वाला हूं। यह ज्ञान पहिले तो बहुत ही सूक्ष्म और अस्पष्ट होता है। परन्तु इसकी गति इतनी शीघ्र और वेग से होती है कि उसका क्रम समझ में नहीं आता। बालक को प्रकृति के पहिले नियम के अनुसार अपनी रक्षा करनी पड़ती है और उसके लिये क्षुधा इत्यादि सादी आवश्यक बातों की पूर्ति करनी होती है इसलिये प्रकृति देवी ही स्वयं अन्तर्बोध की जागृति में अपना करतूत करना आरम्भ कर देती है। इच्छा और संकल्प की पहिली अवस्था का परिचय अभी से होने लगता है और निसर्ग की इच्छा पूर्ति न हुई तो वह इच्छा अनिवार्य और प्रबल हो जाती है यहां तक कि बालक हठीले और इच्छा के शान्त न होने से चिड़चिड़े हो जाते हैं। यह बात प्रारम्भ अवस्था की

हुई। प्रौढ़ अवस्था में जब अन्तर्बोध का पूरा उदय हो जाता है तब अन्तर्बोध की भीतरी क्रिया तथा स्थिति का बोध होता है। इसका बोध दो प्रकार से होता है (१) ध्यान (Attention) और (२) अन्तर्दृष्टि (Introspection) से ध्यान के विषय में आगे कहेंगे, और अन्तर्दृष्टि के विषय का भी विचार कई मानसिक क्रियाओं के साथ होने वाला होने के कारण इस स्थान में नहीं हो सकता।

(२) अभी कह चुके हैं कि मनोजीवन में स्थित्यन्तर के कारण से अन्तर्बोध की जागृति होती है। इसमें दो विशेष गुण हैं। अर्थात् यह स्थित्यन्तर दो प्रकार का है। भिन्नता दर्शक अन्तर्बोध और साम्यदर्शक अन्तर्बोध। भिन्नतादर्शक अन्तर्बोध विचार का बहुत ही पहिला धर्म है। किसी दो प्रकार के इन्द्रिय ज्ञान के स्वाभाविक रीति से वा गुरुता में भिन्न होने से यह भिन्नतादर्शक अन्तर्बोध उत्पन्न होता है। बालक गरम कपड़े के अन्दर सोता है। यदि उसे अचानक ठंढा हाथ लगे तो वह जाग पड़ेगा क्योंकि ऐन्द्रियज्ञान की गुरुता का ज्ञान होते ही अन्तर्बोध की जागृति उत्पन्न होगई। वह अनुभव अथवा मानसिक कल्पना जो रूपान्तर न होके एक सी बनी रहती है किसी तरह अन्तर्बोध को पैदा नहीं कर सकती। परन्तु उसी अनुभव की पुनरावृत्ति होने से पहिला अनुभव लौटकर पहिचाना जाता है। और उसी सरीखा होने के कारण यह पहिचान जानी जाती है और इसीसे साम्यदर्शक अन्तर्बोध उत्पन्न होता है।

(३) अब तक लिखी हुई बातों से यह ज्ञात होगा कि अन्तर्बोध की कई स्थितियां हैं, जैसे—

(अ) अन्तर्बोध प्रत्यक्षज्ञान है।

(आ) वह तात्कालिक अर्थात् तुरन्त होने वाला ज्ञान है न कि पर्याय पर।

(इ) वह भिन्नता द्योतक है तथा उसमें भिन्नज्ञता भी है।

(ई) इसमें निर्धारण का समावेश होता है क्योंकि भिन्नज्ञता के सिवाय निर्धारण हो ही नहीं सकता।

(उ) स्मरण के सिवाय हम अपनी मानसिक स्थितियों का साम्य नहीं जान सकते न भेद जान सकते हैं।

अन्तर्बोध की ये ५ स्थितियां हैं।

हम पहिले यह कह चुके हैं कि ऐन्द्रियज्ञान का अनुभव तब तक नहीं हो सकता जब तक कि इन्द्रियों के द्वारा होने वाला प्रोत्साहन और उससे उत्पन्न होनेवाली मज्जाकेन्द्रों की क्रिया का अन्तर्बोध से मेल न हो। याने इन्द्रियों के कार्य भले चलते रहें परन्तु जब तक उनका अन्तर्बोध से मिलाप नहीं होगा तब तक उनका मन को कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। मनुष्य के मन के विषय में जितना वैज्ञानिक लोगों का युक्तिवाद है वह अन्तर्बोध के अनुभव का केवल व्याख्यारूप स्पष्ट करने वाला है। मानसिक उपपत्ति के सब सिद्धान्त उसी एक अन्तर्बोध की साक्षी पर अवलम्बित हैं। फिर वह साक्षी प्रत्यक्ष होवे अथवा अप्रत्यक्ष। जब अन्तर्बोध किसी विषय को ज्ञात कराता है तो उस विषय में मन की स्थिति का ज्ञान उस विषय के अन्तर्बोध के अनुसार संपूर्ण हो जाता है। इसी से मनोविज्ञानवेत्ता लोग अपने मन के अनुभव अपने अन्तर्बोध के ज्ञान के द्वारा स्थिर और निश्चित कर लेते हैं। इससे यह फल निकलता है कि किसी मानसिक अनुभव का ज्ञान अन्तर्बोध रूपी देवता के पास अपील अथवा प्रार्थना किए बिना नहीं होता। क्या इसी विचार से हमारे कवि श्रेष्ट कालिदास ने कहा है? "सतांहि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः" सचमुच मनोविज्ञान रूपी सुंदर मंदिर, अन्तर्बोध के ज्ञान की नेंव पर विराजता है।

खंड २।

परिज्ञान (Perception.)

हिन्दी भाषा में Perception के लिये परिज्ञान इस शब्द के सिवाय और कोई दूसरा शब्द इस समय हमारी समझ में नहीं आता। इसी शब्द से क्या, बहुतेरे शब्द जो इस लेख में लिखे गए हैं उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनका उपयोग हो रहा है और

कई ऐसे है जिनको प्रथम ही बना लिया है । इससे कठिनाई, दुर्बोधता, अस्पष्टता इत्यादि दोष पैदा होना सहज है परन्तु पहिले पहल तो ऐसा ही होगा । और पण्डित लोग इस वैज्ञानिक चर्चा करने में-विशेष कर देश भाषा में-कठिनाई देख पारिभाषिक शब्द जो कि अंग्रेज़ी पारिभाषिक शब्दों के समान अर्थवाले हों, स्थिर करने का यत्न करेंगे । और फिर ये शब्द अथवा ऐसे ही और शब्द जिनका विद्वान लोग सर्व सम्मति से उपयोग मान्य कर लें, प्रचार में आने लगेंगे और वे शब्द परिचित हो जांयगे । और तब वैज्ञानिक विशेषतः पश्चिमी वैज्ञानिक ग्रन्थों में जो हज़ारों पारिभाषिक शब्द मिलते हैं उनके लिये ठीक ठीक शब्द मिलने में इस समय जो कठिनाई पड़ती है वह कुछ काल पीछे न रहेगी ।

परिज्ञान इसलिये चुना है कि Perception में शुद्ध मनःकार्य होता हुआ जान पड़ता है । क्योंकि अन्तर्बोध में जो भिन्नता होती है वह शक्ति और एक रूपीकरण (Assimilation) उन कारणों से जो कि इन्द्रियज्ञान को पैदा करने वाले हैं, मिलकर परिज्ञान होता है । परिज्ञान यह मानसिक व्यापार है । इसमें केवल व्यापार ही नहीं किन्तु क्रिया भी है । मानसिक सचेतन क्रिया के सिवाय हमें परिज्ञान हो ही नहीं सकता । इस स्थान में थोड़ा सा परिज्ञान का विचार करें तो ठीक होगा । पहिले तो यह देखना चाहिए कि परिज्ञान कैसे होता है । कल्पना कीजिए कि छूरी से आपकी उंगली कट गई तो कटने का दुःख तो इन्द्रियज्ञान है । छूरी की तीक्ष्णता इन्द्रियज्ञान है । छूरी की तीक्ष्णता यह गुण छूरी में है इसलिये आप उसे अपनी त्वचा नहीं कह सकते । उसके चुभने से त्वचा कट कर दुःखदाई ज्ञान हुआ । इसमें छूरी, धार, त्वचा कटना, इत्यादि के एकरूपीकृत ज्ञान को परिज्ञान कहते हैं । परिज्ञान मन की एक क्रिया है जिससे इन्द्रियज्ञान का बोध होता है । इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इन्द्रियज्ञान और परिज्ञान एक ही वस्तु हैं । परिज्ञान एक प्रकार का विशेष ज्ञान है । इन्द्रियज्ञान केवल ऐन्द्रिय मनोराग है । दोनों अन्तर्बोध से सम्बन्ध रखते है । क्योंकि परिज्ञान की क्रिया मूल ही से मानसिक होती है, जिसे अन्तर्बोध की स्थिति मानते हैं । अब

उन मानसिक शक्तियों का विचार करेंगे जो परिज्ञान में सहायक हैं।

खंड ३।

कल्पना (Conception.)

परिज्ञान में इन्द्रियज्ञान के साथ कल्पना, स्मरण और अनुमान (Inference) इनका भी समावेश होता है। इससे इस खंड में कल्पना के विषय में विचार करेंगे। कल्पना मन के उस कार्य को कहते है जिससे बहुत से पदार्थों के गुण को साम्य और साधारण धर्म की भावना का बोध होवे। मान लीजिए कि हमें त्रिकोण की कल्पना करनी है। तो एक से अधिक घन त्रिकोण लेकर हम उनकी घनता से अपना ध्यान हटाकर, उनका बाहरी रूप, स्थान और मुटाई इत्यादि सब विशेषणों का ध्यान छोड़कर केवल उनकी आकृति ही की भावना मन में लावें तो सब त्रिकोणों की तीन कोनों की साम्यता के कारण, त्रिकोण का एक ऐसा प्रत्याहार (abstraction) हमारे मन को होगा जो सब त्रिकोणों को साधारण होगा। इससे यह भी एक बात यहां देख रखनी चाहिए कि त्रिकोणों के सब गुणों को छोड़ एकही गुण की भावना की ओर ध्यान देने से उस मानसिक कार्य की उत्पत्ति होती है जिसे Abstraction अर्थात् प्रत्याहार कहते हैं। मैं अपने मन में कमल पुष्प की कल्पना करते हुए उसके सफ़ेद रंग की तथा उसकी आकृति की कल्पना करता हूं। तथापि मन में उसकी आकृति से उसकी सफ़ेदी की कल्पना निराली कर सकता हूं। इसेही प्रत्याहार कहते हैं। जो कल्पना किसी वस्तु के विषय में उत्पन्न होती है वह केवल उसी प्रकार की समान वस्तुओं की एक साधारण भावना है। मेरा मतलब भावना से वही है जो Image शब्द से है और भावना इस शब्द को मैंने निरे मानसिक अर्थ में लिया है। भावना से (क्योंकि वह इमेज शब्द की समानार्थी है) न तो मेरा अर्थ आंख की पुतली पर दिखनेवाली प्रतिछाया अथवा प्रतिबिंब से है, न उससे मैं मूर्ति का अर्थ जानाता हूं परन्तु भावना शब्द से परिज्ञान का वह अनुभव प्रगट करता हूं जो कि अंतर्बोध को प्रदर्शित होता है, अथवा विप्रदर्शित होता

हो। प्रदर्शन का अर्थ Representation से है। और विप्रदर्शन से Presentation। इतना समझने से अब ठीक समझ में आ जायगा कि कल्पना दो प्रकार की होती है। प्रदर्शक कल्पना और विप्रदर्शक कल्पना। यहां यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि जब हम प्रदर्शक अथवा विप्रदर्शक कल्पना के बारे में कह रहे हैं तो कल्पना शब्द से अब हमारा अर्थ Conception नहीं है। परंतु वह है जिसे हम Imagination कहते हैं। अर्थात् प्रदर्शक कल्पना से हमारा वही मतलब है जो Representative imagination से समझा जाता है और विप्रदर्शक कल्पना से Presentative imagination का अर्थ है। भावना के होने में जो मन का कार्य होता है उसे प्रदर्शक कल्पना कहते हैं। और जब अंतर्बोध को उसका प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तो उसे विप्रदर्शक कल्पना कहते हैं। यहां पर यह तो कहा गया कि अंतर्बोध को किसी भावना का जब प्रत्यक्ष अनुभव होता है तब उसे विप्रदर्शक कल्पना कहते हैं। परंतु यह बात यहां विचार करने की है कि हमारे अंतर्बोध को कोई भी अनुभव प्रत्यक्ष होता है अथवा नहीं। अभी तक हम जो लिख आए हैं उससे यह कभी नहीं मालूम हुआ कि अंतर्बोध स्वयं किसी परिज्ञान गम्य वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। कभी कभी हमें ऐसा मालूम होता है कि हमारे अंतर्बोध के निकट विप्रदर्शक कल्पना अपने सादे रूप में प्रवेश करती है। परंतु यह केवल छाया मात्र है। जो कुछ कि मैं अंतर्ज्ञान से देखता हूं वह मेरे पूर्व अनुभव के ज्ञान पर अवलंबित है।

प्रदर्शक कल्पना जिसमें परिज्ञान फिर से पैदा होता है इस अर्थ में बड़ी विशाल है। परन्तु जब पूर्वानुभूत परन्तु असम्मिलित मानसिक अनुभव रूपी साहित्य से नूतन भावना बनती है तब उसे विधायक कल्पना (Constructive imagination) कहते हैं। विधायक कल्पना ही के बल से कवि लोग नाना प्रकार के पूर्वानुभूत परिज्ञानों का विचित्र मेल कर के नई नई कल्पना बनाते रहते हैं जिनसे उनके विचारों में और उनकी भाषा में मनोवेधकता सहजही आ जाती है। सर्व साधारण लोग कल्पना से विधायक कल्पना का ही अर्थ समझते हैं। परन्तु मनोविज्ञान में कल्पना का शुद्ध और सरल

अर्थ केवल प्रदर्शक कल्पना है।

परिज्ञान और कल्पना एक दूसरे के आधार पर रहते हैं। कल्पना में परिज्ञान प्रथम होता है यह सिद्ध है। और परिज्ञान में कल्पना का भी समावेश होता है। परिज्ञान में हम भिन्नता के तत्व की दृष्टि से देखते हैं और कल्पना में समानता के कारण इकट्ठा करते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि कल्पना में हमारी भिन्नज्ञता नष्ट हो जाती है। जब समानता के कारण हम इकट्ठा करने का यत्न करते हैं तो उसमें प्रत्याहार का कार्य होता है। और प्रत्याहार तो अत्यन्त भिन्नज्ञता बोधक है। जाति वाचक नाम स्थापित करने में हम एकरूपीकरण का आश्रय लेते हैं उसमें भी भिन्नज्ञता अवश्य होती है तथा परिज्ञान के कार्य में हम अवश्यमेव भिन्नता को जानते हैं तो भी हम उसी समय एकरूपता भी करते जाते हैं। जैसे खम्भे के परिज्ञान में उसे मैं, पूर्व और इस समय के अनुभव के द्वारा देखता हूं। इस समय का परिज्ञान मुझे पूर्वानुभव के द्वारा होता है। यदि हमारी कल्पना स्पष्ट है तो हमारा परिज्ञान भी अधिक स्पष्ट होगा।

हर एक मानसिक अनुभव की पहिली अवस्था में दो स्थितियां होतीं हैं, जैसे हम अन्तर्बोध की अवस्था का वर्णन करते हुए कह आए हैं कि अन्तर्बोध पहिले कुछ अस्पष्ट और विलीन दशा में होता है और फिर धीरे धीरे उसको जागृति होकर वह प्रगति, उन्नति और संपूर्णता को पहुंच जाता है। अस्पष्टावस्था से स्पष्टावस्था तक पहिले प्रगति होती है यही नियम परिज्ञान के लिये भी है। वस्तु परिज्ञान एक बार ही नहीं हो जाता। उसकी पहली अवस्था में वह अस्पष्ट होता है। उस अस्पष्ट अवस्था को हम परिज्ञान नहीं कह सकते। वह स्थिति ऐसी है कि जिसमें मानसिक अन्तर्बोध अस्पष्टता की दशा से स्पष्टता की दशा को पहुंचने की राह पर होता है। पहिला अन्तर्बोध तो बहुत ही अस्पष्ट और अव्यवस्थित सा होता है जो कि धीरे धीरे स्पष्ट होता चला जाता है। परन्तु जो नियम अन्तर्बोध की अस्पष्ट दशा से स्पष्ट दशा में पहुंचाने के लिये कारण होते हैं वेही नियम परिज्ञान की अस्पष्ट दशा से स्पष्ट दशा तक पहुंचाने के लिये

सहायक होते हैं।

खंड ४।

स्मरण (Memory) और ध्यान (Attention.)

स्मरण तो केवल प्रदर्शक कल्पना रूपी है। परन्तु इसमें अधिकता यह है कि पहिले किसी प्रकार का अनुभव, 'अहं' इस व्यक्ति को कभी सचमुच हुआ था इसकी सत्यता जान पड़ती है। "मैं ने आगरे का ताज़ देखा है" यह कहने से आगरे के ताज की प्रतिमा मेरे मन में कल्पना रूप से पैदा हुई। यह केवल प्रदर्शक कल्पना हुई। परन्तु ताज के होने और अपनी आंखों से उसे देखने का जो पूर्वानुभूत-सत्य अनुभव मुझे अपने वाक्य में निश्चय दिलाता है वह स्मरण का विशेष अंग है। हिन्दी भाषा से Recollection के लिये अनुस्मृति कहना ठीक होगा। याद करना इस से स्मरण करना अर्थ समझते हैं और कंठ करना भी समझते हैं। जब किसी बीती हुई बात के स्मरण करने का हम मानसिक यत्न करते हैं तो उसे अनुस्मृति कहते हैं।

ऊपर लिखी हुई बातों का यदि बारीक विचार किया जाय तो कई बातों का बोध होगा। जैसे स्मरण में कल्पना के सिवाय कार्य ही नहीं हो सकता। दूसरे, स्मरण में निश्चय अथवा विश्वास (Belief) भी अंतर्गत होता है। तीसरे, बीते हुए अनुभव का अंतर्बोध में शेष रह जाना भी मालूम होता है। चौथे, उस बीते हुए अनुभव के फिर अनुभव होने की मानसिक शक्ति का भी बोध होता है। ये सब स्मरण ही के अंतर्गत कार्य हैं।

स्मरण के पैदा होने में तीन साधनों का उपयोग होते हुए दिखाई देता है। एक तो स्पष्टता (Vividness) दूसरा पुनरुक्ति (Repetition) और तीसरा ध्यान देना (Attention) जब किसी वस्तु का इन्द्रियज्ञान स्पष्टता के साथ होता है तो उसकी भावना अंतर्बोध में स्पष्ट रह जाती है। इसे शरीर की दृष्टि से वैज्ञानिक लोग मस्तिष्क में पैदा होने वाली प्रतिभा (Impression) भी कहते हैं। जब अंतर्बोध की भावना स्पष्ट होती है तो उसके पुनरुद्भव होने में

तनिक भी कठिनाई नहीं पड़ती। केवल इतनाही नहीं किन्तु जो मनःक्षोभ उस पहिले अनुभव के समय हुआ था उसकी पुनरावृत्ति आपसे आपही होने लगती है। विस्तार भय से इस का एक ही उदाहरण यहां दिया जाता है। कविकुल श्रेष्ठ शेक्सपीयर के सुप्रसिद्ध हैम्लेट नाटक में युवराज हैम्लेट के चाचा ने अपने सुशील भ्राता को, विष-प्रयोग करके प्राण हत्या करने का अति घोर और कठोर कर्म किया। फिर हैम्लेट के पिता ने पिशाच योनी में रहते हुए हैम्लेट पर यह प्रगट किया कि उसकी मृत्यु सांप डसने से नहीं हुई जैसा कि किंवदन्ती के द्वारा लोगों में प्रसिद्ध किया गया था, परन्तु जिस सर्प ने उसका प्राण घात किया वह उसी राजलक्ष्मी का उपभोग स्वयं कर रहा है। तब हैम्लेट का विश्वास तो हुआ परन्तु उसका निश्चय न हुआ। अब इस बात का निश्चय करलेने के लिये कि उस निर्दयी कर्म्म का कर्ता अपना चाचा ही है, हैम्लेट ने एक छोटासा नाटक करवाया और उसमें वैसाही काम करके दिखलाया जैसा कि उसके चाचा ने अपने भाई के प्राण लेने के समय किया था, क्योंकि राजकुमार स्वयं बड़ा तत्वविद् था वह मनोविज्ञान के इस नियम को जानता था कि जब वही दुष्कृति नाटक के दृश्य में अत्यन्त स्पष्टता से दिखाई जायगी तो पूर्वानुभूत मनःक्षोभ फिर से ज्यों का त्यों अवश्य ही होगा। उसका प्रयोग किया गया और वैसे ही हुआ! चाचाजी को उस अपने भयंकर कर्म की प्रतिकृति अपनी आंखों के सामने प्रत्यक्ष होते हुए देख अपने नीच कर्म का स्पष्टता से स्मरण हो आया और वे स्वयं बहुत ही क्षुब्ध हो वहां से उठ भागे। हैम्लेट का निश्चय हो गया कि मेरे पिता ने अपनी भूत योनी में जो कहा वह बिलकुल सच था। अस्तु इससे यही जान पड़ता है कि मनुष्य के मन का स्वभाव ही ऐसा है कि पूर्वानुभव का स्मरण यदि उसे स्पष्टता से दिलाया जावे तो पूर्वानुभूत मनोविकार भी जाग्रत होने लगते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे मनोविकार मनःक्षोभ के रूप में भी दिखाई देते हैं।

पुनरुक्ति बार बार कहने को कहते हैं। परन्तु विचार की पुनरुक्ति तो वही है जिसे हम स्मरण कहते हैं। किसी बात को

स्मरण में रखने के लिये और विशेषतः बहुत काल के लिये उसका स्मरण रहे ऐसी यदि इच्छा है तो उसीको वाणी से पुनरुच्चार किया जावे अथवा स्मरण की पुनरावृत्ति की जावे। इससे अंतर्बोध की भावना स्पष्ट हो जाती है। जब वाणी से हम एक ही बात कई बार कहते हैं तो उसे कण्ठ करना कहते हैं। और स्मरण की पुनरावृत्ति करने को चिंतनिका कहते हैं। कण्ठ किया हुआ और चिंतित किया हुआ विषय स्मरण में बहुत काल तक बना रहता है।

ध्यान—स्मरण के काम में ध्यान देने का बड़ा ही उपयोग है। कण्ठ करने में, चिंतन करने में और भूली हुई बात की अनुस्मृति करने में ध्यान की बड़ी आवश्यकता है। स्मरण शक्ति को बढ़ाने के जो कई उपाय आजकल वैज्ञानिक रीति के अनुसार सोचे जाते हैं उन सभों का तत्व केवल इतनाही है कि ध्यान देने का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। जितना आप अधिक ध्यान देंगे उतनीही अधिक कोई बात आपके स्मरण में रहेगी। ध्यान न देकर पढ़ जाने के पश्चात् अपने आपसेही यदि पूछा जाय कि क्या पढ़ा तो यह मालूम हो जायगा कि जो कुछ पढ़ा वह केवल यांत्रिक कार्य के समान पढ़ा मात्र गया। उसकी ओर ध्यान न देने से उसका अंतर्बोध से संयोग नहीं हुआ। और जो अंतर्बोध ही को न प्रगट हुआ तो फिर उसका स्मरण ही क्योंकर रह सकता है। इस कारण आगे पाठ और पीछे सपाट अर्थात् शून्य हो जाता है। मनोविज्ञान में ध्यान की योग्यता बड़ी मानी गई है। क्योंकि अंतर्बोध जो कि सब ज्ञान का खजाना है वह भी ध्यान के न होने से निद्रित्त अवस्था में रह जायगा। स्वयं अंतर्बोध का अथवा अंतर्बोध की किसी स्थिति का ज्ञान हमें ध्यान के सिवाय हो ही नहीं सकता। जिसे हम ध्यान देना कहते है उसमें ध्यान का अभाव अथवा अस्त नहीं हो जाता। परन्तु केवल इतना ही होता है कि ध्यान बट जाता है। जैसे हम कहते हैं कि यह बालक अपने पाठ की ओर ध्यान नहीं देता। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि बालक शून्यचित्त है। नहीं वह यदि पाठ की ओर ध्यान नहीं देता है तो इससे यह समझा जाता है कि वह और किसी बात की ओर

ध्यान दे रहा है। पाठक के कान उमेठते ही उसका ध्यान उस बात से खिंचा! इससे यह ज्ञात होता है कि जिसे हम ध्यान न देना कहते हैं वह ध्यान न देना नहीं है किन्तु किसी और विषय पर पूर्ण ध्यान देना है।

जब हमारा ध्यान एक कार्य की ओर से दूसरे कार्य अथवा वस्तु की ओर खिंच जाता है और पहले कार्य की ओर ध्यान रहता तो है परन्तु पूरा ध्यान नहीं रहता तो उसे 'ध्यान बट जाना' कहते हैं अथवा ध्यान का विभक्त हो जाना कहते हैं। कल्पना कीजिए कि घड़ी की टिक टिक आवाज़ मेरे कानों में पड़ रही है, और मेरे ध्यान को अपना ओर खींच रही है। परन्तु जब मेरा ध्यान उससे हट कर किसी दूसरी वस्तु पर लग जाता है तब मैं उस टिक टिक शब्द को सुनकर भी नहीं सुनता।

इस प्रकार साफ साफ बतला देने पर ध्यान की बहुत कुछ कल्पना समझ में आ जायगी। यदि मनोविज्ञान शास्त्र द्वारा देखा जाय कि ध्यान क्या है और उसका कार्य क्या है तो मालूम होगा कि ध्यान एक मानसिक शक्ति है जो अंतर्बोध को चेतना दिलाती है। ध्यान से मस्तिष्क और मन में आंतरीय काम कैसे चलते हैं इसका उत्तमता से बोध हो सकता है। स्वयं ध्यान से यह समझना चाहिए कि मस्तिष्क में काम हो रहा है। सारे मानसिक कामों के लिये ध्यान आवश्यक है। प्राणिशास्त्र द्वारा यदि विचार किया जाय तो ध्यान की योग्यता और भी बड़ी प्रतीत होती है। मस्तिष्कगत परमाणुओं का क्षय ध्यान की कमी अथवा अधिकता के अनुसार होता है। ध्यान के किसी वस्तु से तन्मय होने से श्वासोच्छ्वास की गति में अन्तर पड़ जाता है यहां तक कि श्वास बन्द हो जाता है, और एक ठंढ़ी सांस भरकर हम अपने को पहिली दशा पर आते हुए देखते हैं। इससे यह मालूम होता है कि दृढ़तर ध्यान के कारण मस्तिष्क के स्नायुगत केन्द्रों में थकावट पैदा हो गई। हम देखते हैं कि गहनविचार, परिश्रम अथवा अकल्पित भय अथवा चिन्ता से तथा यकायक मानसिक अथवा शारीरिक चोट से मनुष्य का ध्यान एक दम खिंच जाता है और मस्तिष्क में बड़े ज़ोर से

मानसिक क्रिया होने लगती है। यहां तक कि शरीर और खासकर मस्तक पर पसीना निकलने लगता है। मतलब यह है कि मानसिक कार्यों में जितना अधिक ध्यान लगा होगा उतना ही अधिक नाश चेतनोत्पादक रस (Protoplasm) के परिमाणुओं का होगा। इस लिये जिन लोगों को अपने काम के लिये अधिक ध्यान देना पड़ता है उनके लिये यह बहुत जरूरी है कि वे अपने रक्त को व्यायाम और स्वच्छता से साफ़ रक्खें, नींद भर सोवें और ऐसे पदार्थ खावें जिनसे मस्तिष्क का पालन होवे।

हमने अंतर्बोध की स्थितियों का जो बयान किया है उसमें अंतर्बोध की भिन्नज्ञता का भी हाल लिखा है। अंतर्बोध में जो भिन्नज्ञता शक्ति है वह केवल ध्यान के कारण उत्पन्न होती है, क्योंकि ध्यान के द्वारा अंतर्बोध को भिन्न पदार्थों की भिन्नता मालूम होती है। आगामी ध्यान उसे कहते हैं कि जब हम किसी बात के होने की राह देखते हुए ध्यान दे रहे हैं। इसे अङ्गरेज़ी में (Expectant attention) कहते हैं। जैसे बालू की घड़ी का कटोरा जब भरने को होता है तब उसके भर जाने का आनेवाला ध्यान एकसा बना रहता है जिससे यह ज्ञान होता है कि इस समय अर्थात् उस कटोरे के डूब जानेके पहिले जो हालत है उससे डूब जाने पर और हालत हो जायगी। अर्थात् आगामी ध्यान से भी उलट पुलट ज़ाहिर होता है और यह उलट पुलट भिन्नज्ञता को जाहिर करता है। इस लिये आगामी ध्यान से भी भिन्नज्ञता प्राप्त होती है।

ध्यान का हमारे सुख दुःखों पर भी बड़ा असर पड़ता है। दुःख की ओर एकसा ध्यान लगा रहने से दुःख अधिक दुःखदाई हो जाता है। सुख की ओर अधिक ध्यान देने से सुख के अनुभव से उत्पन्न होने वाला आनन्द अधिक होता जाता है। इसी प्रकार दुःख की ओर ध्यान न देने से दुःख की दुःखदायकता कम हो जाती है, और सुख की ओर ध्यान न देने से बन में उपजे हुए अनाघ्रात पुष्प के समान, उसका आनन्द अननुभूत ही रह जाता है। अर्थात् यदि हम इस संसार में दुःखों की ओर कभी ध्यान दिया करें और सुखों की ओर अधिक ध्यान दिया करें तो दुःखों से

पैदा होने वाले क्लेश कम हो जांयगे और सुखों से होने वाला आनन्द अधिक होता जायगा। ध्यान को संकल्प से संगत कर दीजिए फिर तो दुःख की तुच्छता प्रतीत कर लेने में कुछ भी कठिनाई नहीं होगी। कहते हैं कि तत्ववेत्ता सुकरात जाड़े के दिनों में जूता या खड़ाऊं नहीं पहिनते थे और नंगे पैर बर्फ पर निश्चिन्त चलते थे। पर उनके साथी जूते पहिनते और ऊनी कपड़ों से अपने पैरों को बचा कर भी जाड़े से पैर ठिठर जाने की शिकायत किया करते थे। एक दिन उन्होंने सुकरात से पूछा कि क्या आपके पैरों में बर्फ पर चलने से दुःख नहीं होता। सुकरात ने कहा यह संकल्प का कारण है। आप लोग भी यदि दुःख की ओर ध्यान न दें और दृढ़ चित्तता रक्खें तो मेरे समान बर्फ पर चल सकते हैं। यह तो तुम्हारा निज का डरपोकपन है जो तुम्हारे दुःखों को अधिक दुःखदाई बना देता है।

खंड ५।

स्मरण के भाग और समुन्नति।

स्मरण शक्ति के तीन भाग हैं (१) ग्राहक स्मरण शक्ति (Receptive memory) (२) मेधा शक्ति (Retentive memory) और (३) तात्कालिक स्मरण शक्ति (Ready memory)। जिन लोगों को पढ़ाने का काम करना पड़ता है उन्हें नित्य यह मालूम होता रहता है कि किसी बालक की ग्राहक शक्ति अच्छी होती है, किसी की मेधा शक्ति, और किसी की तात्कालिक-स्मरण शक्ति अच्छी होती है। जिस बालक की ग्राहक शक्ति अच्छी होती है वह अपना पाठ तुरन्त ही याद कर लेता है। परन्तु यदि उसकी मेधाशक्ति अच्छी न हो तो वह अपना पाठ थोड़े दिनों में भूल जाता है। बहुधा बालकों की ग्राहक शक्ति अच्छी होती है इससे उन्हें कण्ठ करने में कठिनाई नहीं पड़ती। परन्तु उनकी मेधाशक्ति अधपकी होने के कारण वे अपने कण्ठ किए हुए विषय को कुछ काल में भूल जाते हैं। ऐसे बालकों की स्मरण शक्ति केवल ग्रहणशील होती है। ग्राहक शक्ति तीव्र होना या न होना मस्तिष्क की नैसर्गिक रचना, पूर्वानुभव, शिक्षा इत्यादि बातों पर निर्भर है। जिसकी ग्राहक

शक्ति तीव्र होती है उसकी कल्पना शक्ति अच्छी होती है और मस्तिष्क ऐसा निर्मल होता है कि भावना की प्रतिमा अत्यन्त स्पष्ट और शीघ्र उत्पन्न होती है। परन्तु ध्यान की कमी होने से वह भावना शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

(२) मेधा शक्ति वह है जो किसी स्मृतिगृहीत विषय को सदा स्मरण में स्थिर और स्पष्ट रक्खे। जिस प्रकार ग्राहकता मनुष्यों में बहुतायत से दिखाई देती है वैसी मेधा शक्ति नहीं दिखाई देती क्योंकि कदाचित् मेधा शक्ति के लिये उपार्जन करने की आवश्यकता होती है। पुनरुक्ति, अभ्यास, और ध्यान का उसी विषय पर बार बार लगाना, इन साधनों से ग्राहक स्मरण को मेधाशक्ति के रूप में बदल सकते हैं।

(३) कभी कभी हम देखते हैं कि विद्यार्थी परीक्षा के लिये अच्छी तरह से विषय को याद करके, अभ्यास से पक्का करके, तैय्यार होकर जाते हैं परन्तु परीक्षा के समय उन्हें पढ़ा हुआ विषय भी याद नहीं आता। यह बात तात्कालिक स्मरण शक्ति के अभाव से होती है। तात्कालिक स्मरण शक्ति गृहीत विषय को स्मरण में उपस्थित कर देती है। इसके दो प्रकार हैं (१) एक तो वह जिस में हाल के हाल कोई बात पढ़ी या सुनी वही तत्काल कह सुनाई जावे। जैसे कहते हैं कि राजा भोज की राजसभा में ऐसे कुछ पण्डित थे जिनमें से किसी को एक ही बेर श्लोक सुनने से कंठ हो जाता था और किसी को दो बेर सुनने से। इससे यह बात मालूम होती है कि एक बेर या दो बेर कहने से या सुनने से जिन्हें तुरन्त याद हो जाता है उनकी ग्राहक शक्ति बहुत तीव्र होती है। (२) दूसरे जिससे पहला पढ़ा हुआ विषय या जाना हुआ हाल समय आने पर तुरन्त स्मरण कर के कह देना। इसमें समय सूचकता (Presence of mind) का भी सन्निवेश होता है। अधिकांश तो यह शक्ति स्वाभाविक होती है। नहीं तो ध्यान और प्रसंग की आवश्यकता के कारण, अभ्यास से भी इस शक्ति को पा लेते हैं। ऐसा कोई बिरला ही देखने में आता है जिसमें यह स्मरण की गुणत्रयी पूरी तरह पर पाई जाती हो। जिन बालकों में

उपरोक्त गुणत्रयी प्रथम ही से दिखाई पड़े उनको बड़े होनहार समझना चाहिए।

स्मरण शक्ति बढ़ने के लिये वैज्ञानिक लोगों ने जो बातें लिखी हैं उनका वर्णन कर के, इस बहुत बड़े विषय को हम समाप्त करते हैं। (१) प्रथम और सब से सहल उपाय अभ्यास (Exercise) है। सब साधनों में सब से उत्तम और अच्छा साधन यही दिखाई देता है। एक जगह लिखा है-

"करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिलपर परत निसान"॥

इसी कारण कदाचित् हमारे प्राचीन पद्धति के पण्डित दृढ़ाभ्यासी होते थे। इसका बुरा परिणाम यह हुआ है कि लोगों को अब रटने की आदत पड़ गई। (२) कल्पना साहचर्य के तत्वों को समझना और उनका उपयोग करना। कल्पना साहचर्य से नवीन कल्पनाओं का सम्मेलन आपस में तथा पूर्वानुभूत विषयों से किया जावे। कल्पना साहचर्य के विषय में विस्तार पूर्वक आगे लिखा है। (३) वर्गीकरण और व्यवस्था-विषयों का अथवा स्मरणीय बातों का, जो कि एक जातीय हों, वा सदृश हों, एक वर्ग बनाकर याद रखने में सुलभता होती है। इससे ग्राहक शक्ति की उन्नति में बहुत सहायता मिलती है। (४) जो बात हमें याद नहीं रहती उसे लिखने से वह स्मरण में दृढ़ हो जाती है क्योंकि लेखन से मनुष्य में शुद्धता का गुण आता है।

स्मरण शक्ति से कई लाभ हैं। प्रथम तो स्मरण के कारण हमारे निज के पूर्वार्जित ज्ञान और अनुभव का संचय हमारे पास स्थिर बना रहता है। और जैसे धनाढ्य अपनी सम्पत्ति का विभव जब चाहे तब बतला सकता है उसी प्रकार ज्ञान भाण्डागार से स्मरण के द्वारा चाहे जितना विद्या विभव जगत में फैला सकते हैं। दूसरे, स्मरण से अन्य लोगों के ज्ञान और अनुभव से भी हम लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि पूर्वकाल में जो बड़े बड़े धीयान, शास्त्रज्ञ, तत्वविद, इत्यादि लोग हो गए हैं उनके ज्ञान का संचय जो ग्रन्थों में एकत्रित करके भाषा में साहित्य सागर भरा पड़ा है उसमें से

मन माना ले सकते हैं और स्वकीयता के आनन्द को चख सकते हैं। तीसरे स्मरण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि हम अपने ज्ञान को उसके द्वारा नित्य बढ़ा सकते हैं। जिनकी स्मरण शक्ति उत्तम होती है वेही सबों से अधिक विद्यार्जन थोड़े काल में कर लेते हैं। चौथे स्मरण के प्रभाव से हमे काल का महत्व और अनन्तता का बोध होता है। इसमें कल्पना का भी सहयोग होता है। और पांचवें हम स्वयं अपने को अहं भाव से पहिचानने लगते हैं और रोग, स्थित्यन्तर इत्यादि से शरीर के कृश अथवा छिन्नगात्र होने पर भी उसे नहीं भूलते।

खंड ६।

कल्पना साहचर्य (Association of Ideas.)

उत्तररामचरित में कवि-कण्ठ-भूषण भवभूति ने श्रीरामचन्द्र जी का दण्डक बन को फिर जाना वर्णित किया है। उस दण्डकारण्य में श्रीरामचन्द्र पहिले सीता जी के साथ रहे थे और वहां अनेक प्रकार के सुखानुभव लेते रहे। वहां उन्होंने नदी, वृक्ष, पाषाण, निर्झर इत्यादि के स्वच्छोदक, घनी शीतल छाया, सुखकर स्पर्श और आनन्ददायक अवगाहन, जलपान इत्यादि का मन मोदक स्वाद सीता जी के साथ लिया था। जब वे वहां फिर पहुंचे तब उन सब पदार्थों को देखतेही उन्हें सुकुमारी प्यारी सुन्दरी सीता का स्मरण हो आया जिनके साथ पहिले उन्होंने उन स्थानों में निवास और अनेक क्रीड़ा और लीला की थीं। केवल स्मरणही नहीं किन्तु उसे अपने से दूर और जगत से नष्टप्राय समझ कर उसके विरह दुःख से अतितर दुःखित हो रोने लगे। उस प्रियतमा का स्मरण होते ही सब सुख दुःखों के अनुभव मूर्तिमान् मन के सम्मुख उपस्थित हुए और अन्त में वह स्मरण अन्तःक्षोभ में परिणत हो गया।

यह परिणाम क्योंकर हुआ? पण्डित 'हॅमिल्टन' कहते हैं कि एक पूर्वपरिचित पदार्थ का, तत्सम्बद्ध विचार, मनोराग, इच्छा इत्यादि के सह, अन्तर्बोध को ज्ञान होते ही, वह ज्ञान, पूर्वपरिचित पदार्थ के सहयोगी और दूसरे पदार्थों की और तत्सम्बद्ध

विचार, मनोराग और इच्छाओं की स्मृति करा देता है। यह मानवी स्वभाव है। यह एक मनोधर्म है। इसे कल्पना साहचर्य के नाम से पहिचानते हैं। यदि यह पूछा जाय कि कल्पना साहचर्य क्या है तो उसका उत्तर यह होगा कि कल्पना साहचर्य उस मानसिक तत्व को कहते हैं जिसके द्वारा हम किसी मानसिक स्थिति अथवा अनुभव का स्मरण कर सकते हैं। जैसे दिल्ली दरबार का विचार आतेही उसके अधिपति लार्ड कर्ज़न् साहिब तथा और और सुप्रसिद्ध महिमानों का और सब रचना का स्मरण आपसे आप ही हो जायगा। क्योंकि दरबार की कल्पना लाट साहिब के साहचर्य से सुसम्बद्ध है। इससे यह प्रमाणित होता है कि मानसिक कल्पना और विचारों में एक प्रकार का सम्बन्ध तत्व रहता है। और एक कल्पना अथवा विचार मन में आतेही वह अपनी सहयोगी कल्पनाओं को वा बिचारों को साथही साथ मन के सामने स्मरण द्वारा उपस्थित कर देती है और इस कार्य में एक तरह की पद्धति और क्रमिकता भी दिखाई देती है। जब हम अधिक गम्भीर विचार में मग्न होते हैं तो ये सहचारिणी कल्पनाएं एक दूसरे के साथ उपस्थित तो अवश्य होती हैं परन्तु उनसे हमें काम न होने के कारण हम उनको स्वीकार नहीं करते। हम अपने कार्य सम्बन्धी विचार अपनी आवश्यकता के अनुसार करते चले जाते हैं। हमारे काल्पनिक चिन्तन में अथवा दिवास्वप्नों में और स्वप्नों में भी, यदि हम विचारपूर्वक देखें तो मालूम होगा कि कल्पनाएं अनियमित रीति से वा क्रम की मर्यादा को छोड़ भागती नहीं फिरतीं परन्तु वहां भी एक कल्पना दूसरे की अनुगामिनी होकर आती है। और इस अनुसरण में एक प्रकार की पद्धति और सम्बन्ध होता है। असम्बद्ध से असम्बद्ध भाषण को सम्बद्ध करने का यत्न कीजिए तो ज्ञात हो जायगा कि हर एक बात से किसी न किसी व्यावहारिक कार्य का सम्बन्ध अवश्य था।

जब दो या अधिक कल्पना बार बार एक साथ मन से परिचित हो जाती हैं और उनका साहचर्य अत्यन्त दृढ़ हो जाता है, तो वे स्मरण में उपस्थित होते समय इतनी एकमय हो जाती हैं

कि उनकी भिन्नता समझना कठिन हो जाता है। जैसे किसी पहिये के आरों को कई प्रकार के रंग देकर बड़े वेग से घुमाइए तो वे रंग अलग अलग दिखाई नहीं देंगे परन्तु केवल एकही रंग याने सफेदी दिखाई देगी, उसी प्रकार साहचर्य की दृढ़ता के कारण कल्पनाएं, मन को, अपने भिन्न रूपों को छोड़ एकरूपता से दिखाई देती हैं और इतनी एकमय हो जाती हैं कि वे दो अथवा अधिक कल्पनाएं हैं यह समझना भी दुर्घट हो जाता है।

अब यह देखना है कि कल्पना साहचर्य के उत्पन्न होने में क्या कारण होते हैं। कौन कौन नियमों के अनुसार कल्पना साहचर्य उत्पन्न होता है। तीन कारणों से कल्पना साहचर्य उत्पन्न होता है। (१) साम्य-तत्व (२) सान्निध्य-तत्व और (३) कार्य-कारण-भाव। एक वस्तु के समान दूसरी वस्तु दिखाते ही पूर्व में देखी हुई वस्तु की भावना मन में आती है और यह सूचित करती है कि इस समय की देखी हुई चीज में और पहिले देखी हुई चीज में समानता है। यह समानता उस पहिले देखी हुई चीज की जिससे समानता निश्चित हुई थी उसका स्मरण दिलाती है। इसे साम्य-तत्व (Law of Similarity) कहते हैं (२) जिन दो पदार्थों को हम नित्य इकट्ठा देखते हैं उन में से एक यदि अलग हो जाय तो, उपस्थित वस्तु को देखते ही उस वस्तु का जो अब उपस्थित नहीं है तुरन्त स्मरण हो जायगा। इसमें सान्निध्य-गुण प्रधान होने के कारण इसे सान्निध्य तत्व कहते हैं। इसे पाश्चिमात्य वैज्ञानिक लोग (Law of Contiguity) कहते हैं। (३) कार्य-कारण-भाव उस तत्व अथवा नियम को कहते हैं जिस से यह प्रतीत होता है कि जड़ सृष्टि में तथा सूक्ष्म सृष्टि में अर्थात् निर्जीव पदार्थों में और जीवधारियों में उनके कार्यों को तथा क्रियाओं को जो सम्बन्ध नियमन करता है वह नित्य, सर्वत्र, और सर्वव्यापक है। जैसे बालक को यह अनुभव हो जाता है कि उंगली आग में लगाने से जल जाती है क्योंकि अग्नि का जलाना यह स्वभाव है। एक बार यदि उसकी उंगली जल जाय तो वह फिर अपना हाथ आग के पास कभी नहीं ले जायगा। क्योंकि कार्य-कारण-भाव से कल्पना साहचर्य उत्पन्न हो जाता है जिससे उस बालक

को गतानुभव का स्मरण हो जाता है और फिर वह कभी भूल कर भी आग के समीप नहीं जाता। इसे (Law of cause and effect) कहते हैं और हम इसे कार्य-कारण-भाव कहते हैं।

खंड ७।

कार्य-कारण-भाव का विचार (Law of Causation)

जब हम कार्य-कारण-भाव का विचार करते हैं तब हमें तुरन्त यह ज्ञान हो जाता है कि इसमें अनोखे विचार और कल्पना भरी हुई हैं। हमको स्वभावतः उसका ज्ञान होता है और हम किसी प्रकार उसे रोक नहीं सकते, न हम उसकी सत्ता का प्रतिबन्ध कर सकते हैं। वह अपना अधिकार हमारे ऊपर अवश्यही जमाता चला जाता है और हमारा उसके सामने कुछ भी बस नहीं चलता। जब हम उसका और अधिक विचार करते हैं तो उसकी अगम्यता और विस्तृतता हमें अधिक ही दिखाई देती है, और कार्य-कारण-भाव की विशालता की सम्पूर्ण कल्पना हम नहीं कर सकते पर फिर भी हमें उसकी सत्यता माननी ही पड़ती है। जब इस प्रकार वैज्ञानिक लोग इस महत्तत्व का यश गा रहे हैं, तब हमारा कर्तव्य है कि इसका विचार हम यहां अवश्यही करें। इस विषय में सब से श्रेष्ट और पूर्णाधिकारी वही तत्ववेता पुरुष है जिसका नाम इस तत्व के कारण सार्थक हो बैठा है। वह वही तत्ववेता पुरुष है जिस के विषय में हम 'संशयात्मा ह्यूम' इस नाम से पहले अध्याय में लिख आए हैं। ह्यूम साहिब कहते हैं कि जब मनुष्य ने प्रथम ही गति का प्रवाह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को पहुंचते हुए देखा, जैसा कि अंटामेज़ के खेल में देखा जाता है, तब वह इस बात का निश्चय नहीं कर सकता था कि एक कार्य दूसरे कार्य से सम्बद्ध है। जब उसने इसी प्रकार के कार्यों को कई बार होते हुए देखा तब उसे यह निश्चय हो गया कि एक कार्य दूसरे से सम्बद्ध है। इस सम्बन्ध की नवीन कल्पना में क्या रूपान्तर हुआ? रूपान्तर इतनाही हुआ कि वह अपनी कल्पना से समझता है कि इन कार्यों में आपस में नित्य सम्बन्ध है, और एक कार्य अथवा कारण को देखतेही उसके

पूरा करे । इस सभा का अधिवेशन उस दिन ११ बजे सेण्ट्रल हिन्दू कालेज में प्रारम्भ होगा ।

(६) सभा ने बङ्गाल के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर को एक पत्र लिखा था कि मेक्मिलन कम्पनी ने जो वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकें स्कूलों के लिये बनाई हैं उन की हिन्दी रद्दी है । डाइरेक्टर साहब ने सभा की प्रार्थना पर मेक्मिलन कम्पनी को कहा है कि वे अपनी पुस्तकों को हिन्दी के किसी योग्य विद्वान से दोहरा कर ठीक करवावें ।

(७) सभा की ओर से एक अर्जी लिखने वाला बनारस की कलक्टरी कचहरी में नियत किया गया है जो बिना कुछ लिए हुए दीन लोगों की अर्जियां हिन्दी में लिखता है ।

(८) सभा ने एक पत्र प्रान्तिक गवर्न्मेण्ट को लिखा है जिसमें यह दिखाया है कि स्कूलों के बालकों को हिन्दी और उर्दू दोनों के एक साथ पढ़ने से कष्ट उठाना पड़ता है–इस लिये यह आज्ञा पलट दी जाय जिसमें वे हिन्दी या उर्दू जो चाहें पढ़ें ।

(९) सभा के पुस्तकालय की सूची छप गई है । उस का मूल्य =) रक्खा गया है ।

(१०) रामायण का कथा भाग अब छप रहा है । यह बहुत शीघ्र छप जायगा और तब रामायण बिक्री के लिये प्रस्तुत हो जायगी ।

(११) सभाभवन का काम चल रहा है । अगस्त मास के अन्त तक बीच के हाल की छत पट जायगी । परन्तु अभी रुपए की बहुत कमी है ।

(१२) पृथ्वीराजरासो पर "राजपूत" पत्र की टिप्पणी का अच्छा प्रभाव पड़ा है । उस के कारण अनेक महाशय इस के ग्राहक हुए हैं ।

(१३) भारतजीवन और प्रयाग समाचार पत्र के सम्पादकों ने सभा के प्रत्येक अधिवेशन का पूरा कार्य विवरण अपने पत्र में छापना स्वीकार किया है । सभासदों को उनके द्वारा सभा के सब कार्यों की सूचना मिलजाया करेगी ।

नवीन अधिकार प्राप्त सभासद ।

२५ जूलाई १९०३–(१) पण्डित राजनारायण शर्म्मा, काशी (२) बाबू शिवनारायण लाल, काशी, (३) बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा,

काशी, (४) पण्डित कन्हैया लाल शर्म्मा, काशी, (५) ज्ञानी सुन्दर लाल नागर, भरतपुर, (६) बाबू मोहन लाल सरावगी, खुर्जा (७) बाबू मदन लाल, हाथरस।

नवीन प्राप्त पुस्तकें।

(१) स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती, मुजफ्फरपुर—ब्रह्मचर्य।

(२) मुंशी उदित नारायण लाल, गाजीपुर—जीवनसन्ध्या।

(३) पण्डित देवदत्त शर्म्मा, गाजीपुर—पावस प्रेम प्रवाह।

(४) बाबू कन्हैया लाल अग्रवाल, प्रयाग—श्री भाग १ और २।

(५) बाबू बिसाहू राम, रायपुर—कृष्णायण।

(६) एडिटर, भारतमित्र, कलकत्ता—रत्नावली, पानीपत, पृथ्वीराज चौहान और चलता पुर्जा।

(७) बाबू भैरव नाथ, काशी—प्रश्न चण्डेश्वर।

(८) पण्डित जगन्नारायण शर्म्मा, काशी सङ्गीत सुधार्णव।

(९) मुंशी मुसद्दी राम शर्म्मा, मुरादाबाद—यथार्थशान्ति निरूपण।

(१०) पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी, काशी—बालप्रभाकर भाग १ संख्या १।

(११) पण्डित सिद्धेश्वर शर्म्मा, काशी—बालप्रभाकर भाग१संख्या१

(१२) उपाध्याय पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, मिर्जापुर—भारत बधाई।

(१३) बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, काशी—हड्डियों के बैठालने की पुस्तक, निदान विद्या।

(१४) सेठ खेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई—रसवाटिका।

(१५) बाबू मोहन लाल, बरेली—भाषा प्रदीप तृतीय भाग।

(१६) बाबू मथुरा प्रसाद, काशी—डांक पर डाका।

(१७) पण्डित ईश्वरी प्रसाद, मेरट—सीता स्वयम्बर।

(१८) पण्डित शङ्कर जी, काशी—शिव लिङ्ग पूजा विधान, मूर्ति पूजा विचार, बका विनय, और भजन चालीसा।

(१९) बाबू कार्तिक प्रसाद, काशी—नलोदय काव्य।

(२०) Indian Antiquary for May and June, 1903.

(२१) एशियाटिक सोसायटी, बङ्गाल— Journal Vols. LXXI and LXXII. and Proceeding Nos. X and XI.

(२२) डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन पीएच०, सी० आई० ई० इङ्गलेण्ड Certain suffixes in the Modern Indo-Aryan Vernaculars.

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल
विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न

हरिश्चन्द्र ।

भाग ८ } दिसम्बर सन् १९०३ ई० { संख्या २

विषय तथा लेखक ।

(काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)
वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस
मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित ।

Issued 4th December 1903.

सभा सम्बन्धी समाचार ।

(१) वैज्ञानिक कोश को दोहरा कर ठीक करने के लिये निम्न लिखित महाशयों की कमेटी के अधिवेशन ता॰ २१ सितम्बर से २९ तक काशी में हुए (१) पं॰ विनायक राव, जबलपुर (२) लाला खुशीराम एम॰ ए॰, लाहोर (३) लाला भगवती सहाय एम॰ ए॰, बांकीपुर (४) पं॰ माधव राव सप्रे बी॰ ए॰, नागपुर (५) महामहोपाध्याय पं॰ सुधाकर द्विवेदी (६) बा॰ गोविन्द दास (७) बा॰ भगवान दास एम ए॰ (८) बा॰ श्यामसुन्दर दास (९) बा॰ दुर्गाप्रसाद बी॰ ए॰ । इस कमेटी ने ज्योतिषिक और भैागोलिक शब्दों को दोहरा कर ठीक कर दिया और अर्थ शास्त्र और दर्शन शास्त्र के शब्दों को ठीक करने के लिये कमेटियां नियत कीं, शेष कार्य को समाप्त करने के लिये इस कमेटी का अधिवेशन २७ दिसम्बर से पुनः काशी में प्रारम्भ होगा जिसमें उक्त महाशयों के अतिरिक्त प्रोफेसर टी० के० गज्जर ने भी आने की प्रतिज्ञा की है ।

(२) मुंशी गंगा प्रसाद वर्मा (लखनऊ) सभा के आनरेरी सभासद चुने गए हैं ।

(३) रामचरित मानस छप कर तय्यार हो गया । अब इसकी जिल्द बंध रही है—सभासदों के लिये ६) रु० और सर्व साधारण के लिये ८) रु० इसका मूल्य रक्खा गया है ।

(४) बुलंदशहर के बा॰ सन्नूलाल गुप्त ने अपने मृत पुत्र के स्मरणार्थ ५००) रु० इस सभा को देने को लिखा है । सभा उनके दुःख में सहानुभूति प्रगट करती और इस दान के लिये उन्हें धन्यवाद देती है ।

(५) सभा का एक डेपुटेशन जनवरी मास में बाहर जानेवाला है।

(६) सभा को यह आशा थी कि उसके नवीन गृह का प्रवेशोत्सव दिसम्बर मास के अन्त में हो सकेगा पर कई कारणों से उसका होना असम्भव जान पड़ता है—अब यह उत्सव फर्वरी १९०४ में होगा । संयुक्त प्रदेश के श्रीमान लेफ्टनेंट गवर्नर बहादुर ने इस उत्सव में पधारकर कृपापूर्वक सभापति का आसन ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की है । इसी दिन सायंकाल को साधारण सभा का विशेष अधिवेशन भी होगा ।

सम्बद्ध कारण अथवा कार्य के होने का वह भविष्य-कथन कर सकता है। अर्थात् जब हम कहते हैं कि एक पदार्थ दूसरे से सम्बन्ध रखता है तो इस हमारे कथन से हमारा इतना ही अर्थ है कि उन दोनों पदार्थों में एक प्रकार का सम्बन्ध है। एक दूसरे का आगामी होता है और दूसरा पहिले का पश्चात्गामी होता है। आगामी को कारण कहेंगे और पश्चात्गामी को कार्य कहते हैं। यह सम्बन्ध नित्य और अटल है; यह विश्वास हमारे मन को हो जाता है और इसी कारण यह अनुमान किया जाता है कि एक के होने से दूसरा अवश्य होगा। यही उन दोनों के अस्तित्व का प्रमाण है। इस लिये कारण की कल्पना होते ही कार्य की कल्पना स्वयं ही मन में उत्पन्न हो जाती है। यह अनुभविक ज्ञान है कि कार्य अथवा कारण इनमें से एक का दर्शन होते ही दूसरे की स्मृति तुरन्त हो जाती है। इस ह्यूमीय प्रतिपादन से यह मालूम होता है कि कार्य-कारण-भाव का जो विश्वास उत्पन्न होता है, वह पदार्थों के साहचर्य को देखकर उन्हें एकत्रित करने वाली हमारे मन की प्रवृत्ति के कारण होता है और वह प्रवृत्ति अनुभव के कारण उत्पन्न होती है। परन्तु ह्यूम के पीछे जो विचारशील विज्ञानी लोग हुए हैं और जो तात्कालिक ज्ञानवादी (Intuitionalist) हैं उनमें से एक कहते हैं कि वह विश्वास जो हमारे मन में कार्य-कारण-भाव के विषय में उत्पन्न होता है वह अपने आप होता है। यह हमारे मनोधर्म का नियम है कि ऐसा विश्वास स्वयं उत्पन्न होवे, न कि अनुभव के पश्चात्।

तत्ववेत्ता मनःशील (Mansel) कार्य और कारण इनमें से कारण की मीमांसा करते हुए कहते हैं कि कारण इस कल्पना के विषय में हमें दो विशिष्ट कल्पनाओं का अनुमान होता है। पहिले तो यह अनुमान होता है कि कोई बुद्धिमान पुरुष शक्ति का उपयोग-कर्ता है और दूसरी कल्पना यह होती है कि एक घटना के पीछे दूसरी अवश्य और सदा होती है।

खंड ८।

स्वप्न और उसका कल्पना साहचर्य से सम्बन्ध।

हम लिख आए हैं कि किसी मानसिक कार्य अथवा व्यापार के होते समय मस्तिष्कगत मज्जा तन्तुओं का संचालन होता है और चेतनोत्पादक रस के जो परमाणु उन तन्तुओं के मध्य प्रवाहित हुआ करते हैं वे उपयोग से क्षय होते हैं। यही घटना सारे शारीरिक कार्यों के लिये भी सत्य प्रतीत हुई है। परन्तु हम इसका, मन के कार्यों के कारण से, मस्तिष्क में होने वाले व्यापारों की दृष्टि से विचार करेंगे। मोटी तरह से यदि कहा जाय तो यों कहेंगे कि रक्तवाहिनी नसों के द्वारा हृदय के रक्ताशय से रक्त का प्रवाह एकसा मस्तिष्क की ओर बहता हुआ चला जाता है। वहां यदि मस्तिष्क कार्यपरायण हुआ तो काम में आ जाता है, नहीं तो जो अवयव कार्य करता होगा उसी जगह की ओर खिंचकर वह जा पहुंचता है। जैसे कल्पना कीजिए कि शहर में आग लगी तो जिस जगह आग लगी उसी ओर, सारे नलों को और दिशाओं के प्रवाह को बंद करके, पानी का प्रवाह घुमा दिया जायगा। इसी प्रकार शरीर अथवा मस्तिष्क के किसी भाग में जहां आवश्यकता अधिक होती है उसी ओर रक्त का प्रवाह अधिक होता है। जितनी तेज़ी से वह कार्य चल रहा हो उतनीही अधिकता उस रक्त के परिमाणुओं की होता है और यदि स्निग्ध पोषक और देर में पचनेवाले भोजन द्वारा उस काम में आए हुए रक्त की जगह भर न आई तो मस्तिष्क और शरीर के अङ्ग दुर्बल होजाते हैं। योग्य भोजन न पहुंचने से हृदय के रक्ताशय में थोड़ा रक्त रह जाता है। वहां से पूरी तरह रक्त की त्रुटि पुरी करने योग्य अधिक रक्त नहीं पहुंच सकता। इससे मस्तिष्क में रूखापन आजाता है। अर्थात् रक्त की आवश्यकता मस्तिष्क को अधिक होती है। प्रकृति देवी का यह स्वभाव है कि शरीर का जो भाग अधिक काम करे उसे अधिक भोजन देवे। इसमें वह केवल न्यायीही नहीं है किन्तु सदया भी है। बस सब भागों की

ओर जाने वाले रक्त का प्रवाह खिंच जाता है और मस्तिष्क की ओर भेजा जाता है। आप देखते हैं कि विद्यार्थी या विद्याव्यसनी लोग जिन्हें अच्छा भोजन खाने को नहीं मिलता और विद्यार्जन में परिश्रम बहुत करना पड़ता है, वे बहुधा दुर्बल और बलहीन हो जाते हैं। अस्तु।

जब हृदय से रक्त का प्रवाह कम होजाता है और मस्तिष्क का पालन पूरी तरह नहीं होता और खासकर जब मनुष्य सोता है, तब यह प्रवाह और भी धीमा पड़ जाता है। उस समय भी मस्तिष्क में कुछ न कुछ काम हुआ करते हैं। जैसे किसी चकई को घुमा दीजिए फिर वह स्वयं कुछ काल तक घूमती रहेगी। इसी प्रकार जागने की अवस्था में मन के व्यापार बड़े वेग से चलते रहते हैं, मनुष्य के सो जाने पर भी मस्तिष्क में कुछ बाकी काम अपने आप हुआ करते हैं। परंतु निद्रा लग जाने से अन्तर्बोध की शक्ति विलीन होजती है अर्थात् रुक जाती है, जागती दशा में जिस प्रकार हमारे विचारों का तथा मानसिक कार्यों का बोध अन्तर्बोध के द्वारा होता रहता है उस प्रकार सोती अवस्था में नहीं होता। नींद पूरी होने के पहिले अन्तर्बोध की जागृति होने लगती है और एक ऐसी हालत पैदा होती है जिस में आधी तो निद्रा और आधी अन्तर्बोध की जागृति होती है। इस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में (क्योंकि यह नींद का अन्तिम काल होता है) हृदय कोश से मस्तिष्क का पोषण बिलकुल थोड़ा वा कुछ भी नहीं होता है। और मन के बाकी व्यापारों के कारण कल्पना उत्पन्न होती हैं और यद्यपि उनमें कुछ भ्रम अवश्य होता है तथापि उसमें सादृश्य के कारण और कल्पना साहचर्य के कारण कुछ की कुछ असंगत कल्पनाओं के तरंग उठते चले जाते हैं और इन कल्पना तरंगों को हम अपनी आधी अन्तर्जागृति के द्वारा जान भी सकते हैं और जागने पर याद करके कह सकते हैं कि आज हमने यह स्वप्न देखा। उपरोक्त विवेचन से कईएक बातें ध्यान देने योग्य मालूम होती हैं। (१) मस्तिष्क अन्तर्बोध से विहीन होने पर भी काम करता रहता है। (२) पूर्वानुभूत कल्पनाओं की प्रतिमा मस्तिष्क में परिणाम रूप से रह जाती है। (३) अन्त-

बांध की आधी जागृति में भी उन कल्पनाओं का व्यापार मालूम हो जाता है। (४) उन कल्पनाओं में सादृश्य और साहचर्य तत्व श्रेष्ठ होता है। (५) कल्पना अर्थात् भावना जिस प्रकार स्पष्ट होवे उसी प्रकार स्वप्न भी स्पष्ट होता है और शीघ्र स्मरण में आजाता है। (६) स्वप्न की कल्पना सिलसिलेवार न होने से विश्वासनीय नहीं होती।

खंड ६।

अनुमान (Inference.)

बहुधा वैज्ञानिकों ने अनुमान का विचार उसकी परिणत अवस्था की दृष्टि से तर्क शास्त्र में किया है, और इस दृष्टि से अनेक प्रकार की परिभाषा लिखी हैं। परंतु हमें यहां केवल मानस शास्त्र के लिये इसका विचार कर्तव्य है, विशेषतः इस बात का कि अनुमान उन प्राथमिक शक्तियों में से एक है या नहीं जिनके द्वारा हमें तात्कालिक ज्ञान होता है। मानस शास्त्र के बहुत बड़े पण्डित जीवहंस (Jevans) साहिब ने इसका इस दृष्टि से विचार किया है। वे कहते हैं कि जब हम एक सत्य घटना से दूसरी सत्य घटना को जानलेते हैं तो उसे अनुमान कहना चाहिए। हमारी तर्कनाशक्ति के जो मूल कार्य हैं उनमें से एक यह है कि जो दृश्य हमने पूर्व में देखा होगा अथवा जिसका अनुभव किया होगा उसीके सरीखे, समीपस्थ और समान दृश्य का अनुमान हम कर सकते हैं। एकरूपता और साम्य सब प्रकार का दिखाई देता है और इसके अलग अलग नाम भी होंगे परंतु अनुमान का विस्तृत नियम इन सभों में निवास करता है और यह जानता है कि जिन वस्तुओं में साम्य, सादृश्य, समीपता इत्यादि गुण हैं वे एक सी होंगी।

उक्त प्रतिपादन से यह ज्ञात होगा कि अनुमान यह मन की अतितर मूल स्थिति यद्यपि नहीं है, तथापि इसका कल्पना साहचर्य से बहुत निकट सम्बन्ध है। अनुमान में भी सादृश्य, सामिप्य और साम्य का सम्बन्ध है। उदाहरण के लिये कल्पना कीजिए कि मैं किसी मनुष्य को दूर से आते देख उसकी चाल ढाल, पोषाक और उंचाई अपने मित्र की चाल ढाल कपड़े और उंचाई से

मिलती हुई होने के कारण, यह अनुमान करता हूं कि वह मेरा मित्र है। परन्तु जब वह निकट आता है तो और ही मनुष्य प्रतीत होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल साम्य के कारण यह अनुमान किया गया था कि वह मेरा मित्र है। यह अनुमान बालकों की छोटी अवस्था में भी किसी प्रकार दिखाई देता है। जब किसी बालक की माता के रोगी होने के कारण दूध नहीं रहता तब बालकों को एक कृत्रिम रीति से दूध पिलाने का उपाय किया जाता है। एक बोतल में दूध भर देते हैं। उस बोतल से एक नली निकली हुई होती है और उसके अन्त में माता के स्तन सरीखा एक रबर का बनावटी स्तन बना होता है जिसे बालक सादृश्य के कारण माता का स्तनही समझ कर दूध पिया करता है। यहां सादृश्य के कारण बालक स्वाभाविक और कृत्रिम स्तन में भेद नहीं समझ सकता। परन्तु यह बात केवल छोटे बालकों में दिखाई देती है और जिन बालकों में स्पर्श का ज्ञान कुछ भी आजाता है वे तुरन्त अपनी माता के स्तन से भिन्न स्तन का भेद जान लेते हैं और कभी माता के स्तन के सिवाय दूसरे से दूध नहीं पीते। यह तो मनो-धर्म-परिडत मनुष्य प्राणी के विषय में हुआ।

यदि पशुओं के विषय में विचार किया जाय तो यह बात मालूम हो जायगी कि ईश्वर ने उन्हें यद्यपि तर्कनाशक्ति बहुत थोड़ी दी है तथापि अनुमानशक्ति तो उन्हें अवश्य ही दी है। सब जीवधारियों के भले और बुरे अनुभवों के साथ अनुमान करने की शक्ति स्वभावतः रक्खी गई है। और वह आत्मसंरक्षण का प्रकृति देवी का आदि तत्व अथवा नियम जो सब जीवधारियों में एक सा दिखाई देता है, उन्हें अनुमान द्वारा दुःखदायक वस्तुओं से बचाने और सुखकारक वस्तुओं का उपभोग लेने को एक सा प्रवृत्त करता है। कुछ चौपाये जो सदा मनुष्यों के आश्रय से रहते हैं उनके अनुमान का सुखद अथवा दुःखद ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान की बातों के सिवाय और साधारण बातों में भी दिखाई देता है। जैसे सिखाया हुआ घोड़ा अपने स्वामी की इच्छा तुरन्त इशारे से जान लेता है। कविपर (Cowper कवीणाम्परः श्रेष्टः कविपरः) ने "कुत्ता और

कमलिनी" का एक छोटा सा काव्य लिखा है। उसमें यह वर्णन किया है कि कविवर एक दिन घूमने गये थे और साथ अपना कुत्ता ले गए थे। एक तालाब में कमलिनी अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता से खिल रही थी। उसने अपने अव्याज मनोहर सौन्दर्य से कवि महाराज का मन मोहित कर लिया। कविवर जी ने अपनी छड़ी से बहुतेरा यत्न किया कि मैं उस कमलिनी को समीप ला पाणि-गृहीत कर लूं। परन्तु वह नव फुल्ल-यौवन सुकुमारी की तरह पर पुरुष के हस्तक्षेप से, भय और लज्जा के कारण कंपित हो दूर ही हटती गई! कविवर जी विफल-यत्न हो कुछेक क्षण चुप हो खड़े हो गए! इतने में उस कुत्ते ने अपने स्वामी की यत्न विफलता को देखा और उन्हें खिन्नवदन हो खड़े देख उनकी आंखों से एक बार दृष्टि मिलाई! परन्तु कविराज तो कमलिनी की अब मानो व्रीडायुक्त परिहास मुद्रा की ओर टकटकी लगाए देख रहे थे, उन्होंने कुत्ते की ओर न देखा! इतने में कुत्ता छलांग मार पानी में कूद पड़ा और उसने तैर कर कमलिनी के समीप जा उस के डंठल को अपने पैने दांतों से काट कर, उस अपने स्वामी की मनोहारिणी कमलिनी को तत्क्षण में, कविवर जी के चरणारविन्दों में लाकर अर्पण कर दिया!! कविवर जी इस स्वामीच्छानुकारी सेवा और कृतज्ञता से उस अनुचर से अतीव प्रसन्न हुए और इस अलौकिक कृति को अपने काव्य द्वारा अजरामर कर गए!! अस्तु।

खंड १०।

आभास (Hallucination.)

परिज्ञान के कारण मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाली प्रतिमा जब स्वाभाविक नहीं होती तब आभास उत्पन्न होता है। प्रतिमा दो प्रकार की होती है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक। जब प्रत्यक्ष-वस्तु-परिज्ञान से मन पर भावना अथवा प्रतिमा उत्पन्न होती है तब उसे स्वाभाविक प्रतिमा (Normal image or Memory image) कहते हैं और जब वही प्रतिमा कल्पना के कारण, हमें स्वप्न में दिखाई देती है तो वह प्रत्यक्ष वस्तु परिज्ञान के कारण नहीं

होती किन्तु अवशिष्ट परिमाणरूप होती है। यह प्रतिमा अस्वाभाविक (Abnormal) इस कारण होती है कि स्वप्न में मानसिक प्रतिमा की स्पष्टता (vividness) अत्यन्त गुरुता पाकर कभी कभी विचित्र रूप धारण कर लेती है। यह अस्वाभाविक प्रतिमा अत्यन्त स्पष्टता के साथ–वस्तुपरिज्ञान की स्पष्टता से भी अधिक स्पष्टता के साथकिसी वस्तु का अस्तित्व जनावे तो वह आभास है। आभास जागृति की अवस्था में भी होता है। जागृति की अवस्था में जो आभास होता है उसके दो प्रकार हैं। एक तो भासमान वस्तु के होने का और दूसरा उसके न होने की स्थिति में। उदाहरण के लिये आप रात्रि को किसी भयंकर स्मशान की राह से जा रहे हैं। आपकी कल्पना अत्यन्त सन्तप्त हो रही है और आप किसी वृक्षस्तंभ को चन्द्रिका के प्रकाश में दूर से शुभ्र देख केवल सादृश्य के कारण भूत समझते हैं। इसे वस्त्वाभास कहते हैं यथा "रज्जौ सर्पः"; "शुक्तिकायाञ्च रौप्यम्" इसमें कुछ परिज्ञात वस्तु अवश्य होती है परन्तु कल्पना की भूल के कारण अथवा सादृश्य के भुलावे से वह और ही वस्तु प्रतीत कर ली जाती है। दूसरा प्रकार लीजिए एक अत्यन्त प्रिय मनुष्य इस लोक से परलोक को सिधारा। वह जिस पलङ्ग पर लेटता था उसे वहीं लेटे हुए आप देख रहे हैं परन्तु क्षणैक में देखते हैं कि वहां कोई नहीं है। यह स्थिति जागृत अवस्था में, सारी इन्द्रियां सुस्थिति में होकर, अन्तर्बोध भी जागृत है ऐसे समय पर हो सकती है परन्तु इसमें आभासित वस्तु का अस्तित्व नहीं होता। इसे केवलाभास कहते हैं।

खंड ११।

पर्यालोचन।

कल्पना इत्यादि के विषय में हम कह आए हैं। परन्तु कठिनाई-तो यह है कि पाश्चिमात्य वैज्ञानिकों की निराली निराली कल्पना और विचारों को व्यक्त करनेवाले योग्य प्रति शब्दों की सामग्री हमारे पास अभी पूरी तरह से नहीं है। यदि है तो मुझ अल्पज्ञ को वह मालूम नहीं है। इससे अपने सब शब्दज्ञान का उपयोग करके

भी आपत्तिही रही। जैसे 'कल्पना' यही वैज्ञानिक एक शब्द लिया जाय तो इस शब्द से Idea, Concept, Conception, Imagination, Thought, Notion इतने शब्दों का बहुधा अर्थ व्यवहार करना पड़ता है। पुनः कल्पना जिसे हमने Conception का समानार्थी माना है और कहीं Imagination का, वह बहुत ही संकुचित अर्थ देता है। क्योंकि जब मनोविज्ञान में Conception का विस्तृत अर्थ लिया जाता है तब उसका अर्थ Thought विचार यह होता है, कभी वह जाति वाचक कल्पना बनाता है जैसे एक नदी के देखने से, साम्य के कारण, और नदियों की कल्पना उत्पन्न होती है और फिर 'नदी' कहते ही किसी एक नदी की प्रतिमा मन पर नहीं उठती परन्तु सर्व साधारण नदियों की एक जाति वाचक कल्पना उत्पन्न होती है। यद्यपि ऐसी आपत्ति और कठिनाई है तथापि जिन पारिभाषिक शब्दों का उपयोग हमने किया है उनका भेदाभेद समझना जरूरी है इसलिये इस अध्याय में जो पारिभाषिक शब्द व्यवहार किए गए हैं उन में से मुख्य मुख्य शब्दों का यहां पर्यालोचन द्वारा विचार करेंगे।

(१) भावना और परिज्ञान में यह भेद है कि भावना परिज्ञान से पुनरुद्भव पाती है परन्तु इन्द्रिय प्रोत्साहन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती अर्थात् भावना और परिज्ञान में दोनों कार्य केवल मानसिक हैं।

(२) परिज्ञान की भावना से इस बात में समानता है कि दोनों में एकता का भाव है।

(३) भावना की कल्पना से इस बात में तुल्यता है कि दोनों प्रदर्शक होते हैं।

(४) कल्पना भावना से इस बात में भिन्न है कि भावना में जो एकता का भाव है वह कल्पना में कुछ भी नहीं होता।

(५) कल्पना भावना की अपेक्षा अधिक प्रदर्शक और विस्तृत होती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) परिज्ञान और कल्पना दोनों बुद्धिही के परिणाम होने के कारण भिन्नज्ञता और एक-रूपी-करण दोनों में निवास करते हैं और भेद इतनाही है कि परिज्ञान में भिन्नज्ञता की अधिकता होती है और कल्पना में एक-रूपी-करण की ।

अध्याय ४।

खंड १।

बुद्धि (Intellect.)

बुद्धि को मनोविज्ञान में बहुत ऊंचा स्थान दिया जाता है, क्योंकि जिसे हम मन का कार्य कहते हैं उसमें बुद्धि की प्रधानता अवश्य है। अन्तर्बोध जो कि मन का पहिला कार्य है अथवा आद्य-स्थिति है उसमें भी बुद्धि का पूरे तौर पर निवास है। बुद्धि मन की एक चैतन्य शक्ति है। उसका यह कार्य है कि वह अन्तर्बोध से होनेवाले इन्द्रियज्ञान तथा मनोराग इत्यादि मानसिक कार्यों का बोध करावे। अन्तर्बोध में बुद्धिही के कारण पदार्थों के विषय में जो बोध होता है उसकी सामानता अथवा भिन्नता बतलाना बुद्धि का पहिला कार्य है। यह सम्बन्ध तब ही पैदा होता है जब मन चैतन्यावस्था में हो और अपने कार्यों को कर रहा हो। जिस समय मन के कार्य चलते होते हैं उस समय एक मानसिक कार्य की दूसरे से सामानता अथवा भेद जानना बुद्धि का काम है। श्रेष्ठाध्यापक **वैण** (Bain) कहते हैं कि बुद्धि के तीन स्वभाविक धर्म हैं यथा–

(१) भिन्नता का अन्तर्बोध। यह बुद्धि का आदि गुण है। यदि हमारे मन पर भिन्न भिन्न वस्तुओं का अलग अलग परिणाम न हो तो हमें बोध ही नहीं होगा। जैसे जाड़ा, गरमी, लाल, काला, इनका भेद तब ही ज्ञात हो सकता है जब इन गुणों के कारण, मन पर भिन्न भिन्न प्रकार का परिणाम हो कर उनकी जुदाई मालूम होवे। ज्ञान अथवा कल्पना का आरम्भ वस्तुओं की भिन्नता के ज्ञान से होता है। जहां हम अतिशय भिन्नतादर्शी होते हैं वहां हमारी बुद्धि अतिशय व्यापृत होता है।

(२) साम्य का अन्तरबोध। कल्पना कीजिए कि हमें प्रथम ही बेर लाल रङ्ग के इन्द्रियज्ञान का अनुभव हुआ है। इसके अनन्तर और दूसरे रङ्गों का इन्द्रियज्ञान होने के पीछे फिर हमने

लाल रङ्ग को देखा तो तुरन्त हमें साम्य का परिज्ञान हो जाता है। हम इस लाल रङ्ग को पहिले देखे लाल रङ्ग का सजातीय और समान गुणवाला समझ कर तुरन्त पहिचान लेते हैं अर्थात् नवीन वस्तु के देखतेही उसके समान पूर्व में देखी हुई वस्तु की स्मृति हो जाती है। इसमें समानता ही आदि कारण है। समानता का बोध होते समय हमें समानता की भिन्नता का भी बोध होता है। तात्पर्य यह है कि जितना हमारा ज्ञान है उसका यदि पृथक्करण (Analysis) किया जाय तो अन्त में यही दिखाई देगा कि वह सब भिन्नता और समानता के कारण उत्पन्न हुआ है और कुछ नहीं है।

(३) मेधाशक्ति। इसके विषय में हम 'स्मरण' का विचार करते समय लिखही आए हैं। मेधाशक्ति के दो स्वरूप होते हैं। (क) उस चेतना कार्य को उत्पन्न करनेवाले कारण के उपस्थित न होते भी, यद्यपि उसी प्रकार स्पष्टता से नहीं तथापि सूक्ष्मतया मानसिक चेतना का, बना रहना, एक प्रकार का मेधाशक्ति का गुण है। जैसे हमारे श्रवण द्वारा हमने श्रीठाकुरजी की आरती का घंटा बजने का शब्द सुना। तो हमारी श्रवणेन्द्रिय पर घंटा बजने का आघात होतेही मानसिक चेतना उत्पन्न हुई और हमने इन्द्रिय ज्ञान होने के कारण यह कहा कि हम को ध्वनि का बोध हुआ अथवा ध्वनि या आवाज सुनाई पड़ी। अब इस ध्वनि के कारण से जो मानसिक संक्षोभ हुआ वह ध्वनि के नष्ट होने पर भी चलता रहता है। परंतु इसमें अन्तर्बोध इतना चैतन्य दशा को प्राप्त नहीं होता। और वह जो ध्वनि की धुन मात्र कानों में गूंजती हुई रह जाती है उसे स्मरण अथवा कल्पना का प्रथम स्वरूप कहतेहैं। (ख) इससे आगे बढ़कर पूर्व कल्पना को पुनः मानसिक कार्य द्वारा उपस्थित करलेना यह कार्य है। जो घंटानाद हमने प्रथम घंटे के बजने से सुना था, अब वह न बजकर भी हमें पूर्वानुभूत ध्वनि का स्मरण भलीभांति हो सकता है, यद्यपि वह इन्द्रिय परिमाण जो घंटे की ध्वनि सुनने के समय हुआ था अब नहीं हो रहा है।

बुद्धि के कार्य में ऊपर लिखे हुए कारणों में से किसी न किसी

कारण से कार्य अवश्य होता है। बुद्धि के इस कार्य को आंग्ल वैज्ञानिक अपनी भाषा में (Intellection) कहते हैं।

खंड २।

विचार (Thought.)

विचार बुद्धि के उस कार्य को कहते हैं जो कल्पना द्वारा होता है। वैज्ञानिक ग्रंथों में विचार शब्द का उपयोग दो अर्थों में किया गया है। जब इसका विस्तृत अर्थ लिया जाता है तब विचार शब्द से हर किसी मानसिक कार्य का अर्थ समझा जाता है। जैसे तत्व वेत्ता दिकार्ति (Descartes) और उसके मतानुयायी लोगों ने विचार शब्द का, हमारी प्रत्येक मानसिक स्थिति जिसका हमें अन्तर्बोध द्वारा ज्ञान होता है, यह अर्थ लिया है। अर्थात् विचार शब्द में मनोराग, संकल्प, इच्छा इन सभों का समावेश करलिया है। परंतु यह अर्थ अति विस्तृत हो गया है। इससे अधिक परिमित अर्थ की दृष्टि से ही विचार का अर्थ तर्कशास्त्र में लिया जाता है। अब इस परिमित अर्थ को लेकर विचार की मीमांसा करने से कई गुण धर्म इस विचार के दृष्टिगोचर होते हैं। यथा। (१) विचार-यह मन का चेतनामय कार्य है। परन्तु चैतन्य की कल्पना इतनी तो निरामय है कि उसकी परिभाषा करना कठिन है। (२) सब प्रकार की चैतन्य शक्ति का यह स्वभाव है कि वह उत्पादनशील होवे। अर्थात् विचार में उत्पादन शक्ति तो है ही परन्तु भेदज्ञता का भी इसमें सन्निवेश होता है। (३) इससे यह सिद्ध होता है कि भेदज्ञ चैतन्य शक्ति द्वारा हमें अपने अन्त:करण का ज्ञान होता है। (४) और विचार यह चैतन्य शक्ति का कार्य है जिसमें भेदज्ञता प्रधान गुण है। तो हम उसी समयही विचार करने को समर्थ हो सकते हैं जब हम अपने विचारों में भेद भी जानते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि निरा एक विचार हो ही नहीं सकता। अर्थात् जिसे हम विचार कहते हैं वह और और विचारों से बना हुआ होता है। जब हम विचार करते हैं तो अनेक विचार एकत्रित हो जाते हैं। (५) विचार के कार्य में यह एक धर्म है कि

उससे हम यह निश्चय जान सकते हैं कि जो विचारणीय विषय है उसके सत्यतत्वं को हम विचार द्वारा समझ सकते हैं।

मनोविज्ञानकार को विचार का परिशोधन उपरोक्त दृष्टि से करना चाहिए। क्योंकि उसका यह कर्तव्य है कि वह विचार के गुण और कार्य विवरण करे परन्तु तर्कशास्त्रज्ञ विचार का आलोचन और ही दृष्टि से करते हैं क्योंकि उन्हें विचार का तात्विक विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। विचार जब शब्द के रूप में वाणी से प्रकाशित किया जाता है तब वह तार्किक के लिये विचार का विषय बन जाता है।

खंड ३।

मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र जानने वालों की कल्पना का विचार।

'विचार के नियमों के शास्त्र को तर्कशास्त्र कहते हैं'। यह तर्कज्ञ टाम्सन (Thomson) की परिभाषा है। तर्क विज्ञानी पण्डित जीवहंस (Jevans) केवल इतनाही कह कर संतुष्ट हैं कि तर्कना के शास्त्र को तर्कशास्त्र कहते हैं। हमें इस स्थान में तर्कशास्त्र की परिभाषा के गुण दोष वर्णन नहीं करना है। परन्तु यह देखना है कि तर्कशास्त्र में विचार अथवा कल्पना का विवरण किस प्रकार किया है। यह देखा गया है कि सब तर्कशास्त्र जानने वाले लोग तर्कशास्त्र के तीन मुख्य अङ्ग समझते हैं और विषय का प्रतिपादन करते हुए तीन विभाग करते हैं। जैसे कल्पना (Conception) (२) निर्धारण (Judgment) और (३) तर्कना। (Reasoning)। यह विभाग ऊपर जो 'विचार' के वर्णन में हमने गुणों के अनुसार क्रम दिया है उसके चौथे गुण के अनुसार किया गया है; क्योंकि वहां यह कह आए हैं कि जिसे हम विचार करते हैं वह और बहुत से विचारों से बना हुआ होता है और दूसरा तत्व इस विभाग का यह है कि विचार की अधिकता को देखा जाय। कल्पना की अपेक्षा निर्धारण में विचारों की अधिकता होती है और तर्कना

में तो अवश्य ही विचारों की अधिकता होती है अर्थात तर्कशास्त्र वालों ने यह विषय विभाग विचारों की अधिकता और मेल के अनुसार किया है। यह विषय समझने में ज़रा कठिनाई पड़ेगी इस लिये उसे उदाहरण से स्पष्ट करना उचित है।

मान लीजिए कि 'मनुष्य' इस कल्पना का विचार कर्तव्य है। प्रथम तर्कशास्त्र के विचार से और फिर मनोविज्ञान के विचार से तर्कशास्त्र के अनुसार "मनुष्य" यह एक शब्द अथवा पद है अथवा जाति बोधक शब्द है। इसमें एक ही कल्पना 'मनुष्य' है। 'मनुष्य विचार शील होता है' यह निर्धारण हो गया। क्योंकि उसके विषय में यह निर्धारित किया कि वह विचारशील है। अर्थात् इसमें दो कल्पना, मनुष्य और विचारशील होने के कारण यह स्पष्ट हुआ कि केवल अकेली कल्पना की अपेक्षा निर्धारण में विचारों की अधिकता अथवा कल्पनाओं की अधिकता होती है। अब, मनुष्य विचारशील क्यों है? क्योंकि वह बोलकर विचार प्रकाशित कर सकता है—यह तर्कना हुई, क्योंकि इसमें और भी कल्पनाओं की अधिकता दिखाई देती है। इसलिये ऊपर कहा कि तर्क करनेवाले लोग तर्क शास्त्र के तीन विभाग कल्पना, निर्धारण, और तर्कना इस कारण करते हैं कि पहिले से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में कल्पनाओं की अधिकता होती है।

परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हमारे मन में निर्धारण करने के पहिले कल्पना उत्पन्न होती है और तर्कना के पहिले निर्धारण किया जाता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह कहा जाता है कि मेरे मन में 'मनुष्य' यह एक कल्पना है। यह कल्पना किसी एक प्रकार की है और मैं जानता हूं कि उसका अर्थ क्या है। क्योंकि 'मनुष्य' यह कल्पना 'घोड़ा' इस कल्पना से भिन्न है। यह भिन्नता क्योंकर मालूम हुई? इस कारण कि मैं जानता हूं कि मनुष्य यह विचारशील प्राणी है इसमें मनुष्य यह कल्पना होते समय मैं केवल एक निर्धारण ही नहीं करता परन्तु सच पूछिए तो कई निर्धारण मेरे मन में बनते हैं। कुछ प्राणी विचारशील होते हैं और कुछ प्राणी विचारशील नहीं होते। इससे जो विचारशील प्राणी हैं उन्हें

हम मनुष्य कहते हैं। अर्थात् हमारी कल्पना दो निर्धारणों का संयुक्त रूप है परंतु जब हम निर्धारण कर रहे हैं कि कुछ प्राणी विचार शील हैं तो हमें इस निर्धारण के लिये कुछ आधार अवश्य चाहिए— तो देखा गया कि हमने इस कहने में तर्कना कि मनुष्य में विचार लता है इससे यह ज्ञात होता है कि कल्पना होने में निर्धारण का आवश्यकता होती है और वे निर्धारण तर्कना जानते हैं

खंड ४।

भाषा।

लिखकर अथवा बोलकर शब्दों के द्वारा अपने मानसिक कार्य तथा मनोविकारों के प्रकाशन (Expression) को भाषा कहते हैं। एक दूसरों के विचार आपस में समझने और समझा देने में भाषा अत्यन्त उपयोगी है। क्योंकि हमें अपने विचार, मनोराग इच्छा इत्यादि दूसरों पर जाहिर करने की आवश्यकता होती है, भाषा में अनेक रूपान्तर होते जाते हैं। अब यहां केवल इतनाही बतलाना है कि भाषा बिचार की प्रगति और उन्नति में किस प्रकार सहायक होती है।

(१) सारे मनुष्य जाति के लोग जो प्रत्याहार (abstraction) और जाती करण (Generalisation) आजतक करते आए हैं उनका भाषा यह एक बडा कोष ही है। मनुष्य प्राणी बुद्धि के स्वाभाविक गुण से तथा परिस्थिति के कारण जिन पदार्थों को देखता है अथवा जिन बातों का अनुभव करता है, उन्हें अलग या एकत्र करता रहता है पदार्थ और उसके गुणों में भेद समझता है। वस्तुओं का सम्बन्ध देखता है और फिर जिन पदार्थों में समानता अथवा सम्बन्ध है उनका एक वर्ग बना लेता है। इस मानसिक क्रिया को जातीकरण कहते हैं। जब वह वर्ग बना लेता है तो उसे एक साधारण नाम देकर एक जातीय सब वस्तुओं का बोध कराता है। इस नामं को जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। इस प्रकार जो एक नाम अथवा जातिवाचक चिन्ह बना वह मन के जातीकरण कार्य का सूचक है। उस चिन्ह से उस की बोधक कल्पना तुरन्त

मन को ज्ञात हो जाती है और फिर बार बार उसी मानसिक कार्य की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं होती। यही जातिवाचक शब्द वंशपरम्परा से चले आते हैं। बाह्य सृष्टि के पदार्थों के नामाभिधान, जातीकरण, विभाग इत्यादि साधनों से आज आधिभौतिक विज्ञानों ने अपार उन्नति की है और कर रहे हैं। तो यदि हम प्रत्येक अपनी अन्तरीय और मानसिक सृष्टि की स्थितियों का और व्यापारों का ध्यान पूर्वक अवलोकन करें और जो मनोविकार, विचार, कल्पनाएं इत्यादि लाखों मानसिक कार्य एक दिन में हमारे मन में उत्पन्न होते हैं उन्हें भाषा के द्वारा शब्द रूप में परिरक्षित कर रक्खें तो क्या आश्चर्य है कि उनका एक अपरम्पार संग्रह हो जाय। और यह सब क्योंकर हो सकता है? केवल भाषा के द्वारा।

(२) उक्त वर्णन से यह प्रगट होता है कि जो प्रत्याहार और साधारण नाम हमारे पूर्वजों ने बनाए उनका लाभ हमें भाषा के द्वारा होजाता है। हमने जो विद्या अथवा ज्ञान पैदा किया है वह दूसरों की संगति, शिक्षकों की शिक्षा, और दूसरे लोगों से व्यवहार करने से जितना प्राप्त हुआ है उतना स्वकीय निरीक्षण से नहीं हुआ है। बालक नवीन वस्तु को देख आपसे पूछता है और आप उसे उस वस्तु का नाम बतला देते हैं। बस उसके लिये वह नाम उस वस्तु के स्थान में हमेशा के लिये स्मरण में रहेगा। यह नाम अथवा चिन्ह उस वस्तु की भावना पैदा करेगा और उसी से बालक अपने ज्ञान की वृद्धि करना आरम्भ करेगा। उसे फिर उस नाम की प्रथम उत्पत्ति के लिये जो मानसिक क्रिया पहिले की गई होगी उसको स्वयं करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार हमारे पूर्वकाल के लोगों का ज्ञान और विचारों का भांडार हमें सहजही में मिल जाता है।

(३) भाषा हमारी अव्यवस्थित और अस्पष्ट कल्पनाओं को तथा विचारों को व्यवस्थित और स्पष्ट रूप में लाने की आवश्यकता पैदा करती है। कल्पना कीजिए कि किसी ऐसा मनुष्य जिसने कभी पुतलीघर नहीं देखा, पहिलीही बेर उसे देख कर वहां की

रचना वर्णन करे तो वह एक तो बड़ी कठिनाई देखेगा और बड़े मानसिक कष्ट से टूटी फूटी भाषा में और अव्यवस्थित रीति से कहेगा। फिर विचार कीजिए कि मन की भीतरी दशा और मनोविकार इत्यादि के जाहिर करने में पढ़े लिखे लोग भी कितनी कठिनाई और कितना कष्ट उठाते होंगे। तत्ववेत्ता बिकण (Becon) ने अति उत्तमता से लिखा है कि संभाषण से मनुष्य में समय सूचकता आ जाती है। अर्थात् उसमें विचार जाहिर करने की तुरन्त स्फूर्ति उत्पन्न होजाती है। इसी कारण बहुत संबोलनेवाले वक्ता लोग 'हाज़िर जबाब' होते हैं। (ब) लेखन से मनुष्य में व्यवस्थितता आ जाती है। क्योंकि बोलने की अपेक्षा लेखन के लिये अधिक अवकाश मिलता है। यह समझ कर कि हमारे लिखे हुए को और लोग अच्छी तरह देखेंगे और उसका विचार करके भले बुरे का संशोधन करेंगे, लेखक अपने विचारों को सुघड़ता से भाषा के रूप में रखता है। हम देखते हैं कि जो विद्यार्थी समझा करते हैं कि हमें यह याद है वह याद है परन्तु जब परीक्षा गृह में उत्तर लिखने का समय आता है तो वे अपने विचारों को व्यवस्थित रूप में लिख नहीं सकते। (क) पढ़ने से मनुष्य के विचार गंभीर होते हैं और ज्ञान प्राप्त होता है। बहुतेरे लोग साधारण विद्या पढ़ने पर भी पढ़ने का अभ्यास रखने से दीर्घदर्शी और विद्वान हो जाते हैं। परन्तु जो लोग बहुत विद्या पढ़ के, लम्बी लम्बी उपाधि से पण्डित हो कर भी, पठन का नित्याभ्यास नहीं रखते वे कालान्तर में नामधारी विद्वान मात्र रह जाते हैं। मतलब यह है कि यदि हमें अपने विचारों को सुरीति से प्रकाशित करना है—और यह बात तो हमें नित्यही करनी पड़ती है—तो हमें उचित है कि सम्भाषण, लेखन और पठन इन तीनों का नित्य अभ्यास रक्खें और यह सब भाषाही के द्वारा हो सकता है।

(४) भाषा के शब्द विचारों के सार्थ चिन्ह होने के कारण, विचार करने में सुलभता उत्पन्न करते हैं। भाषा के द्वारा अर्थात् हम बिचार करने में प्रगति करते हैं और विचार करने में शीघ्रता पा सकते हैं। यूरोपीय इतिहास के मध्यकाल में लैटिन भाषा का तथा उस भाषा में सञ्चित ज्ञान भण्डार का आस्वाद आंग्ल पण्डितों

को मिला। तब उनको यह कठिनाई दिखलाई दी कि लैटिन भाषा के सुसम्बद्ध उदात्त विचार प्रकाशित करने की योग्यता और सामर्थ्य आंग्ल भाषा में नहीं है। परन्तु जहां लैटिन के समानार्थी शब्द स्वभाषा में पाए वहां तो उन्हें रक्खा और जहां लैटिन शब्द भाषान्तर रूप से व्यक्त नहीं हो सकते थे उन्हें वैसेही अपनी भाषा में उद्धृत कर लिए और कुछ स्वकपोल-कल्पित भी बना लिए इसलिये कि लैटिन विचार पूर्णतया आंग्ल भाषा में स्पष्ट हो जावें। अब अंग्रेजी में इतनी उन्नतिहोगई है कि उसके समान दूसरी भाषाही नहीं है कि जिसके द्वारा सर्व प्रकार के विचार संपूर्णता से स्पष्ट और सुन्दरता से व्यक्त कर दिए जा सकते हों। क्या इसी सिद्धान्त का हमारी हिन्दी भाषा के विषय में भी सत्य प्रतीत होना असम्भव है?

खंड ५।

सत्यत्ववाद	नामिकवाद	भावनावाद
Realism	Nominalism	Conceptualism.

किसी पदार्थ का सत्यत्व, उसका जातिवाचक नाम, और भावना इनमें कौन प्रथम और श्रेष्ट हैं इस विषय में पश्चिमीवेताओं के दलों में प्राचीन काल से बड़ा घनघोर वाग्युद्ध होता चला आता है। यह सब लड़ाई शब्दों की है। सत्यत्ववादी कहते हैं कि जातिवाचक शब्द स्वतंत्रतया पदार्थों की उत्पत्ति के पहिले भी अस्तित्व में थे। और उनका पदार्थों का कुछ सम्बन्ध नहीं है। इस मत को अब कोई नहीं मानता। अब रहे नामवादी और भावनावादी। नामवादी यों कहते हैं कि साधारण कल्पना (General notion) कोई निराली वस्तु नहीं है, जैसे वृत्त, पाषाण। ये पदार्थ अलग और प्रत्यक्ष निराले हैं। उस साधारण कल्पना का होना केवल नाम अथवा शब्द में है। परन्तु भावनावादी कहते हैं कि साधारणतः यह गुण केवल व्यक्तिवाचक पदार्थों का ही नहीं है किन्तु विचारों का भी है। प्रत्येक वस्तु के नाम के साथ एक साधारण कल्पाना भी होती है जिसे प्रत्याहार से उत्पन्न होने वाली-कल्पना कहते हैं। स्पष्ट है कि आजकल भावनावादियों का ही जोर है।

अध्याय ५ ।

खंड १ ।

मनोराग (Feeling)

मज्जाकेन्द्रों में नसों के प्रोत्साहन के कारण संचालन उत्पन्न होकर अन्तर्बोध के संयोग से इन्द्रियज्ञान होता है। परन्तु वह प्रोत्साहन जब अतिशय हो जाता है तो मज्जाकेन्द्रों पर तथा मिश्र और अनेक प्रोत्साहनरूपी प्रवाह केवल इन्द्रियों परही नहीं वरं हृदय, निम्नोदर, इत्यादि पर भी परिणाम उत्पन्न करता है। जब इन्द्रियों के द्वारा होनेवाला ज्ञान साधारण होता है तो वह केवल (Sensation) ही होकर रह जाता है। परन्तु जब प्रोत्साहन का अतिरेक होकर शरीर के, मास्तिष्क, हृदय इत्यादि भागों पर भी उसका आघात पहुंचता है तब वही मनोराग कहाता है।

इन्द्रियज्ञान जब सुखकर अथवा आनन्ददाई होता है तो वह मनोराग सुखद मनोराग कहाता है और जब सुखदता का भी अतिरेक हो जाने से वही सुखद मनोराग विपरीत परिणाम पैदा करता है तो उस मनोराग को दुःखद मनोराग कहते हैं। यथा इस समशीतोष्ण देशवासी मनुष्यों का यह साधारण अनुभव है कि किसी दिन शीतकाल में जाड़े से सुकड़कर सूर्य की धूप में बैठने से सुख मालूम होता है। सूर्य की किरण तीव्र होते जाते हैं और जब तक उष्णता का परिमाण शीत के दुःखद परिणाम को नष्ट करने योग्य रहता है तब तक हमें सूर्य की किरणों का ताप सुखद होता है। परन्तु जब शीत का परिणाम नष्ट होकर आतपही की विशेषता होने लगती है यहां तक कि स्पर्शज्ञान से ताप असह्य हो जाता है तो वही सुखद सूर्यताप दुःखद होने लगता है। अर्थात् मनोराग के दो प्रकार होते हैं सुखद मनोराग और तद्विपरीत दुःखद मनोराग।

अब यहां यह प्रश्न सहजही उत्पन्न होता है कि अन्तर्बोध की अतिमात्र स्थितियों का विभाग सुखद अथवा दुःखद मनोरागही में हो सकता है, अथवा कोई ऐसे भी मानसिक

अनुभव हैं कि जो न तो सुखद होते हैं न दुःखद। उदाहरणार्थ एक ऐसा पदार्थ लीजिए जिसका स्वाद नहीं बतला सकते। न तो वह मधु का सा मीठा है अर्थात् सुखद है न नीम का सा कड़ुआ है कि असह्य हो जाय। तो उस पदार्थ का स्वाद लेने से कौन सा मनोराग उत्पन्न होगा? दूसरा प्रश्न, आश्चर्य का मनोराग कौन सी स्थिति को उत्पन्न करता है सुखद अथवा दुःखद? तो यही कहना पड़ेगा कि अचरज कदाचित् सूक्ष्मतया सुखद हो अथवा दुःखद भी हो। अथवा इनमें से कुछ भी न हो। परंतु इससे यह नहीं कहना चाहिए कि उसकी अन्तर्बोध के निकट कुछ योग्यता ही नहीं है। मनोराग सुखद हों वा दुःखद अथवा कभी कभी न भी हों परन्तु क्योंकि इनमें से हरएक का अन्तर्बोध को बोध होता है इसलिये उनकी सत्यता में बिलकुल संदेह नहीं है। हां, इतनाही है कि सुखद अथवा दुःखद मनोराग का अभाव यह केवल अंशतः भेद है। हम कह चुके हैं कि सुखद मनोराग का अतिरेक होजाने से वही दुःखद होजाता है। परन्तु क्रमशः सुखद मनोराग बदलते बदलते ऐसी स्थिति पर पहुंच जाता है कि उस समय वह न तो सुखद है न दुःखद। बिलकुल समतोल! उस स्थिति को किस प्रकार का मनोराग कहना चाहिए यह निश्चित करना कठिन है। उसे पाश्चिमात्य मनोविज्ञानी गण न्यूट्रल फ़ीलिङ्ग (Neutral Feeling) कहते हैं अर्थात् नपुंसक मनोराग। यदि वह नपुंसक मनोराग है तो वह मनोराग कहलाने के लिये सर्वथा अयोग्य है क्योंकि जो स्थिति कोई मनोराग को उत्पन्नही नहीं करती उसे मनोराग कहने से क्या अर्थ निकल सकता है। हमारी अल्प समझ में इस स्थिति को यदि और कोई विशिष्ट नाम हो तो उस नाम से व्यक्त करना चाहिए नहीं तो उसे केवल मनोराग के अभाव की स्थिति कह कर छोड़ देना चाहिए। इतना विवाद करने पर भी व्यवहारिक दृष्टि से मनोराग के दो ही विभाग समझे गए हैं और उनका विचार यहां किया गया है।

उक्त वर्णन से मनोराग क्या है यह ज्ञात हो जायगा और मनोराग की परिभाषा भी अधिक सरलता से समझ में आवेगी।

मनोराग अन्तर्बोध की किसी स्थिति को कहते हैं जो कि सुखद अथवा दुःखद हो। कभी कभी सुखद और दुःखद मनोरागों का ऐसा कुछ अकल्पित संयोग होता है कि उस समय सुखद अथवा दुःखद इन दोनों में से कौन एक वृत्ति अधिकता से है इसका परिज्ञान नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति को सुख-दुःखद मनोराग कहना चाहिए। मनुष्य सुखद मनोराग की इच्छा करता है और यही चाहता है कि सुखद मनोराग का आनन्द सर्वदा होता रहे। इसी कारण मनुष्य ऐसे उपाय रचा करता है कि सुखद मनोराग ही प्राप्त होते रहें। उदाहरणार्थ गाना बजाना। सुखद मनोरागों की उत्पत्ति जिन कलाओं के द्वारा होती है उन सबों में गाना बजाना अत्यन्त ज्ञान गम्य है। गाने की कला मन, अन्तःकरण, मस्तिष्क इत्यादि को तो पुष्ट करती है परन्तु आत्मा को भी आनन्ददायिनी है। यह आनन्द, सम्मेलन के कारण अधिक होता है, मन को उल्लसित करता है और तन्मय कर देता है। हम देखते हैं कि ईश्वर भजन से आनन्द पानेवाले भक्तजन, उसी आनन्द परम्परा की वृद्धि करके, स्वात्मानन्द का अनुभव चाखने की इच्छा से भजन की पुनरावृत्ति करते रहते हैं, यहां तक कि कभी कभी वे बिलकुल तल्लीन हो जाते हैं। गान शास्त्र में शब्द अथवा ध्वनि अत्यन्त श्रेष्ठ है। उस का इतना माहात्म्य बढ़ा है कि सुखद ध्वनि की परम्परा से वह आत्मा को आनन्दमय बना देती है। इस कारण, शब्दब्रह्म वा नादब्रह्म का पद प्राप्त हो गया है। अस्तु। मथितार्थ इतनाही है कि सुखद मनोराग की सम्मेलनता पुनरावृत्ति से पैदा होती है और जब तक वह आनन्ददायक सीमा का अतिक्रम नहीं करती तब तकही सुखद होती है और उस सीमा का अतिक्रम करने से क्रमशः दुःखद होने लगती है।

खंड २।

मनोराग का ज्ञान से सम्बन्ध।

मनोराग का क्रम इस प्रकार है कि वह बोध और प्रबोधन के मध्यगत है। प्रबोधन को (Intellection) अर्थात् बुद्धि का कार्य

समझते हैं। प्रथम बोधन होगा तो मनोराग अथवा प्रबोधन, दूना दोनों में से एक भी न होगा। केवल बोध से कुछ परिणाम नहीं होता। निरा बोध होने से हम शान्त और स्थिर रहेंगे। मनोराग का उदय होतेही हम में गर्मी आ जाती है और हमारे कार्यों में मानो सजीवता उत्पन्न हो जाती है। मनोराग अपने कार्यों में मनोहारिता उत्पन्न करता है और अपने कार्यों में हमारा दिल ही न लगा तो स्वेच्छित कार्य का होनाही असम्भव हो जायगा। मनोराग की मध्यस्थता के सिवाय बोध और प्रबोधन एक दूसरे से मेल नहीं पाते और मनोराग के सिवाय अन्तर्बोध का कोई यत्न भी न हो सकेगा।

मनुष्यमात्र की उन्नति का बहुत बड़ा हिस्सा मनोराग की व्याप्ति के कारण से हुआ है। क्योंकि जब कोई मनुष्य सुखद अथवा दुःखद मनोराग से क्षुब्ध होता है तो वह कार्य करने पर कटिबद्ध हो जाता है। यदि मनोराग सुखद है तो सुख की वृद्धि की इच्छा से और दुःखद हो तो क्लेश को नष्ट करने के हेतु से मनोराग कल्पना की जड़ है। कल्पना से कलाकौशल के काम होते हैं, और कुशलता के द्वारा हमारा प्रवेश सौन्दर्य संसार में होता है। इस प्रकार मनोराग का ज्ञान की वृद्धि से बहुत कुछ निकट सम्बन्ध है। परन्तु मनोराग प्रबोधन नहीं है। मनोराग में और प्रबोधन में अन्तर है। कल्पना कीजिए कि एक चाकू की नोक से आपके शरीर के निकट लाकर खाली स्पर्श कराया। तो स्पर्शज्ञान होगा। कुछ अधिक दबाने से उसकी तीक्ष्णता का बोध होगा और उससे भी अधिक दबाने से दुःखद परिणाम होगा अर्थात् अन्तर्बोध का कार्य प्रथम होकर फिर मनोराग उत्पन्न हुआ। अतः प्रत्येक मनोराग में बोध होताही है। परन्तु प्रत्येक बोध में मनोराग होगाही यह निश्चित नहीं कह सकते। और ऊपर के उदाहरण से यह भी ज्ञात होता है कि जब वही चाकू मेरे चुभ जाता है तो मैं अपनी स्वयन्ता को जानने लगता हूं और दुःख का अनुभव करता हूं। चाकू की तीक्ष्णता को बिचारते हुए मुझे उसके अग्र भाग और काटने की कल्पना होती है। उस समय अपने विषय का विचार नहीं करता परन्तु जब वह मुझे दुखदाई होता है तो चाकू या उसकी तीक्ष्णता

की अपेक्षा मेरे मन में अपनी स्वयन्ता और दुखद मनोराग का विचार ही बलवान होता है।

मनोराग अपनी बिलकुल पहिली अवस्था में केवल इन्द्रिय मनोराग (Sense Feeling) होता है। उसके बाद वृद्धिगत होकर उसका रूप विस्तृत और बहुविध हो जाता है। यह यद्यपि सत्य है कि अन्तर्बोध की स्थिति प्रथम होती है तथापि यदि मनोराग के न होते, कदाचित् अन्तर्बोध की जागृति और उस का विकास पूर्णतया नहीं होता, क्योंकि अन्तर्बोध की जागृति की अवस्था में उसे प्रबोधित करने में इन्द्रिय मनोरागही सबसे बड़ा कारण होता है। अर्थात् मनोराग अन्तर्बोध की जागृति के लिये अत्यावश्यक है। अन्तर्बोधन होगा तो वस्तु के ज्ञान का कार्य अर्थात् प्रबोधन (Intellection) नहीं होगा और न प्रज्ञान (Conation) होगा। साधारणतः बालकों की चेष्टाओं को सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करनेवालों को यह मालूम होगा कि बालक का प्रथम वस्तुज्ञान उसी सुखद अथवा दुःखद मनोराग के द्वारा होता है। यदि बालक मनोरागक्षम अर्थात् (Sensitive) न होता तो वह कभी ज्ञानक्षम (Intellective) भी न होता। इससे यह देखना चाहिए कि ईश्वर की अलौकिक मानस रचना सृष्टि में एक शक्ति का दूसरी शक्ति से कितना घनिष्ट सम्बन्ध है और उन शक्तियों का विचार करने से यह आपत्ति मालूम होती है कि इन में श्रेष्ठतम कौन है और किसे प्रथम स्थान दिया जाय, कौन शक्ति दूसरी की जननी है? इत्यादि निगूढ़ प्रश्नों से बुद्धि कुंठित हो जाती है और ईश्वर की अगम्य करतूत से मन आश्चर्य चकित हो जाता है। अन्तर्बोधके होते भी ऐन्द्रिय मनोराग के सिवाय मनुष्य में ज्ञान क्षमता उत्पन्न नहीं होगी और यदि ज्ञान क्षमताही न होगी तो मनुष्य बहुधा केवल पशु की दशाही में रहेगा। यहां एक बात और भी मालूम हुई। वह यह है कि हमारी आरम्भिक अवस्था का अन्तर्बोध केवल एक गुण विशिष्ट होता है और वह गुणविशिष्टता भी कुछ काल के लिये होती है पर उस काल में वही एक गुण अन्तर्बोध में अधिकता से पाया जाता है और वह गुण, यदि पूछा जाय तो यह है कि अन्तर्बोध का मनोरागक्षम होना अर्थात् सुखद और

दुःखद स्थिति का अनुभव लेने योग्य होता है ॥

खंड ३ ।

मनःक्षोभ (Emotions.)

उपाध्याय रावार्तसुनु मनक्षोभ की व्याख्या करते हुए तत्ववेत्ता स्पेन्सर (Spencer) से सहमत हैं। वे मनःक्षोभ के विषय में कहते हैं कि मनःक्षोभ वह मनोविकार है जिसमें मनोराग होता है। परन्तु मनःक्षोभ और इन्द्रिय मनोराग में भेद है। यह भेद दो प्रकार का होता है। एक शारीर दृष्ट्या और दूसरा मानसिक दृष्ट्या। प्रथम हम इसका शारीर दृष्ट्या विचार करेंगे।

जहां इन्द्रिय मनोराग के उत्पन्न होने के विषय में वर्णन किया है वहां यह दिखलाया है कि स्नायु के तन्तुओं से नसों में और वहां से मज्जा में प्रोत्साहन का प्रवाह होकर मस्तिष्कगत केन्द्रों का सञ्चालन होता है जिसका अन्तर्बोध से संयोग होने से इन्द्रिय मनोराग का ज्ञान होता है। इन्द्रिय मनोराग की क्रिया में प्रोत्साहन श्रेष्ट है। और उसमें भी स्नायुगत तन्तु उत्पन्न होने वाला श्रेष्ट है और दूसरा नहीं, परन्तु मनःक्षोभ से स्नायुगत तन्तुओं से इतना सम्बन्ध नहीं है। मनःक्षोभ मस्तिष्क के केन्द्रों में सञ्चालनादि क्रिया उत्पन्न करता है और उस सञ्चालन का अन्तर्बोध से सम्बन्ध होने से मनःक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। जैसे आलपीन को त्वचा में चुभा देने से उस जगह के स्नायुगत तन्तुओं में प्रोत्साहन उत्पन्न होकर अन्तर्बोध के मेल से, आलपीन के चुभने का दुःख इन्द्रिय मनोराग उत्पन्न हुआ। इस कार्य में स्नायुगत तन्तुओं के प्रोत्साहन की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु भय का उदाहरण लीजिए। भय एक मनःक्षोभ है। तलवार को देख हमें भय मालूम होता है। यहां तलवार का हमारे शरीर से स्पर्श न होकर भी हमें उसका भय मालूम होता है। तो इससे स्पष्ट होता है कि स्नायुगत तन्तुओं में प्रोत्साहन उत्पन्न होने का कारण इतना बलवान नहीं है। परन्तु मस्तिष्क के केन्द्रों में केवल सञ्चालन ही नहीं किन्तु बड़ा क्षोभ भी उत्पन्न हो जाता है। तात्पर्य, यह कि इन्द्रिय मनोराग में वाह्य और शारीर प्रोत्साहन श्रेष्ट है, और मज्जा

केन्द्र में उत्पन्न होने वाला क्षोभ मनःक्षोभ में श्रेष्ट है । हां, कभी कभी बाह्य प्रोत्साहन भी उसमें सन्निविष्ट होगा, परन्तु उसका इतना महत्व नहीं माना जा सकता है ।

अब मनःक्षोभ का मानसिक दृष्टया विचार करें। इन्द्रिय मनोराग मस्तिष्कगत सञ्चालन का अन्तर्बोध से संयोग होते ही होता है-यह अभी हम कह चुके हैं परन्तु मनःक्षोभ में कुछ अधिक है । इस में प्रदर्शन (representation) को क्रिया होती है। तलवार के देखते मुझे डर क्योंकर मालूम होता है? इसका कारण यह है कि पूर्वानुभव अथवा ज्ञान से मुझे मालूम है कि तलवार दुःखदाई वस्तु है—उसके देखतेही उससे होनेवाले दुःख का प्रदर्शन मस्तिष्क में होकर वहां क्षोभ उत्पन्न करता है जिसका अन्तर्बोध से सम्बन्ध होतेही मनःक्षोभ उत्पन्न हो जाता है । बालक दीपक को जलता हुआ देखकर उसके जानने की इच्छा से उसको छूना चाहता है परन्तु हम इस डर से कि उसका हाथ कहीं जल न जाय उसे बचाने का उद्योग करते हैं। हां, यदि एक बार, केवल प्रयोग के हेतु से, उस बालक की उङ्गली पकड़ दीपक से छुआ दीजिए तो वह दुखःदाई अनुभव जो कि निरा इन्द्रिय मनोराग है कभी नष्ट नहीं होगा और फिर बालक दीपक या आग से दूर से ही डरेगा । उसे भूलकर भी छूने या पकड़ने की चेष्टा नहीं करेगा । क्योंकि जब कभी वह दीपक को देखेगा उसी दुःखद पूर्वानुभव का प्रदर्शन उसके मन को हो जायगा और तत्काल वह डर के मारे उससे दूर भागेगा । इससे यह बिदित होता है कि मनःक्षोभ के पहिले मनोराग का अनुभव होना चाहिए । फिर वह अनुभव सुखद हो अथवा दुःखद । और मनःक्षोभ प्रदर्शन युक्त और मस्तिष्क केन्द्रारम्भी (Centrally initiated) होता है । मनःक्षोभ की प्रदर्शन क्रिया में कई मानसिक शक्तियों का उपयोग होता है, यथा प्रज्ञान, परिज्ञान, कल्पना, कल्पना साहचर्य, स्मरण, विचार, इत्यादि ।

खंड ४ ।

सुख और दुःख ।

मनोराग के विषय में विचार करते समय हमें सुख और

६

दुःख के विषय में कुछ सम्बन्ध दिखाना पड़ा था। परंतु मनोविज्ञान की दृष्टि से सुख और दुःख से क्या अर्थ है यह यहां स्पष्ट समझ लेना चाहिए। सुख की स्थिति उसे कहते हैं जिसमें कुछ या सब आन्तरिक क्रियाओं में आधिक्य होता है। और जिस में कुछ या सब आंतरिक क्रियाओं की कमी होती है उसे दुःख की स्थिति कहते हैं। इन दोनों स्थितियों के मेल से स्वरक्षा का नियम (Law of conservation) बना है। सुख और दुःख की दशा से इतनाही अर्थ है कि सुख शरीर को सुखकर और स्वरक्षार्थ होता है और इसके विपरीत दुखः। अपने शारीरिक कार्य सुखद मनोराग से आनंदकारी होते हैं और दुःखद मनोराग से शारीरिक कार्य बिगड़ जाते हैं और क्लेशदाई होते हैं।

इसके विरुद्ध एकही अपवाद अनुभव में आया है। कुछ सुख ऐसे हैं जिनमें शरीर का संरक्षण नहीं होता और कितनेही दुःख ऐसे हैं जो शरीर नाशक नहीं होते। ये सुख वा दुःख वे हैं जो किसी मदकारी वस्तु के उपयोग से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे भांग अथवा मद्य के पीने से एक प्रकार का सुख होता है। परन्तु सब मादक पदार्थ शरीर को हानिकारक होने के कारण संरक्षक नहीं हैं। मादक पदार्थ के न मिलने से दुःख होता है परन्तु वह दुःख शरीर नाशक नहीं होता।

उन सुखों का जिनका आगम मनःक्षोभ के द्वारा होता है विभाग उनके उत्पन्न होने के कारणों की दृष्टि से निम्न लिखित प्रकार से किया है।

१ ऐन्द्रिय सुख।	१ क्षुधा। २ निरोग प्रकृति या चंगापन। ३ स्वाद।
२ प्रज्ञा सुख।	४ उपयोग वा लाभ। ५ ज्ञान। ६ कल्पना।

३ विवेक सुख । { ७ स्वत्व । ८ सत्य । ९ कल्याण ।

४ संकल्प सुख । { १० इच्छा । ११ स्वतन्त्रता । १२ समाजिकता ।

५ अधिकार सुख । { १३ कार्य । १४ धैर्य । १५ यश । १६ विश्राम ।

खंड ५ ।

सौन्दर्य मनोराग (Æsthetic feeling.)

अब हम उन प्रदर्शक मनोरागों की ओर ध्यान देते हैं जो कि बहुत उदात्त और मिश्र हैं और जिन्हें हम 'भाव' अथवा 'रस' याने (Sentiment) कहेंगे । विशेषतः भावों का सम्बन्ध प्रज्ञा के कार्यों से है । हम स्वभावतः सौन्दर्य, सत्य और शुद्ध इन गुणों को पहिचान सकते हैं। यह पहिचान होना मनोराग युक्त प्रज्ञा का कार्य समझा जाता है । बैण पण्डित कहते हैं कि सब से अधिक मिश्र प्रकार का मनोराग वह है जिसे सौंदर्य मनोराग कहते हैं । सौन्दर्य मनोराग मनोराग का मनोराग है अथवा द्विगुत्त मनोराग है क्योंकि वह हमारे मन में दूसरे मनोरागों के प्रदर्शन से उत्पन्न होता है और उन मनोरागों की वृद्धि अथवा उन्नति, प्रचुरता, सूक्ष्मता और विचित्रता के कारण होती है । अथवा यों कहिए कि भिन्नता और एकरूपीकरण इन दो कार्यों के द्वारा सौन्दर्य मनोरागों में, परिपूर्णता, विचित्रता और पुनः पुनः उपयोग की इच्छा उत्पन्न होती है । कुशल कारीगर अथवा चित्रकार की आंख को रंगों के बाह्य स्वरूप में सैकड़ों प्रकार का साम्य और भेद दिखाई देता है जो कि साधारण मनुष्य को नहीं दिखलाई पड़ता । उत्तम कवि अपनी

सुसंस्कृत कल्पना शक्ति से आश्चर्यकारक और सुंदर पदार्थों में ही नहीं परंतु सादे और नित्य के परिचय की बातों में भी अनेक प्रकार के रस और भाव भरे हुए देखता है। वही अशिक्षित मनुष्य, नहीं बहुत से पढ़े लिखे भी आंख कान इत्यादि इन्द्रिययुत होकर कुछ नहीं देख सकते। दुःख तो यह है कि इनमें सहृदयता का भी अभाव होता है और जब किसी उत्तम कवि के उन्नत भाव का आविष्कार किसी बुद्धिहीन मनुष्य को अथवा विद्यार्थी को करने का काम करना पड़ता है और वह बहुत समझाने पर भी कवि के भाव को नहीं समझता तो किसी एक कवि की एक इस उक्ति की याद आही जाती है। हे विधाता!

"अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं।
सिरसि मा लिख मा लिख मा लिख"।

दूसरे, सौन्दर्य मनोराग की विस्तृति और विशालता मन की मेधाशक्ति की उन्नति के साथ बढ़ती जाती है। इसलिये बालकों की प्राथमिक शिक्षा में चित्र लेखन अवश्यमेव होना चाहिए क्योंकि इससे वे बहुत ही निरीक्षणशील होंगे।

कुछ सादे इन्द्रिय सुख सुन्दर होते हैं। रंग अथवा ध्वनि के मधुर मानसिक परिणाम को हम सुन्दर कहते हैं। यह स्मरणीय बात है कि जब कभी हमें सुन्दर वस्तु के देखने से मनोराग उत्पन्न होता है तब वह इन्द्रिय प्रदर्शन द्वारा होता है क्योंकि, उदाहरणार्थ, वह आनन्द जो किसी सुन्दर चित्र के देखने से होता है वह उस चित्र के देखते समय जो ऐन्द्रिक कार्य होते हैं और उनका परिणाम मन पर होता है उसी का फल है। अर्थात् सौन्दर्य मनोराग के लिये प्रथम प्रत्यक्ष वस्तुज्ञान होना चाहिए। परंतु यह प्रकार सर्वत्र नहीं आवश्यक दिखाई देता है। जैसे काव्य पढ़ने अथवा श्रवण में। जब हम कविता पढ़ते हैं तो वहां शब्दों के सिवाय बाह्यतः और कुछ दिखाई नहीं देगा। परन्तु वे शब्द रस, लालित्य, माधुर्य, भाव इत्यादि सौन्दर्य गुणों से परिपूरित चिह्न रूप होते हैं और कल्पनाओं के प्रदर्शक होते हैं। प्रदर्शन स्मृति और प्रज्ञा के द्वारा आनन्द का उत्पादन हो जाता है और हम कवि की रसमयी, सालंकृता, भाव

पूर्ण, वाणी को पढ़कर आनन्दमग्न अथवा रस के स्वभावानुरूप क्षुब्ध और विकारवश हो जाते हैं।

यद्यपि काव्य के पढ़ने में बाह्येन्द्रियों का बहुत उपयोग नहीं होता सिवाय इसके कि अक्षर शब्द रूप से पढ़े जांय, शब्द अन्तरेन्द्रिय को सचेत करते हैं और इन्द्रिय मनोराग की क्रिया होती चली जाती है। वही क्रिया कुछ रूपान्तर से किसी आलोक चित्रित वस्तु को देखकर अथवा रंगीन चित्र को देखकर होती है। सारांश Æsthetic इस शब्द का जो मूलार्थ मनोराग है वह सर्वत्र निवास करता हुआ दिखाई देता है' केवल इतनाही अन्तर हो गया है कि वह मनोराग अब केवल सौन्दर्य से उत्पन्न होनेवाला समझा जाता है।

सौन्दर्य भाव के विशीष्ट गुण क्या हैं यह बात विचारणीय है। इसके विषय में कुछ लिखकर इस विषय को पूरा करेंगे। सौन्दर्य-भाव बहुधा श्रवण अथवा दृष्टि के सुख से उत्पन्न होता है। वह केवल भावमय याने मानसिक होने के कारण मन की संस्कृतता और उन्नति का कारण होता है। वासना यह तो सुख के पुनरानुभव की लालसा उत्पन्न करनेवाली वस्तु है, फिर सुख से उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य भाव के पुनरानुभव की वासना मनुष्य को क्यों न होना चाहिए, रावर्तसूनु कहते हैं सौन्दर्यभाव, पुनरानुभव की वासना, और अनुभव के वा उपभोग के पश्चात् उसके अभाव से उत्पन्न होनेवाले दुःख से अतीत है। परंतु मेरी अल्प समझ में यह ठीक नहीं मालूम होता। इतने बड़े मनोविज्ञानी से विपरीत होना धृष्टता है परन्तु मैं अपने मतान्तर के लिये उपाध्याय रावर्त सूनु का सादर क्षमार्थी हो कहता हूं कि यदि ऐसा होता कि सौन्दर्यभाव, उपभोग के अभाव से होनेवाले दुःख से अतीत है तो सुन्दर गायन एकही बार सुनकर चिरकाल के लिये मन प्रसन्न हो जाता और फिर कभी गाना सुनने की आवश्यकता न होती, न उस आनन्द के पुनरानुभव की इच्छा उत्पन्न होती परन्तु हम देखते हैं कि उसीउ पभोग का पुनर्लाभ होने की इच्छा बनी रहती है। कल्पना कीजिए कि हम किसी नाटक के मनोहारी सुन्दर दृश्य को देखकर तल्लीन होरहे हैं। पटाक्षेप होतेही वह दृश्य हमारे

नेत्रों के सामने से नष्ट होगया। तत्काल हमारे मन पर उस आनन्द के अनुभव में विघ्न का परिणाम होता है और यह अभिलाषा उत्पन्न होती है कि वह दृश्य और कुछ काल तक दिखाई देता रहता तो अच्छा होता और इसीके साथ एक प्रकार का सूक्ष्म आन्तरिक क्लेश भी होता है। यहां इतनी मानसिक क्रिया मिश्र एक समयावच्छेद से होतीं हैं कि यह नहीं कह सकते कि अभिलाषा प्रथम उत्पन्न होती है कि क्लेश। परन्तु यह निश्चित है कि सुख के अभाव से क्लेश और पुनः सुख की अभिलाषा उत्पन्न होती है। यदि ऐसा न होता तो न तो सौन्दर्य मनोराग परिणत होता, न उसमें उन्नति और संस्कृति ही होती। केवल इतनाही नहीं किन्तु सौन्दर्य भाव से सम्बन्ध रखनेवाले कल्पनाकृत कार्य, यथा, काव्य, चित्र, वाद्य, लेखन इत्यादि की कला प्रगति मार्ग से विगलित हो जायगी। आज आधिभौतिक विज्ञानों में जो इतनी उन्नति दिखाई देती है उसका मुख्य कारण सुन्दर वस्तु के उपभोग की अनिवार इच्छा यही है, इसमें संदेह नहीं।

अध्याय ६।

खंड १।

संकल्प (Will.)

जिसे हम संकल्प कहते हैं वह मनोराग और बुद्धि की शक्तियों के संयोग से उत्पन्न होता है। जब हम देखते हैं कि मनोराग और बुद्धि इन दोनों के मानसिक कार्य और गुण बहुतेरे हैं तो वह संकल्प जिसमें मनोराग और बुद्धि दोनों संमिलित होते हैं, उसकी विचित्रता और मिश्रता कितनी अधिक होती होगी, परंतु वैज्ञानिक लोग जैसे हम भाषा के विषय में कहते हुए लिख आये हैं कि, अपने अनेक विचार और कल्पनाओं के लिये एक सूचक चिन्ह याने शब्द बनालेते हैं और फिर बहुत से विचार और कल्पना उस एकही शब्द से सहलही में व्यक्त होजाते हैं। उसी प्रकार यद्यपि मनोराग और बुद्धि के कार्य बहुतेरे हैं परन्तु उनके

संयुक्त कार्यों को मनोविज्ञान पंडित लोग एक मात्र शब्द से व्यक्त कर लेते हैं। वह शब्द (Conation) है। हम इसका अनुवाद प्रज्ञान इस शब्द से करते हैं और यह स्थिर करते हैं कि मनोविज्ञान में प्रज्ञान शब्द से यही निश्चतार्थ समझा जावे।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि "नहिं कश्चित् क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्" अर्थात् कोई भी क्षण भर अकर्मकृत् नहीं रह सकता। कार्यपरता यह मनुष्य का स्वभावही है। इससे केवल इतनाही अर्थ नहीं समझना चाहिए कि मनुष्य दिन रात शारीरिक काम में जुटा रहता है। नहीं कदापि नहीं वह सदा सर्वदा मानसिक कार्यों में जुटा रहता है यही कहना योग्य होगा। क्योंकि उसके जितने कार्य है वे सब संकल्प के फल हैं। जैसे, जब मैं कहता हूं कि मैं वह दरवाजा खोलूंगा तब मैं अपने मन में दरवाजे की प्रतिमा उत्पन्न करता हूं। इसमें स्नायु का कार्य साधन है और अन्तर्बोध की प्रतिमा युक्त स्थिति वहीं एक हेतु होता है। यदि मुझे इस बात की प्रदर्शक कल्पना नहीं है कि दरवाजा कैसे खुल जायगा तो मैं दरवाजा खोलने का संकल्प भी नहीं कर सकूंगा। बालक दारवाजा खोलने का यदि संकल्प नहीं कर सकता तो समझना चाहिए कि उसे प्रदर्शन की शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। संकल्प के कार्य में बोधन की क्रिया (Intellection) नियमित और स्पष्ट प्रदर्शन रूप से होती है। इसमें केवल प्रदर्शनही होकर नहीं रह जाता परन्तु एक और विशेष कार्य भी होता है। वह कार्य यह है कि जो कुछ मेरा संकल्प संकेत हो चुका है उससे प्रदर्शन का सम्बन्ध उत्पन्न होता है। उस सम्बन्ध को हम मनोराग कहकर अपना अर्थ व्यक्त करलेते हैं। परन्तु इतनेही से संकल्प की क्रिया संपूर्ण नहीं हो जाती। स्नायुज चैतन्य का कार्य भी संकल्प में होता है। संकल्प में एक अवस्था ऐसी कुछ अनोखी और चमत्कारिक होती है कि न तो हम उसे मनोराग कह सकते हैं और न उसे बोधन कह सकते हैं। इस अवस्था को स्फूर्ति कह सकते हैं। इसमें संकल्प का कार्य प्रथम नहीं होता।

संकल्प के कार्य में मनोराग और बोधन इन दोनों का एकी

कारण किसी एक प्रकार से स्नायुज चैतन्य द्वारा होता है। प्रज्ञान में चैतन्य की विशेषता, मनोराग वा बोधन में जो चैतन्य होता है उसकी अपेक्षा अधिक होतीहै। संकल्प यह शब्दही यह अर्थ व्यक्त करता है कि क्रिया की ओर प्रोत्साहन अथवा प्रयत्न। जहां तक हम संकल्प का, उसकी उन्नत अवस्था की दृष्टि से बिचार करते हैं तो यह प्रतीत होता है कि संकल्प कोई तीसरी मानसिक शक्ति नहीं है। परंतु ज्योंही हम संकल्प को मन के इतर बोधन कार्यों की दृष्टि से देखते हैं त्योंही हमें यह मानना पड़ता है कि प्रज्ञान यह मन की क्रिया का ऐसा स्वरूप है जोकि मनोराग और बोधन की तरह भिन्न समझा जा सकता है, और यदि यह सत्य है कि संकल्प में प्रथम बोधन और मनोराग होते है तो इससे यह नहीं निष्पन्न होता कि संकल्प कोई पदार्थ ही नहीं है जो कि उन दोनों से भिन्न और स्वतंत्र होवे।

खंड २।

संकल्प के कार्य।

हमें जो स्वतन्त्रता की कल्पना उत्पन्न होती है उसका आदि कारण संकल्प है। जिस प्रकार हम देखते हैं कि वाह्य सृष्टि के सब कार्य, कार्य कारण भाव के नियम के अनुसार चलते हुए दिखाई देते हैं उसी प्रकार हमारे मानसिक कार्य भी उसी कार्य कारण भाव के निर्बन्ध से होते हुए मालूम होते हैं। यहां तक कि हमारे प्रबोधन और मनःक्षोभ के कार्यों में भी कल्पना-साहचर्य के नियम और उन की शक्ति का प्रभाव दिखाई देता है। सारांश यह है कि स्वतन्त्रता देवी का अधिष्टान संकल्प के उज्वल मन्दिर में है और उसका दर्शन उसी स्थान में होता है।

स्वाभाविक स्वातन्त्र्य का अर्थ सर हामिलितन्न साहिब इस प्रकार लिखते हैं कि स्वाभाविक स्वतन्त्रता वह शक्ति नहीं है जिसके कारण हम जो काम करना चाहते हैं उसे करते हैं परन्तु वह शक्ति है जिसके कारण हम इच्छित कार्य करने की इच्छा करते हैं। क्योंकि हमारे संकल्प को निश्चित करनेवाली शक्ति संकल्प का कार्य होने की साक्षी देती है और हम अपनी स्वन्त्रता

का उपयोग विचार युक्त निश्चय द्वारा आपही कर सकते हैं।

सद्वस्तु प्राप्त्यर्थ हम इच्छा करते हैं। इसका यदि विचार-पूर्वक निरीक्षण किया जाय तो यह दिखाई देगा कि संकल्प की सहायता से हम अपनी इच्छा को यहां तक उन्नत कर सकते हैं कि उसके द्वारा हमें सद्वस्तु का यथार्थ बोध होजावे इस हेतु से कि उसी इच्छा का यह परिणाम होवे कि हमारी इच्छा हमारे सङ्कल्प पर ही अपना अधिकार जमावे और सद्वस्तु प्राप्ति के लिये हमें यत्नशील बनावे। ध्यान के द्वारा जो कि यथायोग्य रीति से होना चाहिए, हम उस सद्वस्तु को अपने मन के समीप ला सकते हैं। ध्यान के कारण हमें उस सद्वस्तु में रति उत्पन्न होती है और प्रेम से इच्छा बलवती होती जाती है। इससे यह ज्ञात हो जायगा कि योगाभ्यास का रहस्य, शास्त्रीय उन्नति के ज्ञान से मालूम हो सकता है।

हेतु और इच्छा इन दोनों के सङ्कल्प से संयोग होने से मनुष्य का स्वभाव बनता चला जाता है और जिस प्रकार उसकी इच्छाएं होती हैं उन्हीं की प्राप्ति के अनुसार उसके सङ्कल्प के कार्य होने के कारण उसकी अभिरुचि भी स्थिर होती जाती है। इसी कारण सङ्कल्प तक अत्यन्त महत्व की शक्ति गिनी जाती है। इसी के कार्य से भले और बुरे कार्य बन पड़ते हैं और स्वभाव की रचना होती जाती है। सङ्कल्प से वह नैतिक शक्ति जिसे सद-सद्विवेक (Conscience) कहते हैं, उसका संबन्ध रहे तो सङ्कल्प सर्वदा सदाचार को उत्पन्न करेगा।

सङ्कल्प का एक और यह कार्य है कि जो काम इच्छा, हेतु अथवा स्वभाव के अनुसार हितकारी मालूम होता है उसी की पुनरावृत्ति करावे। जैसे, जब यह निश्चित हो जाय कि मैं अन्यथा सत्य को छोड और कुछ न कहूंगा तो सत्य बोलने का अभ्यास होता जाता है और जब अभ्यास दृढ हो जाता है तो वह स्वभाव में परिणत हो जाता है।

खंड ३।

सङ्कल्प के प्रकार।

प्रज्ञान के कार्य में स्वाभाविक क्रिया होती है। उसमें प्रथम तो शरीर के अवयवों में चेतना अथवा गति उत्पन्न होती है। यह गति हमारे मानसिक कार्य के अनुसार होती है तथा ध्यान की दिशा और स्थिरता के अनुसार होती है। अब यदि यह विचारा जाय कि शारीरिक अवयवों में जो गति उत्पन्न होती है वह क्योंकर होती है तो यह नियम दिखाई देगा कि मस्तिष्क में जो सञ्चालन होता है-फिर वह ऐन्द्रिय ज्ञान, मनोराग अथवा कल्पना इनमें से किसी से सबन्ध रखता हो-वह सञ्चालन मस्तिष्क के जिन मण्डलों में उत्पन्न होता है उन्हें भरपूर भर कर बाहर प्रवाहित होता है और स्नायु मार्ग द्वारा रगों में और दूसरे अवयवों तक पहुंच जाता है और इस प्रकार शारीरिक अवयवों में गति उत्पन्न हो जाती है। जैसे अति क्रोध से नेत्र लाल हो जाते हैं और ओंठ थर थर कांपते हैं और किसी के पैर भी थरथराते हैं। हमारे कवियों ने इस विषय में बहुत अभिज्ञता पाई है, यहां तक कि मन के प्रत्येक भाव का परिणाम शरीर पर क्या होता है और किस प्रकार होता है उसका नियमरूप सशास्त्र निबन्धन साहित्य ग्रन्थों में किया है। कविकुलावतंस अ'ट्ठ ीय कवि श्रेष्ठ श्रीमत्कालिदास ने अपने सुन्दर और रमणीय मेघदूत काव्य में विरह की दशा वर्णित की है। उसे देखने से ज्ञात होगा कि कवि लोग मनोविज्ञान के दृश्यों को कितनी सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं। वे केवल भाव के भूखे होते हैं इससे मनोराग के परिणाम मात्र का विचार करते हैं परन्तु मनोविज्ञानकर्ता को उन परिणामों के कारणों का विचार करना पड़ता है तथा उन कारणों से क्रिया आरम्भ होकर किस प्रकार परिणाम के रूप मे दिखलाई दी इस का समस्त अवलोकन करना पड़ता है। अस्तु।

अब यदि उस मस्तिष्क क्षोभ से उत्पन्न होनेवाली और अवयवों में दृश्य होनेवाली गति के विषय में विचार किया जाय

तो यह ज्ञात होता है कि यह गति कई प्रकार की होती है। जैसे।

(१) अहेतुक गति-जोकि हम छोटे बालकों में देखते हैं। बालक आरोग्य दशा में होवें और उन की छोटी छोटी नैसर्गिक इच्छाओं की पूर्ति हो जाय तो वे आनन्द की हालत में होते हैं, और अपने, गठीले छोटे छोटे सुहावने हाथ पैर फेकने लगते हैं। यह संचालन कभी कभी तो इतने वेग से होता है कि बालक बहुत जोर से हवा में उछलते कूदते हैं यहांतक कि उनकी गडियों में चोट भी लगजाती है परन्तु वे उस की ओर ध्यान नहीं देते। इसे कोई कोई मनोविज्ञानकार अन्ध सङ्कल्प भी कहते हैं, क्योंकि यह बिलकुल अहेतुक होता है।

(२) चेतना वाहक नसों में उत्पन्न होनेवाली गति। यह गति किसी न किसी प्रकार का ऐन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न करती है। जैसे किसी सुगन्धित पुष्प के सुवास से पुन: सुवास का अनुभव लेने की क्रिया-हर एक प्रकार का स्वाद जिह्वा में गति उत्पन्न करता है। किसी चलती हुई वस्तु अथवा प्रकाश को देख उसी दिशा में मुह फेर कर देखने की इच्छा। ये सब कार्य इस प्रकार की गति के कारण होते हैं।

(३) मनोराग उत्पादक गति-वह गति जो सुखद अथवा दुखद स्थिति उत्पन्न करता हो उसे मनोराग उत्पादक गति कहते हैं। इस में सुख अथवा दु:ख उत्पन्न होता है।

(४) कोई गति ऐसी प्रोत्साहक और प्राकृतिक(Instinctive) होती हैं जो सूक्ष्म मनोराग और कल्पना प्रगट करती हैं। परन्तु न तो वे अपने आप उत्पन्न होनेवाली होती हैं न विचार के कारण पैदा होती हैं। जब वे मनुष्यप्राणी में हों और स्वजाति गुण-वशात् स्वसंरक्षण, प्रजोत्पादन और प्रजारक्षण के कार्य को करें तो उन्हें प्राकृतिक बुद्धि कहना चाहिए।

(५) कल्पना गति। उसे कहते हैं जो अन्तर्बोध में कल्पना उत्पन्न होने से होती है। हमारी जागृति की अवस्था में यदि किसी

कार्य को करने की कल्पना मन को होवे तो उस कार्य को करने के योग्य गति की उत्पत्ति होती है। हां इसमें कोई बाधा होजाय वह दूसरी बात है। परन्तु कल्पना के होते ही तत्सम्बन्धी कार्य को करने की प्रवृत्ति अवश्य होती है। यही कल्पना गति जाननी चाहिए। यह अभ्यास से यांत्रिक क्रिया की तरह होती हुई दिखाई देती है। जैसे किसी प्रकार के खेल में, सितार या और कोई बाजा बजाने में या और किसी शारीरिक क्रिया में प्रत्येक कल्पना उसके सम्बन्धी कार्य को तत्काल कराती है। यह कार्य एक समयावच्छिन्न (Immediate) इस कारण होता है जो आदत या अभ्यास से कल्पना आतेही स्नायु संचालित होकर तत्काल क्रिया कर देते हैं।

(६) अनुकरण गति-वह है जिस में बालक छोटी अवस्था में सीखने का यत्न करते हैं। यह देखा गया है कि जब बालक किसी शब्द का उच्चारण अथवा किसी काम को करने का यत्न करता है तब उस यत्न करने के पहिले उस कार्य को होते हुए वह बहुत ध्यान से देखता है और फिर अनुकरण की स्फूर्ति होते ही उसी कार्य को करने का यत्न करता है और बहुधा उसका अनुकरण साध्य हो जाता है।

(७) ऐच्छिक गति-इसमें हमारे अन्तर्बोध को हमारी इच्छा का पूर्णतया बोध होजाता है, और इच्छा अथवा सङ्कल्प इतना दृढ़ हो जाता है कि कभी कभी उसमें बाधा आजाने पर भी और बहुत विचार के पश्चात् भी उस ऐच्छित कर्य को करलेने की गति उत्पन्न होती है। इसमें मनोराग अवश्य होता है और यत्न भी प्रगट होता है।

यद्यपि ऊपर सङ्कल्प की गति के भेद बतलाए हैं तथापि इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे हर एक बिलकुल भिन्न हैं। परन्तु ऐसा दिखाई देगा कि उन में कहीं तो साम्य है और कहीं मेल। यदि सांकल्पिक गति अपनी शुद्ध अवस्था में देखी जाती है तो केवल बालक के छोटेपन में दिखाई देती है। उस में और युवा मनुष्य के उसी कार्य के अनुसरण में बड़ा अन्तर है।

जो कार्य बालक सहज करता है उसका अनुकरण यदि कोई बड़ा मनुष्य करे तो उस अनुकरण में कल्पना और मनोराग का भाव अवश्य होगा।

उक्त वर्णन से यह ज्ञात होगा कि सङ्कल्प कैसे होता है। संक्षेपतः सङ्कल्प प्रज्ञान के उस विशिष्ट कार्य को कहते हैं जोकि किसी हेतु को पूरा करने के लिये किया जाता है। वह हेतु मन के सामने प्रतिबिंबित हो कर इच्छा से या तो संयुक्त होता है अथवा उसके पहिलेही उत्पन्न हो जाता है और प्रयत्न के मनोराग के साथ होता है वा वह मनोराग बाद में भी उत्पन्न होता है। जब सङ्कल्प की परिणत दशा हो जाती है तो उस के कार्य में कई मानसिक शक्तियों का विचार होता है। यथा बुद्धि, स्मरण, कल्पना और विचार।

खंड ४।

प्राकृतिक बुद्धि।

हम अभी सङ्कल्प के विषय में कहते हुए प्राकृतिक गति का वर्णन कर आये हैं। वह प्राकृतिक गति प्राकृतिक बुद्धि के कारण उत्पन्न होती है। अब यह स्पष्ट करना चाहिए कि प्राकृतिक बुद्धि से क्या अर्थ समझना चाहिए। वैज्ञ पंडित कहते हैं कि प्राकृतिक बुद्धि केवल वह शक्ति है जिसे हम अशिक्षित पटुत्व कह सकते हैं। जब प्राणी किसी कार्य को अनुभव अथवा शिक्षा के अतिरिक्त करे तो उसे प्राकृतिक बुद्धि का कार्य समझना चाहिए। जैसे, बालकों का जनमते ही स्तनपान करना, चौपायों का जनमतेही चलने लगना, पक्षी का अंडे के बाहर निकलते ही भक्ष्य के लिये मुंह पसारना और सब प्राणियों में एक सा दीखने वाला प्रजावात्सल्य भाव, ये सब कार्य प्राकृतिक बुद्धि के कारण होते हैं।

प्राकृतिक बुद्धि जिसे बहुतेरे लोग पशु बुद्धि भी कहते हैं

उसके दो भेद हैं (क) अभ्यास के कारण जो कार्य प्रथम बुद्धि युक्त थे वे अनेक जन्मपरंपरा में पूर्णतया मुद्रित हो जाते हैं और फिर जन्म जन्म में केवल यांत्रिक रीत्या होते चले जाते हैं। इसे संस्कार कहना योग्य होगा। संस्कार के अनुसार स्वभावतः ही गुण उत्पन्न होते हैं। पूर्वजन्म के संस्कार इस जन्म में स्वभाव रूप से दिखाई देते हैं। (ख) दूसरा भेद जिस में केवल सुयोग्य प्राणी का जीवनाधिकार (Survival of the fittest) यह नियम कारण होता है। इस में निसर्गतः प्राणी अपने बच्चों की रक्षा उसी रीति से करते हुए दिखाई देते हैं जिससे वे इस संसार में जीवन के लिये सुयोग्य होवें। यह गुण प्राकृतिक होता है। इसमें अभ्यास का उपयोग दिखाई नहीं देता और आनुवंशिक तो होता ही है।

॥ इति ॥

मनोविज्ञान में पाश्चिमात्य तत्ववेत्ताओं के आए हुए नामों के संस्कृत रूप ।

सक्रतिक	Socratas	मिल्ल	Mill
दिक्कार्तिक	Descartes	वैण	Bain
विरञ्चिमाली	Malebranche	हा! मिलितम्!	Hamilton
अर्णादि	Arnold	जीवहंस	Jevons
लवनीज	Labnitz.	मनःशील	Mansel
लोक	Lock	रावार्तसूनु	Robertson
बर्क्ले	Berkley	कविपर	Cowper
ह्यूम	Hume	स्पेणसर	Spencer

मनोविज्ञान में आए हुए कठिन शब्दों का कोश ।

(ये शब्द उसी क्रम से दिए गए हैं जैसे कि वे पुस्तक में आए हैं)

मनोविज्ञान, मानसशास्त्र	Psychology
युक्ति सहित ज्ञान	Reasoned Knowledge
उपपत्ति	Theory
प्रगतिशाल विज्ञान	Progressive Science
विवरण	Treatment
उपयुक्तता	Utility
लोकोपयोगिता की दृष्टि	Utilitarian view
तात्विक	Philosophic
आध्यात्मिक	Metaphysical
भौतिक विज्ञान	Material Science
तत्वज्ञ, तत्वविद्	A philosopher
वैज्ञानिक लोग	Scientists
पदार्थ विज्ञान	Physical Science
रसायनशास्त्र	Chemistry
भिषक् शास्त्र	Medicine
शरीर ,,	Anatomy

सौन्दर्यविज्ञान	Æsthetics
रसविज्ञान	Rhetoric
परिभाषा	Definition (लक्षण, व्याख्या
जडपदार्थविषयक	Constituted of or pertaining to matter
प्राणिशास्त्र	Physiology
नामनिर्देश	Ennumeration
वर्णन	Description (लक्षणकल्पवर्णन
विशिष्टगुण	Differenti (असाधारण-धर्म, व्यावर्तक
गणजाति	Genus (जाति
परीक्षा	Test
तर्कशास्त्र	Logic (न्याय शास्त्र)
संशयात्मा	Sceptic
कल्पनावादी	Idealist
आकांक्षा	Willing
तर्कना	Inference

अनुभववादी	Experiencia-list
व्याख्या	Explanation
इन्द्रियज्ञान	Sensation
मनोविकार / मनोराग	Feelings
वैज्ञानिक परिभाषा	Scientific definition
सङ्कल्प	Willing
बुद्धि	Intellect
प्रतिपादन	Treatment
व्याख्यान	Explanation
अन्तरेन्द्रिय	Internal Sense
द्रव्य	Matter
स्थिति	Condition
क्रिया	Function
समाजशास्त्र	Sociology
बुद्धिविशिष्ट मनोविज्ञान	Psychology of Knowing
अलङ्कार	Figures of Speech
मनोरागविशिष्ट मनोविज्ञान	Psychology of Feeling
सङ्कल्प विशिष्ट मनोविज्ञान	Psychology of Willing

नीतिविद्या	Ethics
भावना	Impression, Image
शरीर सम्बन्धी चैतन्यविद्या	Physiology of sensation
यंत्रशास्त्र	Mechanics
शारीरिक इन्द्रियां	Physical organs of senses
अन्तर्बोध	Consciousness (चेतना शक्ति)
मज्जातन्तु	Brain fibers
मज्जा	Brain
मज्जा तन्तुजाल / मज्जाप्रणाली	Nervous System
चेतना	Sensation
सहकालता	Contiguity in time
दृश्य / अद्भुतालोक	Phenomena
विचारणा	Inquiry
संचलन	Disturbance
तन्तु	Fibers
घटक	Cells
पृष्ठवंश	Back-bone

६

प्रोत्साहन	Stimulus
परमाणु	Items
उत्तेजन	Impetus
गतिवाहक शक्ति	Motor power
चेतनावाहक नसें	Sensory nerves
गतिवाहक ,,	Motor nerves
सङ्कीर्ण	Complex, mixed
प्रणाली	System
केन्द्र	Cells, Centres of power
उच्चतम केन्द्र	Highest Centre
समानक्रम	Co-ordinate
प्रतिषेधक	Inhibitory
परिक्रम	Circuit
पुनरुक्ति	Repitition
कर्तृत्वशक्ति	Active power
ग्रहणशक्ति	Receptive power
दार्शनिक	Pertaining to one of the six Schools of Indian Philosophy
समान्तर	Coexistent
समुन्नति	Development
वृद्धि	Growth
निश्चेष्ट	Dorment, latent
विकास	Budding forth
विस्तृत	Expanded
आकस्मिक	Accidental
सम्बन्ध	Con-comitace
मनोविज्ञानकार	Psychologist
क्रमशः	In order
मतभेद	Divergence of opinion
तात्कालिक इन्द्रियज्ञान	Immediate Sense knowledge
कार्यपरता की स्थिति	Condition of activity
कल्पना	Idea, Conception, Imagination

आघात	Impression
घटक अवयव	Constituent parts
तत्वमय	Elementary
उपकरण	Aids and conditions
मानसिक शक्ति	Mental power
एकरूपता	Summation
ऐक्यमय	Unified
ऐन्द्रिय बोध	Sense perception
अन्तर्दृष्टि अन्तरावलोकन	Introspection
स्पर्शज्ञान	Sensation of touch
इन्द्रिय	Organ of Sense
वर्गीकरण	Classification
स्थायी	Eternal
ऐंद्रियान्तर्बोध	Sense-consciousness
आकाशतत्व	Ether
साधारण इन्द्रियां	General Senses
विशेषेन्द्रियां	Special Senses
भिन्नज्ञता	Discrimination
विकास	Manifestation
त्वगिन्द्रिय	Sense of touch
विलक्षण	Wonderful
वेबरीय नियम	Weber's Law
गणितश्रेढ़ी	Arithmetical Progression
भूमितिश्रेढ़ी	Geometrical Progression
रसनेन्द्रिय	Sense of Touch
घ्राणेन्द्रिय	Sense of Smell
कर्णेन्द्रिय	Sense of hearing
ध्वनिबोधवाहक	Auditory
प्रकाशगम्य	Penetrable by rays of light.
पारदर्शक	Transparent
परावर्तन	Reflection
निरीक्षण	Observation

नतोदरवक्र	Convexo-Concave
केन्द्रस्थ कर देना	Centralise
स्नायुज इन्द्रिय-ज्ञान	Muscular sense
शरीरेन्द्रिय	Bodily Sense
मानसिक इन्द्रियां	Mental Senses
बाह्येन्द्रियां	External Senses
अन्तरेन्द्रियां	Internal Senses
अचेतन इन्द्रियज्ञान परकीय इन्द्रियज्ञान	Passive Sense
सचेतन इंद्रियज्ञान आतत्मीय ,,	Active Sense
मनोजीवन	Mental life
स्थित्यंतर	Change in the condition or state
प्रकृति निसर्ग	Nature
प्रत्यक्षज्ञान्	Direct knowledge
तात्कालिक ज्ञान	Immediate knowledge
पर्यायपर	Mediate or indirect knowledge
निर्धारणा	Judgement
युक्तिवाद	Reasoning, Argumentation
एकरूपीकरण	Assimilation
अनुमान	Inference
प्रत्याहार	Abstraction
प्रदर्शन	Representation
विप्रदर्शन	Presentation
परिज्ञानगम्य	Perceptible
असम्मिलित	Un-assimilated
प्रदर्शक कल्पना	Representative imagnation
विप्रदर्शक ,,	Presentative imagination
विधायक ,,	Constructive imagination
अनुस्मृति	Recollection

स्पष्टता	Vividness
ध्यान	Attention
प्रतिमा	Image, Impression
मनःक्षोभ	Emotion or Passion
चिंतनिका	Mental assimilation or digression
ध्यान बट जाना	Division of Attension
मस्तिष्कगत परमाणु	Corpuscles in the brain
चेतनोत्पादक रस	Protoplasm
आगामी ध्यान	Expectant attention
स्मरणशक्ति	Memory
ग्राहक स्मरणशक्ति	Receptive memory
मेधाशक्ति	Retentive ,,
तात्कालिक स्मरणशक्ति	Ready ,,
समय सूचकता	Presence of mind
कल्पनासाहचर्य	Association of Ideas
साम्यतत्व	Law of Similarity
सामीप्यत्व	Law of Contiguity
कार्यकारणभाव	Law of Causation
अहंकार	Consciousness of self, Egotism
आत्मीयांतर्बोध	Self consciousness
ज्ञान	Intellection
ज्ञानक्षम	Intellective
मनोरागक्षम	Sensitive Subject to feelings
परमाणु	Items, molecules
व्यापार	Function, working
रक्तवाहिनी नसें	Arteries, Blood-vessels
विलीन	Inactive, Submerged

सुषुप्ति	Semi conscious state
सत्यघटना	Fact
कृत्रिम	Artificial
प्रतिमा	Image
स्वाभाविक प्रतिमा	Normal image
अस्वाभाविक प्रतिमा	Abnormal image
आभास	Delusion
वस्त्वाभास	Material delusion
पर्य्यालोचन	Recapitulation
जातिवाचक कल्पना	General notion
आदिकार्य	Fundamental function
मानसिक संक्षोभ	Mental disturbance
मत	A school of philosophical opinion
प्रज्ञा	Understanding
तार्किक, तर्कज्ञ	Logician
तर्कना	Reasoning
कल्पना	Conception
जातिकरण	Generalisation
व्यवस्थितता	Orderliness, perfection
संपूर्णता	Fulness
सत्तत्ववाद	Realism
नामिकवाद	Nominalism
भावनावाद	Conceptualism
सुख	Pleasure
दुःख	Pain
स्वरक्षा का नियम	Law of conservation
भाव	Sentiment
दृश्य	Scene
प्रज्ञान	Conation
नैतिक स्वतंत्र्या	Moral Freedom
नैतिक शक्ति	Moral Faculty
सदसद्विवेक बुद्धि	Conscienc
सदाचार	Moral Condu

प्राकृतिक बुद्धि, पशुबुद्धि	Instinct	प्रजोत्पादन	Propogation of race
स्वसंरक्षण	Self Preservation	प्रजारक्षण	Breeding of young ones

———o———

N. B. The other words given within brackets are taken from the glossary of words in 'न्यायशास्त्र' Logic in Marathi by Professor Damle of Ujjain College for comparative knowledge.

(७) पृथ्वीराजरासो का ३, ४, ५, ६, और ७ समय एक साथ छपकर प्रकाशित होगया। इस खंड का मूल्य ॥।≤) रक्खा गया है।

(८) श्रीमान राजा साहब बहादुर भिनगा ने अवध के ज़िलों में नागरी के विशेष प्रचारार्थ सभा को १००) रु० देने को लिखा है। सभा श्रीमान को इस सहायता के लिये विशेष धन्यवाद देती है।

(९) साधारण सभा के मासिक अधिवेशन २९ अगस्त, २६ सितम्बर और ३१ अक्तूबर को हुए। इन में सब मिलाकर ८२ नवीन सभासद चुने गए और भिन्न भिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए।

(१०) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की पहिली वार्षिक रिपोर्ट गवर्मेण्ट ने छाप कर प्रकाशित करदी है। उसका मूल्य ५॥) रु० रक्खा गया है।

नवीन अधिकार प्राप्त सभासद।

९ फर्वरी १९०३—(१) बाबू विश्वम्भरनाथ बैंकर, शाहजहांपुर।

२५ जुलाई १९०३ (१) बाबू केदारनाथ बी० ए० ज़ि० जबलपुर (२) बाबू माधोराम, मिर्ज़ापुर (३) बाबू मेवाराम बी० ए०, ज़ि० हर्दोई (४) बाबू मोहनलाल वकील ज़ि० हर्दोई (५) बाबू जगतनारायणलाल, बलिया (६) पण्डित देवीचरण मिश्र, हर्दोई।

२९ अगस्त १९०३—(१) बाबू राजाराम गुप्त, काशी (२) बाबू जंगबहादुरसिंह, काशी (३) पण्डित रामचन्द्र नायक कालिया, काशी (४) बाबू शिव प्रसाद खत्री, काशी (५) बाबू बद्रीप्रसाद खत्री, काशी (६) पण्डित लालबिहारी मिश्र, काशी (७) बाबू सीताराम शरण भगवानप्रसाद, अयोध्या (८) मुंशी सखावत हुसैन बी० ए०, सहारनपुर (९) बाबू अमरचन्द ज़िमींदार, पटना (१०) कुंअर गजराजसिंह वर्म्मा, इटावा।

२६ सितम्बर १९०३—(१) बाबू ठाकुरदास अगरवाला, काशी (२) बाबू मुक्ताप्रसाद वर्म्मा बी० ए० नैनीताल (३) बाबू रघुनन्दनप्रसाद, बेलहर (४) पण्डित दुर्गाप्रसाद वाजपेयी, दमोह (५) बाबू परशुराम सिंह, हर्दोई (६) पण्डित शिवनारायण तिवारी, गोरखपुर (७) पण्डित बनारसी लाल चौबे, हर्दोई (८) प्रोफेसर टी० के० गज्जर, बम्बई।

३१ अक्तूबर १९०३–(१) लाला खुशीराम एम० ए०, लाहोर (२) प्रोफेसर मुन्नालाल, ग्वालियर (३) पण्डित प्यारेलाल चौबे एम० ए०, आगरा (४) बाबू यादवकृष्ण बी० ए०, बी० एल०, बिलासपुर (६) बाबू कन्हैयालाल बी० ए० नागपुर (६) पण्डित प्यारेलाल मिश्र, नागपुर (७) कुंअर हरिपालसिंह क्षत्रिय, ज़ि० हरदोई (८) बाबू जयरामसिंह, सागर (९) पं० विनायक राव, जबलपुर।

विशेष सूचना।

सब हिन्दी प्रेमियों को मालूम हो कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने अदालतों की कारंवाई के सुबीते के लिये सब क़िस्म के फ़ार्म सरकारी (वाटरमार्क) काग़ज पर छपवा दिए हैं इस लिये जो महाशय खरीदना चाहें सभा के दफ़्तर से मंगा सकते हैं।

सरकारी कागज पर छपे हुए फार्म इकट्ठा लेने वालों के लिये २।) सैकड़ा और फुटकर फी काग़ज़)॥ दाम रक्खा गया है।

सादा फार्म बादामी कागज ॥)। सैंकड़े मिलेगा।

फ़ार्म की सूची।

(१) वकालत नामा (२) इजरायडिगरी माल।

(३) इजरायडिगरी दः ५९ (४) बक़ाया लगान। मै मुसन्ना

(५) इजरायडिगरी दीवानी।

माधो प्रसाद,
सुपरिण्टेण्डेण्ट, नागरीप्रचार,
नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक-श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल । बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल । निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सब को मूल ॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार । सब देशन सों लै करहु, भाषा माँहि प्रचार ॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न । राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ॥

हरिश्चन्द्र ।

भाग ८ } मार्च सन् १९०४ ई० { संख्या ३.

विषय तथा लेखक ।

(काशी नागरीप्रचारीणी सभा द्वारा प्रकाशित)

वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस

मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित ।

Issued 28th March, 1904.

सभा सम्बन्धी समाचार।

(१) सभा के साधारण मासिक अधिवेशन ता० २८ नवम्बर, २६ दिसम्बर और ३० जनवरी को हुए थे। इनमें सब मिलाकर ६१ महाशय नवीन सभासद चुने गए और निम्नलिखित विषयों पर व्याख्यान हुए। (१) किंडरगार्टन की शिक्षा (२) किसी देश के साहित्य की उन्नति कैसे हो सकती है।

(२) सभाका गृहप्रवेशोत्सव और उस सम्बन्ध में सभा के दो अधिवेशन गत १८, १९ और २० फर्वरी को हुए। इनका कार्य विवरण अलग छाप कर बांटा गया है।

(३) इस वर्ष ९ महाशयों के नाम दो वर्ष का पूरा चन्दा न देने के कारण सूच "ख" में लिखे गए हैं।

(४) लिमड़ी, काठियावाड़ के रा॰ रा॰ गणेश जेठा भाई ने अपनी बनाई हुई "कौतुक माला और बोध वचनिका" नाम की पुस्तक इस सभा के सभासदों को १) रु० में देनी स्वीकार की है, जिन्हें लेना हो लिखकर मंगवा लें।

(५) सभा ने पुस्तकालय के लिये एक नया नियम यह बनाया है कि जो लोग बाहर के, चाहे वे सभासद हों या नहीं, पुस्तकालय के सहायक हुआ चाहें उन्हें ५) रु० सभा के पास पेशगी जमा करना चाहिए। जब वे पुस्तकालय से सम्बन्ध छोड़ें तो यह रुपया उन्हें लौटा दिया जाय।

(६) वैज्ञानिक कोश के शेष भाग को दुहरा कर ठीक करने के लिये २७ दिसम्बर से ८ जनवरी तक उस कमिटी के अधिवेशन काशी में हुए। इसमें निम्नलिखित महाशय सम्मिलित थे। प्रोफेसर टी॰ के॰ गज्जर, प्रोफेसर एन॰ बी॰ रानाडे, लाला खुशीराम, लाला भगवती सहाय, म॰ म॰ पण्डित सुधाकर द्विवेदी, बाबू अभयचरन सान्याल, बाबू दुर्गाप्रसाद, पण्डित रामावतार पांडे, बाबू बनमाली

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आय व्यय का हिसाब

नवम्बर १९०३ से फ़रवरी १९०४ तक

आय ।	तायदाद ।		
बचत	६४	१	६
पुस्तकों की बिक्री	४७८	१०	३
बङ्क बङ्गाल से मंगाया	१०७५	१५	७
सेविङ्ग बङ्क से मंगाया	४६०	–	–
सभासदों का चन्दा	२५५	६	–
पृथ्वीराजरासो की बिक्री	१३७	३	३
उधार लिया	४५००	–	–
पुस्तकालय का चन्दा	५६	१०	–
डाकव्यय का फिरता	२३	७	–
स्थायी कोश	८६६	४	–
नागरी प्रचार	७०१	२	
विशेष चन्दा	१०५	–	–
	८७५६	१४	७

मंत्री के पास ४८॥≡)॥।
बङ्क बङ्गाल ६=)२
सेविङ्गबङ्क बङ्कबङ्गाल १०)
सेविङ्ग बङ्क १३१०॥–)॥
सेविङ्गबङ्क स्थायी कोश ५)
पण्डित छन्नूलाल १८४०॥)
३२१०॥≡)५
देना ५७५०)

व्यय	तायदाद ।		
फुटकर व्यय	५६	१०	३
पृथ्वीराजरासो में व्यय ...	५६	११	६
पुस्तकालय	२६	१२	–
आफ़िस के कार्यकर्ताओं का वेतन	११५	४	३
हिन्दी पुस्तकों की खोज ...	१७६	७	३
सभाभवन	४६५३	८	९
नागरी प्रचार	६०	११	६
डाक व्यय	६६	६	६
पुस्तकों की बिक्री में व्यय ...	१८	१५	–
बङ्क बङ्गाल में भेजा	१०००	–	–
सेविङ्ग बङ्क में भेजा ..	१६६०	–	–
वैज्ञानिक कोश	१६६	१०	३
उधार चुकता किया	३००	–	–
छपाई	२३४	१५	३
अमानत का लौटाया	४०	–	–
व्याज अमानत का	८	१२	–
स्थायी कोश	–	५	–
	८७०८	२	१०
मंत्री के पास	४८	११	६
	८७५६	१४	७

स्थायीकोश के दाताओं की नामावली । (पूर्वप्रकाशितान्तर)

१ दिसम्बर १९०३ से ३० मार्च १९०४ तक ।

अलीगढ़

पण्डित रामगोपाल, अतरौली ... ... १)

काशी

बाबू बटुक प्रसाद खत्री ... ... ५०)
पण्डित छन्नूलाल वकील ... ... ३)
बाबू रघुबीर सिंह ... ... १५)
पण्डित रामनारायण मिश्र ... ... ५)
बाबू कन्हैयालाल ... ... २)
बाबू कालिका सिंह ... ... २)
बाबू यदुनाथ प्रसाद ... ... ६१)
पण्डित किशोरलाल गोस्वामी ... ... ७)
बाबू मोतीराम ओवरसीयर ... ... ५)

काशीपुर

बाबू जीराजमल ... ... २)

जहानाबाद

पण्डित उदित नारायण मिश्र ... ... १०)

दिल्ली

पण्डित दीनदयालु शर्म्मा ... ... १०१)

पूर्निया

राजा कमलानन्द सिंह, श्रीनगर ... ... ५००)

मथुरा

एक स्वामी ... ... १।।।)

मिर्ज़ापुर

एक बङ्ग महिला ... ... २)
पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय ... ... २)

मुरादाबाद

बाबू जगन्नाथ वैश्य ... ... १)

रायपुर

बाबू दुर्गाप्रसाद ... ... २)

रायबरैली

मुंशी लखपत राय वकील ... ... ५)

लखनऊ

पण्डित शिवबिहारीलाल ... ... १००)

प्राकृतिक बुद्धि पशुबुद्धि	Instinct	प्रयोजन	Propogation of race
स्वसंरक्षण	Self Preser-vation	प्रजारक्षण	Breeding of young ones

---

N. B, The other words given within brackets are taken from the glossary of words in 'न्यायशास्त्र' Logic in Marathi by Professor Damle of Ujjain College for comparative knowledge.

श्री रामचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र कौन था?

[पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या लिखित]

हम लोगो में प्रायः यह प्रश्न उठा करता है कि भगवान रामचन्द्र का बड़ा पुत्र कौन था? उक्त प्रश्न का उत्तर ही इस लेख का विषय है जो इसके सिरनामे को देखते ही पूरी तरह से मालूम हो जाता है। वास्तव में भारतवर्ष के सूर्यवंशी इतिहास में यह एक उलझन में डालने वाली बात है क्योंकि हिन्दू-काल-गणना के अनुसार यह बात प्रायः ८६९००० (आठ लाख उनहत्तर हज़ार) वर्ष पहिले की है और आज के यूरोपियन अनुसन्धान से भी यह बात २५०० (ढाई हज़ार) वर्ष से कम पुरानी सिद्ध नहीं होती। यद्यपि इसे जांचने के लिये हमारे पास बहुत से उपाय हैं पर वे सब कल्पित क़िस्से के ढंग के हैं जैसे कि रामायण, महाभारत, और पुराण इत्यादि। और दूसरी तरफ स्वतन्त्र होकर खोज करने के बदले राजपूत कवियों की कल्पित दन्तकथाओं के विश्वास का झुकाव हमें अपनी ओर खींचता है। पर ये लोग पुराणों को भी मानते हैं और देशी रजवाड़ों के मन्दिरों में सर्वदा ही इन पुराणों की कथा हुआ करती है और उक्त राजा लोग जब प्रातः काल देव अर्चण के लिये मन्दिरों में आते हैं तो प्रायः वहां इन पुराणों की कथा सुना करते हैं। अतएव हम केवल उन्हीं पुराणों ही के सहारे इस प्रश्न की मीमांसा करेंगे।

सभी लोग जानते हैं कि पुराणों में लिखा है कि भारतवर्ष में आदि काल से सूर्य और चन्द्र येही दो वंश राज्य करते थे। इन वंशों के जन्मदाता कश्यप के पुत्र सूर्य और समुद्र के पुत्र चन्द्रमा थे, जो सृष्टिकर्ता नारायण की पांचवी पीढ़ी में हुए थे। भारतवर्ष में इस समय सूर्यवंश की अगणित शाखाएं वर्तमान हैं। ऐसे शाखावंशों का प्रत्येक आदमी स्वतन्त्र राजा से लेकर साधारण किसान तक अपने को जगत को पालन करने वाले विष्णु भगवान के अव-

तार रामचन्द्र का वंशधर बतलाने में अपने को धन्य समझता है। इसके अतिरिक्त कवियों के इतिहास और करनल टाड साहब कृत "राजस्थान के इतिहास और पुरातत्व" के सहारे अब तक लोग यही मानते आए हैं कि रामचन्द्र के पुत्रों में लव सब से बड़ा और कुश सब से छोटा था और इन दोनों के प्रधान प्रधान वंशधर जिस प्रकार से इनके वशंज होने का अधिकार रखते हैं, उसे कर्नल टाड साहब ने यों वर्णन किया है,—

"सूर्यवंश की वर्तमान राजपूत जाति अपने को रामचन्द्र के दो लड़कों लव और कुश की सन्तति बतलाती है। और न मैं यही समझता हूं कि इन आधुनिक जातियों में से कोई भी अपने वंश की उत्पत्ति राम के दूसरे लड़के अथवा उनके भाई से बतलाती हो। सब से बड़े लड़के लव से मेवार के राणा अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। केवल यही नहीं वरन वीर गुर्जर जाति वाले भी अपने को उसी का वंशधर बतलाते हैं। ये लोग पहिले समय में आधुनिक अम्बर की सीमा के भीतर बड़े बलवान थे और इनके वंश का प्रतिनिधि इस समय गंगा के किनारे अनूप शहर में रहता है। कुश से नीरवर और अम्बर के कुशवाहा राजाओं और उनके अगणित शाखावंशियों का वंश चला। यद्यपि इस समय अम्बर धन बल में सब से बढ़ा चढ़ा है पर यह उसी नीरवर राजवंश का वंशधर है जो एक हज़ार वर्ष पहिले स्थापित हुआ था और जिसका स्वामी, प्रसिद्ध राजा नल का वंशधर, इस समय अपने सब पुराने राज्यों में से केवल मात्र थोड़े से मामूली ज़िलों का राज्य भोग रहा है। मारवाड़ राजघराने वाले भी अपने को इसी शाखा का वंशधर बतलाते हैं। इस बिचार की जड़ वंश वेत्ताओं की भूल से अर्थात् कुशवंशियों को कन्नौज और कौशाम्बी के कौशिकों में गोल माल कर मिला देने से जमी है। सूर्यवंश के वंशवेत्ता भी इस बनावटी वंशधारण को नहीं मानते"।

यहां करनल टाड साहब के प्रमाणों का आधार खोजना परम आवश्यक है। उन्होंने स्वयम् ही कई जगह अपनी प्रसिद्ध पुस्तक राजस्थान में इसका खुलासा किया है, यथा—

"पश्चिम और मध्य भारत की फौजी जातियों के इतिहास की छानबीन करने की इच्छा होने पर यह अति आवश्यक जान पड़ता है कि उनके वंश की उत्पत्ति कहां से हुई इसकी खोज की जाय। इस उद्देश्य से मैंने राणा उदयपुर के पुस्तकालय में से केवल धर्म-ग्रन्थ पुराणों को लाकर पंडितों की एक सभा के सामने रक्खा जिसके सभापति ज्ञानचन्द्र नाम के एक विद्वान यती नियत हुए थे। इन्हीं ग्रन्थों से प्रतिष्ठित सूर्य और चन्द्र वंश की वंशावली और ऐतिहासिक तथा भूगोलिक वृत्तान्त संग्रह किए गए।"

(पहिला भाग २० पृष्ठ)

"राम और जरासन्ध की वंशावली का आधार भागवत और रामायण, तथा पांडवों की वंशावली का राजतरंगिणी और राजावली है"

(पहिला भाग ४३ पृष्ठ)

इस प्रकार से पहिले इन सब बातों को वर्णन करके अब हम करनल टाड के प्रामाणिक ग्रन्थ और कवीश्वरों के लिखित और कथित इतिहास की सत्यता की परीक्षा करना आरम्भ करते हैं, क्योंकि यही आज कल सर्वसाधारण के विश्वास के मूल हैं। इस-लिये हम इसे इस विषय के अन्य पुराणों और संस्कृत तथा भाषा के साहित्य ग्रन्थों से संग्रह कर सम्पादित करेंगे, क्योंकि यह निश्चय करना आवश्यक है कि वास्तव में लव राम का सब से बड़ा लड़का था या नहीं। यहां सब से बड़े से तात्पर्य संस्कृत के "ज्येष्ठ" शब्द से है जिसका भावार्थ "जन्म और गुण दोनों में प्रथम" होने का है, अर्थात् जिन गुणों के कारण लड़का स्वतंत्र राज का उत्तराधिकारी होने लायक हो। इस बारे में जिन जिन ग्रन्थों से पता लगता है वे नीचे लिखे अनुसार हैं।

(क) सब से पहिले मैं सब से बड़े संस्कृत के कवि और नाटककार, कालिदास के रघुवंश को लेकर यह दिखाता हूं कि रामचन्द्र के परलोक सिधारने पर, वंश प्रथा के अनुसार सब से पहिले जन्मग्रहण करने और गुणों में सब से श्रेष्ठ होने के कारण

राम के सब घरानेवालों ने कुश ही को ज्येष्ठ 'बड़ा' माना है। इस विषय में उस नामी और सर्व प्रिय 'रघुवंश' का उद्धृत अंश जो भारत भर के स्कूल और कालिजों में पढ़ाया जाता है, नीचे लिखा जाता है—

अथेतरे सप्तरघुप्रवीरा ज्येष्ठं पुरोजन्मतया गुणैश्च ।
चक्रुः कुशं रत्नविशेषभाजं सौभ्रात्रमेषां हि कुलानुसारि ॥

रघुवंशे सर्ग १६ । १ ॥

(ख) रामचन्द्र और उनके सन्तानों के सच्चे इतिहास के बारे में कट्टर हिन्दू लोग भी संस्कृत की वाल्मीकि रामायण को सब से बड़ा प्रमाण मानते हैं। इस ग्रन्थ का नीचे लिखा हुआ वाक्य भी इसी बात को (अर्थात् कुश के बड़े होने को) सिद्ध करता है। पुरोजात, सब से पहिले जन्म ग्रहण करने के कारण राम का ज्येष्ठ पुत्र कुश ही था। इसीलिये ऋषि वाल्मीकि ने इन यमज (जोड़े) भाइयों को "कुशलवौ" कहा है और इसी के अनुसार पुराण-कर्ता तथा संस्कृत और भाषा के अन्य ग्रन्थकर्ताओं ने भी अपनी पुस्तकों में साधारण रीति से इस वाक्य को ज्यों का त्यों व्यवहार किया है। यथा—

कुशमुष्टिमुपादाय लवं चैव तु स द्विजः ।
वाल्मीकिः प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशनीम् ॥
यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः ।
निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥
यश्चावरो भवत्ताभ्यां लवेन सुसमाहितः ।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च सनामतः ॥
एवं कुशलवौ नाम्ना तावुभौ यमजातकौ ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यतः ॥

(वाल्मीकि रामायण उत्तर का० ७ सं० ६६ । ६-९ ॥)

(ग) बम्बई के निर्णयसागर छापेखाने में पण्डित हरिप्रसाद भगीरथ जी द्वारा सम्पादित होकर, पण्डित रामश्याम की

हिन्दी तत्वदीपिका टीका सहित एक तुलसीकृत भाषा रामायण छपी है जिस में एक लवकुश काण्ड भी है। इसका एक वचन नीचे उद्धृत किया जाता है जिससे साफ सिद्ध होता है कि कुश ही राम का बड़ा पुत्र था।

मुष्टिक एक वज्रसम मारी।
विकलशेष मन मानेउ हारी ॥ ३ ॥
सुमिरि कोशलाधीश खरारी।
मारेउ बाण विकल लव डारी ॥ ४ ॥
सुमिरि सीय मुनिचरण सुहाये।
गत मूर्छा कुश आतुर आये ॥ ५ ॥
बिकल बिलोकि बंधु लघु जानी।
चला वीर मन बहुत गलानी ॥ ६ ॥
पिता वंस नहिं जानिय आजू।
कुश लव नाम सुनहु रघुराजू ॥ ५ ॥
सुनी कथा राखेउ उर माहीं।
बाल बिलोकि बधब भल नाहीं ॥ ६ ॥

(घ) नीचे विख्यात नाटककारभवभूति के "उत्तररामचरित्र" का एक बचन उद्धृत किया जाता के जिसमें कुश ही ज्येष्ठ पुत्र वर्णन किया गया।

कौश-जाद। भादावि दे अत्थि। (जात! भ्रातापि तेऽस्ति)

लवः-अस्त्यार्य्यः कुशो नाम।

कौश-जेट्ठोत्ति भणिदं होदि। (ज्येष्ठ इति भणितं भवति)

लवः-एवमेतत् प्रसवक्रमेण स किल ज्यायान् इति।

जन-किं मयजावायुष्मन्तौ।

लवः-अथ किम् ।

जन-कथय कथाप्रबन्धस्य कीदृशः पर्य्यन्तः ।

लवः अलीक-पौर-प्रवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवयजनसम्भवां सीतादेवीमासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये परित्यज्य लक्ष्मणः प्रतिनिवृत्त इति ।

उत्तररामचरितम् चतुर्थोऽङ्कः ॥

(ङ) नीचे कई एक पुराणों के वचनों का प्रमाण दिया जाता है जिनमें कुश लव पद उसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है जिस अर्थ में ऋषि वाल्मीकि ने हमारे "ख" अङ्कित पंक्ति में व्यवहार किया है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट विदित है कि रामाश्वमेध और मत्स्य तथा भागवत पुराण कर्ताओं ने इस कथा भाग के लिये प्रसिद्ध वाल्मीकि ही का सहारा लिया है तथा औरों ने भी, यद्यपि उन्होंने कोई ऐसा शब्द व्यवहार नहीं किया जिससे ठीक ठीक ऋषि वाल्मीकि का नाम मालूम हो परन्तु मुझे विश्वास है कि इन्हीं ऋषि का अनुसरण किया है—

(१) मत्स्यपुराण ।

वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्द्धनौ ॥

अध्याय १२ । ५१ ॥

(२) अग्निपुराण

रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्द्धनौ ।
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥

अध्याय २७३ । ३६ ॥

(३) लिङ्गपुराण ।

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यं चकार सः ।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥

लवश्च सुमहाभागः सत्ववानभवत्सुधीः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥

अध्याय ६६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

(४) भागवत्पुराण ।

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रियां मुनिः ॥

स्कं० ९ ॥ अ० ॥ ११ ॥ ११ ॥

(५) कूर्मपुराण ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्वार्थवित् सुधीः ॥
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत् ।
नलश्च निषधस्यासीन्नभास्तस्मादजायत ॥

अध्याय २१ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

(६) हरिवंश पुराण ।

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥

अध्याय ॥ १५ ॥ २७ ॥

(७) शिवपुराण ।

रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मारामो महायशाः ।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः ॥
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
निषधस्य नलः पुत्रो नभाः पुत्रो नलस्य तु ॥

अध्याय ॥ ६१ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

(८) रामाश्वमेध ।

काले साऽसूत पुत्रौ द्वौ मनोहरवपुर्धरौ ।
रामचन्द्रप्रतिनिधी ह्यश्विनाविव जानकी ॥
तच्छ्रुत्वा तु मुनिर्हृष्टो जानक्याः पुत्रसंभवम् ।
चकार जातकर्मादि-संस्कारान्मन्त्रवित्तमः ॥
कुशैर्लवैश्च वाल्मीकिर्मुनिः कर्माणि चाचरत् ।
तन्नाम्ना पुत्रयोराख्या कुशो लव इति स्फुटा ॥

अध्या० ६६ । ७३ ७५ ॥

(९) विष्णुपुराण ।

रामस्य तु कुशलवौ पुत्रौ लक्ष्मणस्यांगदचन्द्रकेतू
तक्षपुष्करौ भरतस्य सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नस्य ।
कुशस्याप्यतिथिरतिथेरपि निषधः पुत्रोऽभवत् ।
निषधस्यापि नलस्तस्यापि नभोनभसः ।
पुंडरीकस्तत्तनयः क्षेमधन्वा तस्य च देवानीकः ।

अंश ४ अ० ॥ ४७ ॥

(च) उदयपुर राज्य के अन्तर्गत राजनगर और कांकरौली के बीच में राजसमुद्र झील पर राज प्रशस्ति नाम का एक बड़ा लम्बा चौड़ा शिलालेख है जिस पर माघ बदी अमावास्या संवत १७३२ खुदा हुआ है और जो प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह की आज्ञा से स्थापित हुआ था । इस शिलालेख से भी मेरे कथन की पुष्टि होती है और ऊपर जो जो प्रमाण वर्णन किए गए हैं उन सभों से भी यह पूरा पूरा मिलता है । यहां पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि इस शिलालेख में उदयपुर के राणा की उत्पत्ति कुश से लिखी है, लव से नहीं जैसा कि अब तक लोगों का विश्वास है । नीचे अनुवाद के सहित इसका एक वचन उद्धृत किया जाता है-

मूल ।

सुमित्रायां लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्चेति रामतः ।
श्रीसीतायां कुशो जातो लवश्चेति कुशादभूत् ॥ १८॥
कुमुद्वत्यामतिथिको निषधोऽस्य ततो नलः ।
नभसः पुण्डरीकोऽस्य क्षेमधन्वा ततोऽभवत् ॥ १९ ॥

अनुवाद ।

१८. सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न, और राम को सीता से कुश और लव उत्पन्न हुए ।

१९. कुश को कुमुद्वता से अतिथिक उत्पन्न हुआ, उसको निषध; उसको पुण्डरीक; उसको क्षेमधन्वा ।

(छ) मैंने अपने भर सक लव से मेवार वंश की उत्पत्ति का पता लगाने के लिये बहुत कुछ कोशिश की, परन्तु अब तक मेरा परिश्रम सफल न हुआ । अब तक जितने प्रामाणिक लेख मैंने जांचे सब में कुश ही से वंशावली पाई । इसके सिवाय भाषा में "तवारीख तोहफ़ए राजस्थान" नामक राजपुताने का एक इतिहास है जिसको उदयपुर राज्य के दर्बारी कविराज श्यामल दास जी की सहायता से मौलबी मुहम्मद अब्दुल्ला साहब ने लिखा है और जो वर्तमान महाराणा साहब की आज्ञा से उदयपुर राज्य के खास छापाखाने में छपा है । इस पुस्तक में भी यह बात स्वीकार की गई है कि किसी पुराण में भी लव की वंशावली का पता नहीं लगता । इसकी पंक्ति नीचे उद्धृत की जाती है-

"मेवाड़ का खान्दान सूरजबंशी राजा रामचन्द्र के नस्ल में बड़ी शाख में गिना जाता है, राजा रामचन्द्र के बेटे कुश के सिवा लव की औलाद भागवत वगैरह किताबों में कहीं नहीं पाई जाती, महाभारत में भी सैामित्र को कुश की नस्ल में लिखा है, जिसकी औलाद तमाम सूरजबंशी राजा माने जाते हैं; अगर कुश का कोई बेटा लव के मुतबन्ना माना जावे, तो इसके लिये कोई सूबूत नहीं मिलता है ।"

(पृष्ठ ११)

"अवध के राजा रामचन्द्र का हाल, जिसको अव्वल सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु से सत्तावन पुश्त में गिनते हैं, किताब रामायण वगैरह से सबने लिखा है। उनके बड़े बेटे लव का पंजाब में जाकर लाहौर आबाद करना, जिसको पहले 'लव कोट' कहते थे, अक्सर लोगों ने बयान किया है लेकिन लव की कोई औलाद कहीं साबित नहीं होती, जिसका ज़िक्र पहिले किया गया है, इस सबब से राजा कनकसेन यानी बल्लभी वंश को कुश की नस्ल में समझना चाहिए, जिसको नावाक़िफ़ी से दूसरे लोगों ने लव की औलाद में लिख दिया है।"

(ज) रामचन्द्र की वंशावली के लिये कर्नल टाड साहब ने भागवत और अग्निपुराण को प्रमाण माना है, पर ये दोनों पुराण उनकी फ़हरिस्त का पुष्टि नहीं करते, क्योंकि उन्होंने लव से वंशावली मानी है और उनके प्रामाणिक माने हुए ग्रन्थों में कुश से वंश का चलाना लिखा है। नीचे इन प्रमाणिक ग्रन्थों का वचन उद्धृत किया जाता है—

(१) भागवत्पुराण।

श्री शुकउवाच॥

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभाः।
पुंडरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वा ऽभवत्ततः॥ १॥
देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रो ऽथ तत्सुतः।
ततो बलस्थलस्तस्मात् वज्रनाभोऽर्कसंभवः॥ २॥
सुगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः।
ततो हिरण्यनाभोऽभूत् योगाचार्यस्तु जैमिनेः॥३॥
शिष्यः कौशल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम्॥ ४॥
पुष्पो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत्।
सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्यमरुः सुतः॥ ५॥

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥
तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ।
सहस्वांस्तत्सुतस्तस्मात् विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥७॥
ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥
ततो वृहद्वलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ।
एतेहीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥ ८ ॥
वृहद्वलस्य भविता पुत्रो नाम वृहद्रणः ।
उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्स वृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥
सहदेवस्ततो वीरो वृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥ १० ॥
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीको ऽथतत्सुतः ।
भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥
तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ।
वृहद्राजस्तु तस्यापि वर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥ १२ ॥
रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ।
तस्माच्छाक्यो ऽथशुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः॥१३॥
ततः प्रसेनजित्तस्मात् शूद्रको भविता ततः ।
रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥ १४ ॥
सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते वार्हद्वलान्वयाः ।
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ॥
यतस्तम्प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥

इति श्री भागवते म० नवमस्कंधे श्री रामचरित वर्णनं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

(२) अग्निपुराण ।

रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्द्धनौ ।
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ ३६ ॥

निषधात् तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात् ।
नभसः पुंडरीको ऽभूत् सुधन्वा च ततो ऽभवत ॥३७॥
सुधन्वनो देवानीको ऽह्यहीनाश्वश्च तत्सुतः ।
अहीनाश्वात् सहस्राश्वश्चन्द्रावलोकस्ततोऽभवत् ॥३८॥
चन्द्रावलोकतस्तारापीडोऽस्माच्चन्द्रपर्व्वतः ।
चन्द्रगिरेर्भाण्डरथः श्रुतायुस्तस्य चात्मजः ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः सूर्यवंशधराः स्मृताः ॥ ३९ ॥

अध्याय २७३ ।

सर विलियम जोन्स और मिस्टर जोन वेन्टले साहब के सूर्य वंश की फहरिस्त, मेरे इस लेख में उद्धृत किए हुए प्रमाणों से बिलकुल मिलती है, क्योंकि इन्होंने कर्नल टाड और राजपुताने के अन्य कवीश्वरों की नांई राम से सुमित्रा तक की वंशावली लव द्वारा नहीं, वरन् कुश से लिखी है । बड़े आश्चर्य की बात है कि इन्होंने बिना किसी प्रमाण के लव के सन्तानों के स्थान पर कुश के वंशधरों का नाम लिख दिया (एशियाटिक सोसायटी आफ़ बङ्गाल की खोज की पहिली और पांचवीं रिपोर्ट देखो)

इस समय की खोज से यह स्पष्ट है कि कर्नल टाड और कवीश्वरोक्त इतिहासों के लेखकों ने उन ग्रन्थों को जिनका उन्होंने हवाला दिया है, सावधानी से देखने और जांचने का कष्ट नहीं उठाया और केवल पण्डितों और देशी रजवाड़ो के कवीश्वरों की बातों पर विश्वास कर लिया । इसलिये इनके प्रामाणिक माने हुए ग्रन्थ भागवत और अग्निपुराण और अन्य ग्रन्थ सब इनके सिद्धान्तों और इन की स्थिर की हुई वंशावलियों को सहायता नहीं पहुंचाते ।

इसके अतिरिक्त इस लेख में मैंने जितने प्रमाणों का हवाला दिया, सबही सीधे या घूम फिर कर यही सिद्ध करते हैं कि कुश ही राम का बड़ा पुत्र था और इन प्रामाणिक ग्रन्थों में केवल कुश ही द्वारा रामचन्द्र से सुमित्रा तक की वंशावली बयान की गई है । भारतवर्ष में जितने संस्कृत और भाषा ग्रन्थ प्रचलित है उनमें से

किसी में भी लव के किसी सन्तान का वर्णन नहीं मिलता। इसलिये हम ठीक ठीक यह नहीं बतला सकते कि लव निस्सन्तान मर गया या उसका और उसके सन्तानों का क्या हुआ। यह स्पष्ट है कि कर्नल टाड और अन्य राजपूत कवीश्वरों ने अपनी फ़िहरिस्त में भूल से कुश के सन्तानो की जगह पर लव के सन्तनों का नाम लिख दिया है। कवीश्वरों के इतिहास के सिवाय सूर्यवंश की वंशावली में इस प्रकार का हेर फेर कर देने में इन लोगों के पास और कोई भी प्रमाण नहीं है।

इसके सिवाय यह भी लोगों ने केवल कर्नल टाड के आधार पर जो कि कवीश्वरों के इतिहास का रूपान्तर मात्र है भूल से यह मान रक्खा है कि लव ने लाहोर बसाया था और कनकसेन के सैाराष्ट्र जाने तक लव के वंशधर यहीं रहते थे। टाड साहब कहते हैं कि "राम के दो लड़के थे, लव और कुश। पहिले से राणावंशी अपनी उत्पति बतलाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि उसने लाहोर निर्माण करवाया था जिसका पुराना नाम लोहकोट है और वह शाखावंश जिससे मेवार के राजा उत्पन्न हुए हैं कनकसेन के द्वारिका जाने तक वहीं रहता था। (टाड साहब का राजस्थान, प्रथम भाग पृष्ट १९८)

वाल्मीकि रामायण के निम्न लिखित उद्धृत बचनों से प्रगट होता है कि राम ने अयोध्या छोड़ जाने के कारण अपने बड़े पुत्र कुश को विन्ध्यगिरि के पास दक्षिण कोशल नाम का एक नवीन स्थापित राज्य दिया था और लव को उत्तर कोशल अर्थात् सारावती या श्रावस्ती दी थी–

कोशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्।
अभिषिच्य महात्मानो वुभौ रामः कुशीलवौ॥१७॥
अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्यपुरेततः।
रथानान्तु सहस्राणि नागानामयुतानि च।
दशा चाश्व-सहस्राणि एकैकस्य धनं ददौ॥१८॥
बहुरतौ बहुधनौ हृष्टपुष्टजनाश्रयौ।

स्वे पुरे स्थापयामास, भ्रातरौ तौ कुशीलवौ ॥ १९ ॥
अभिषिच्य ततो वीरौ प्रस्थाप्य स्वपुरे तदा ।
दूतान् संप्रेषयामास शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ २० ॥
वाल्मीकि रामायण उत्तर का० ७ अध्या० १०७ ॥

लक्ष्मणस्य परित्यागं प्रतिज्ञां राघवस्य च ।
पुत्रयोरभिषेकं च पौरानुगमनं तथा ॥ ३ ॥
कुशस्य नगरी रम्या विन्ध्यपर्वत-रोधसि ।
कुशावतीति नाम्ना सा कृतारामेण धीमता ॥ ४ ॥
श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्यह ।
अयोध्यां निर्जनां कृत्वा राघवो भरतस्तथा ॥ ५ ॥
स्वर्गस्य गमनोद्योगं कृतवन्तौ महारथौ ।
एवं सर्वं निवेद्याशु शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ६ ॥
वाल्मीकि रामायण उत्तर० अध्याय १०८ ॥

आज कल की खोज के अनुसार श्रावस्ती या शरावती अवध प्रान्त के गोंडा ज़िले के अन्तर्गत साहेत माहेत का पुराना नाम है। इस के खण्डहर को जनरल कनिंगहम साहब ने पहिचाना। लासेन साहब ने इस की स्थिति अनुमान कर निश्चय की और इसे लव को दिए जाने के वाल्मीकि के कथन को नीचे लिखे अनुसार "अवध गज़ेटियर" में मिस्टर डबल्यू० सी० बेनेट सी० एस० ने प्रमाणित किया है—

"रामायण के पौराण कथित समय में रामचन्द्र के सम्राज्य के उत्तर प्रान्त अर्थात् उत्तर कौशल की राजधानी श्रावस्ती थी जो उस वीर के मरने पर सम्राज्य का बटवारा होते समय लव के हिस्से पड़ी।"

अन्त में मैं सोचता हूं कि मैं इस लेख के विषय का यथेष्ट तर्क वितर्क कर चुका और यदि अवकाश मिला तो इस के बाद फिर किसी अवसर पर इस वंश की वंशावली के बारे में लिखा पढ़ी करूंगा।

लखनऊ ज़िले ।
का
भूगोल * ।

[पण्डित रुक्मिनी नन्दन शर्म्मा लिखित]

शब्द भूगोल का अर्थ ।

१ भूगोल शास्त्र या भूपृष्ठविद्या उस विद्या को कहते हैं जिससे क्षितितल का भली भांति निरूपण होता है। यह विद्या एक स्थान से स्थानान्तर को परिभ्रमण करने से भली भांति सीखी जा सकती है। जो पुरुष पर्य्यटन करने में असमर्थ हैं वे पुस्तकों या आलेख्य पत्रों के ध्यानपूर्वक देखने से परिपूर्ण भूपृष्ठविद्या जान सकते हैं।

२ आलेख्यपत्र या देशालेख्य क्षितितल के भिन्न भिन्न खण्डों के प्रतिरूपों को कहते हैं जिनमें प्रत्येक देशों की मुख्य मुख्य आकृतियों के स्थान जैसे नदी, कासार, नगर और पुरी आदिक सावधानी से चिन्हित किए जाते हैं॥ इन आलेख्य पत्रों में एक स्थान से दूसरे स्थान का अन्तर सूचित करने के लिये एक अनुमित मापक यंत्र (Scale) परिग्रहण करना पड़ता है जैसे यदि आध कोस का अन्तर आलेख्यपत्र में सूचित करना हो तो प्रथम पत्र की इतनी अधिकता होनी असम्भव है कि आध कोस उससे सूचित किया जाय। पुनः यदि सम्भव भी हो तो वह देशालेख्य रक्खा ही कहां जायगा और दूसरे पर्य्यटन करना न छूटेगा अतः भूगोलविद्या प्रवीण पुरुषों ने आध कोस के वदले में कुछ थोड़ा दैर्घ्य जैसे १ इंच अनुमान कर लिया है और उसी के अनुसार आकार पत्र बनाते हैं (स्केल एक परिमाण है जिससे कि देशालेख्य निर्म्माण किये जाते हैं)॥

यह कहा जा चुका है कि आलेख्यपत्र पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों के प्रतिरूपों को सूचित करते हैं जिनमें कि प्रत्येक देशों की

* इस लेख के लेखक को मुंशी देवीप्रसाद ने एक मोहर पुरस्कार में दी थी—सम्पादक।

मुख्य मुख्य आकृतियों के स्थान जैसे नदी, पर्वत, झील और नगर आदि चिन्हित किए जाते हैं। परन्तु अब यह जानना चाहिए कि ये इस पर ये कैसे प्रगटित किए जाते हैं सो नीचे से विदित होगा॥

नदी स्वच्छ जल की बड़ी धारा को कहते हैं जो पृथ्वी पर से समुद्र या किसी झील की ओर जाती है। यह सर्प की आकृति के तुल्य होती है इसीसे आलेख्यपत्रों में यह एक उन्नतानत काली रेखा से प्रगटित की जाती है॥

झील जल के उस खण्ड को कहते हैं जो चारों ओर पृथ्वी से परिवेष्टित होता है। यह मान चित्रों में एक काली रेखा से घिरे हुए ईषद्वुरित रूप में दिखाई जाती है॥

पुरी उस आवास समुच्चय को कहते हैं जो गाँव से बड़ा होता है। आकार पत्रों में इसे एक छोटे विन्दु या वृत्त से सूचित करते हैं और उसी पर उसका नाम लिख देते हैं॥

गाँव में लगती हुई सब पृथ्वी के मानचित्र पटवारी के निकट रक्खे रहते हैं। इनसे प्रत्येक क्षेत्र वा गृह की सीमा विदित हो सकती है और गांव या क्षेत्र के नापने के समय बड़ी सुगमता पड़ती है। इन आलेख्य पत्रों में नाले आदि दो समानान्तर जाती हुई रेखाओं से दिखाए जाते हैं और कुँवें वा ताल एक एक छोटे वृत्त से प्रगटित किए जाते हैं॥ इनके बनाने के हेतु पटवारी पहिले पृथ्वी को नापते हैं तदनन्तर उसीके अनुकूल एक स्केल बनाकर तब मानचित्र खींचते हैं और इसी रीति से जो कोई जहां का देशालेख्य बनाना चाहता है वह यथार्थ में इसी रीति के अनुकूल निर्म्माण करता है॥

दिशा और उनके जानने की रीति।

एक स्थान से स्थानान्तर की ओर अन्त के सूचित करने को दिशा कहते हैं। ये दिशाएँ चार हैं-पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, और इनके बीच में एक एक और दिशा होती है। उसे कोन कहते हैं जैसे नैऋत्य वायव्य आग्नेय और ईशान। कौन कौन किन दिशाओं के बीच में होता है आगे के चक्र से स्पष्ट होगा।
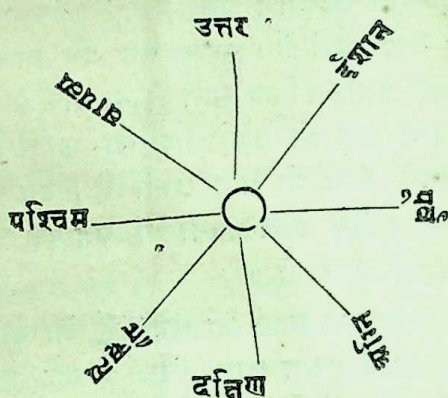
ये दिशाएं भिन्न भिन्न कालों में निम्नलिखित भिन्न भिन्न रीतियों से जानी जाती हैं-

(१) प्रातः काल सूर्य्याभिमुख खड़े होने से मनुष्य के मुख की ओर पूर्व, पीठ की ओर पश्चिम, दहिने हाथ की ओर दक्षिण और बांयें हाथ की ओर उत्तर होता है।

(२) आकार पत्रों में ऊपर की ओर उत्तर, नीचे की ओर दक्षिण, दहिने हाथ की ओर पूर्व और बांयें हाथ की ओर पश्चिम होता है।

(३) रात्रि में ध्रुवतारे से दिशा विदित होती है। यह नक्षत्र सदा उत्तर ही में रहता है और सप्तर्षियों में अन्तिम दो ऋषियों के बीच में जो रेखा हो सकती है उसे अपनी सीध में बढ़ाने से जो सब से अधिक प्रकाशित होता हुआ नक्षत्र उस की सीध में पड़ता है वही ध्रुवतारा है॥

(४) दिङ्निर्णय यंत्र से भी दिशा विदित होती है। यह घड़ी के समान का एक यंत्र है जिसकी सुई सदा उत्तर ही की ओर रहती है। (मान चित्र के समान इसमें भी ऊपर ही का भाग उत्तर माना जाता है)॥

(५) क्रोनोमिटर भी एक दिङ्निर्णय यंत्र है जो जहाज़ में लगा रहता है। इससे समुद्र में तैरते समय दिशा का बोध

होता है। कोई पोताधिपति इसें रखते हैं और कोई केवल दिङ्निर्णय यंत्र ही (कुतुबनुमा) से काम निकालते हैं॥

उपयुक्त परिभाषा।

१ कमिश्नरी या क़िस्मत, उस भूभाग को कहते हैं जिसमें कई ज़िले हों और उनके अधिकारी (साहब कमिश्नर) का न्यायालय हो जैसे लखनऊ या फैज़ाबाद॥

२ ज़िला, कमिश्नरी के उस बड़े भाग को कहते हैं जिसमें कई एक तहसीलें हों और एक बड़ा माल का अधिकारी जिसे कलक्टर या डिपटी कमिश्नर कहते हैं रहता हो। जैसे लखनऊ, फैज़ाबाद॥

३ तहसील ज़िले का वह बड़ा भाग है जिसमें कई एक परगने हों और वहाँ उस का स्वामी रहता हो जैसे लखनऊ, मलिहाबाद॥

४ थाना वह है जहाँ चोरी और मार पीट के अभियोग जाते हैं और उनके अनुसंधान के लिये एक थानेदार (जो कि थाने का अधिकारी होता है) रहता है॥

५ परगना उसे कहते हैं जिसमें बहुत से गाँव हों जैसे बिजनौर, काकोरी।

६ नगर उस जनाकीर्ण स्थान को कहते हैं जिसमें नगरी से अधिक मनुष्य बसते हों और भांति भांति के निवासस्थान और सब प्रकार की आवश्यक वस्तु तुरन्तही एकत्रित हो सकती हो जैसे लखनऊ, उनांव॥

७ नगरी (क़सबा) जो नगर से छोटा और गाँव से बड़ा हो जैसे महोना, नयाम॥

८ ग्राम या गाँव जो नगरी से छोटा हो जैसे काकोरी, पुरहिया॥

९ नदी उस जल की धारा को कहते हैं जो किसी पर्वत या झील से निकल कर पृथ्वी पर बहती हुई समुद्र या जल के किसी अन्य भाग में गिरती हो जैसे गोमती॥

१० नदी की शाखा उसे कहते हैं जो किसी बड़ी नदी से निकल कर समुद्र में अलग जाकर गिरती है॥

११ जिस स्थान से नदी निकलती है उसे उसका उद्गम और जहाँ गिरती है उसे उसका मुख कहते हैं। जिस स्थान में कोई अन्य नदी किसी नदी से जाकर मिलती है उसे उसका संगम और उनसे घिरे हुए बीच के देश को "द्वाब" कहते हैं॥

१२ नदी के मुख की ओर तैरने के समय दाहिने हाथ की ओर वाले तट को दक्षिण तट और बांये हाथ की ओर वाले को उत्तर तट कहते हैं॥

१३ झील जल के उस भाग को कहते हैं जो चारों ओर पृथ्वी से घिरा हो॥

१४ नाला वह है जो वर्षा का पानी बहने के लिये किसी नदी की ओर को या किसी स्थल में जल पहुँचाने को नदी की ओर से पृथ्वी में खोदा जाता है जैसे ग़ाज़िउद्दीन हैदर का नाला॥ नदी और नाले में अन्तर यह है कि नदी स्वाभाविक सोता है और नाला कृत्रिम पानी की धारा है (अर्थात् खोद कर किसी नदी या जल के अन्य भाग से लाया जाता है)॥

१५ तिहद्दा उस स्थान को कहते हैं जहाँ पर तीन सीमा एकत्रित होती हैं और वहाँ पर नाप की सुगमता के हेतु एक पत्थर गड़ा रहता है॥

लखनऊ का वर्णन॥

उपोद्घात—यदि आप लोग एक बार भारतवर्ष के आकार पत्र पर दृष्टि पात करें तो उसमें पंजाब देश के उत्तर पश्चिम में विद्यमान पश्चिमोत्तर देश के अन्तर्गत एक और भूभाग दृष्टि गोचर होगा। इस भूभाग का नाम अवध है। यह अवध पहिले राजराजेश्वर दशरथ की राजधानी था और इसी में प्रसिद्ध रावणकुलघालक गोद्विजप्रतिपालक श्री रामचन्द्र जी का जन्म हुआ था। उस समय में इस की प्रसिद्ध नगरी अयोध्या थी। तदनन्तर यह द्वापर युग में यदुवंशियों के हस्तगत हुआ परन्तु यह नहीं विदित होता कि उस समय में इसकी राजधानी क्या थी। इतना अवश्य सूचित होता है कि यह हस्तिनापुर, पूना, सितारा आदिक पाँच

मुख्य स्थानों में जो कि सम्पूर्ण राज्यानुशासन में प्रसिद्ध स्थल थे, कनौज़ के आधीन था। वही अवध अब कलिकाल में पहिले कनौजाधिपति तोमरवंशोद्भव राजा जयचन्द्र के आधीन रहा परन्तु जब जयचन्द्र ने कुटिलता से अपने पितृव्य पृथ्वीराज को (जो कि दिल्ली व अजमेर के अधीश्वर थे) राज्यभ्रष्ट करने के लिये मुहम्मद गोरी को आह्वान किया तब इस दुष्ट ने एक बार ११९१ में टिरौरी रणक्षेत्र में पृथ्वीराज से पराजित हो द्वितीय वार उस पर पुनः आक्रमण किया और ११९३ में थानेश्वर रणस्थल में पृथ्वीराज को पराजित करके पितृव्यघातक जयचन्द्र के ऊपर भी वह चला और ११९४ के संग्राम में उसे भली भाँति निर्बल करके आप सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का अधिपति हुआ और दिल्ली में उसने अपना नृपासन स्थापित किया। तब से औरङ्गज़ेब के पुत्र बहादुर शाह के राज्यानुशासन तक यह अवध दिल्लीपति ही के आधीन रहा परन्तु औरङ्गज़ेब के पुत्र पौत्रादिकों के निर्बल और विषयासक्त होने के कारण यह उनके अनुशासन से बहिर्गत हुआ। दिल्लीपति रफीउद्दौला के समय में इस भूभाग के सूबेदार सादत खां नियत हुए थे। जब रफ़ीउद्दौला की मृत्यु हुई तो बहादुरशाह के पौत्र (चतुर्थ पुत्र जात) मुहम्मदशाह दिल्लीपति हुए। इनके राज्यानुशासन काल में बहुत से विघ्न हुए। प्रथम तो कई सूबे स्वाधीन हो गए थे और दूसरे नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली आदि ने इन पर आक्रमण भी किया था। १५३७ में इन्हीं के राज्यानुशासन में अवध के सूबेदार सादत खाँ ने भी दिल्लीपति की आज्ञा का पालन करना छोड़ स्वाधीन हो अवध को अपने राज्या के सदृश स्थापित किया और लखनऊ को जहां वे रहते थे अपनी राज्यधानी बनाया॥ सादत खां की मृत्यु के अनन्तर इस नृपासन पर दस अन्य बादशाहों ने राज्य किया और सब एक से एक वीर प्रतापी हुए। ऐसा कोई भी नहीं हुआ कि जिसका कुछ न कुछ स्मारक चिन्ह लखनऊ में न हो। केवल अन्तिम बादशाह का कुछ चिन्ह न था सो उनकी सुखभोग बासना ही सब स्मारक चिन्हों से अधिक हुई कि जिसके कारण आज भी लखनऊ के नवाब अपने को बादशाही बंशसंभूत बता अपना पेट पालन करते हैं। इस

भाँति से १५३० ई० से १८५० ई० तक सादत खाँ से वाजिदअली शाह पर्य्यन्त ११ बादशाहों के समय में यह लखनऊ अवध भूभाग की राजधानी रहा और तदनन्तर १८५७ से अंग्रेजों के हस्तगत होने पर भी उसी पदवी पर आरूढ़ है। यह राजधानी ही होने के सिवाय क़िस्मत, ज़िले, तहसील, परगने और एक नगर के नाम से भी प्रसिद्ध है। ऐसे भाग्यशाली स्थान का और कुछ वर्णन करने के प्रथम इसकी उत्पत्ति लिखी जाती है कि जिसके पढने से विदित होगा कि पहिले यह कितना बड़ा था और अब कितना बड़ा है और दिन प्रति दिन इसकी क्या दशा होती जाती है। ऐसी अवस्था में इसे केवल भाग्यशालीही नहीं किन्तु इससे भी अधिक जो कुछ कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। परंपरा से इसकी यह कथा सुनने में आती है कि यहां के पहिले के निवासी ब्राह्मण तथा कायस्थ थे जो कि लक्ष्मण टीला या लक्ष्मण पर्वत (जैसा सुनने में आता है) के निकट रहते थे॥ *

अयोध्याधिपति श्री रामचन्द्र जी के भाई लक्ष्मण को घाघरा पर्य्यन्त विपुल भूभाग जागीर के सदृश दिया गया था। उन्होंने इसमें अपने नाम का एक ग्राम स्थापित किया जोकि इसका मूल समझा जाता है। कदाचित् वह उस स्थान की विशुद्धि से उसी में विलीन भी हो गया था क्योंकि गिरिशिखर पर एक छिद्र था जिस में हिन्दू जन जल फूल आदि अर्चन पदार्थ प्रक्षेपण करते थे क्योंकि उनका पूर्ण विश्वास था कि उनकी वह अर्चना उस छिद्र द्वारा शेषनाग के फण पर्य्यन्त पहूंचती है और उसे वे ग्रहण करते हैं। इसी स्थान पर कट्टर राजराजेश्वर औरंगजेब ने एक मसजिद निर्माण करवाई। लक्ष्मण जी की स्मृति में लक्ष्मण पुर ग्राम बसा॥ उनके अनन्तर लक्ष्मणपुर में शेख लोग आए जो शेखज़ादे कहलाते थे। इन्होंने अपनी बढ़ती में एक दुर्ग बनवाया जो कि आधुनिक मच्छी भवन के स्थान पर था और लिखना नामक अहीर का बनाया हुआ था। जब लिखना मरा तो शेख लोगों ने उसकी स्मृति के हेतु इस दुर्ग का नाम किला लिखना

* यह स्थान अब आधुनिक मच्छी भवन के अन्तर्गत एक ऊंची पृथ्वी है॥

रक्खा और ज्यों ज्यों बस्ती अधिक होती गई त्यों त्यों वे उसी के चारो ओर रहने लगे ॥ इस भांति से उसके चारो ओर एक छोटा मोटा पुरवा बस गया जोकि लक्ष्मणपुर और लिखना दोनों नामों का संक्षिप्त होकर लखनऊ कहा जाने लगा । यह नाम कब से हुआ इसकी ठीक ठीक तिथि मिति देना असम्भव है परन्तु यह अवश्य जानना चाहिए कि यह हुमायूं पुत्र अकबर के राज्य के आगे से चला आता है ॥

लखनउ किस्मत—सर जान शोर के चले जाने के अनन्तर १७९८ ई० में जब मार्क्वीस वेलसली आए तो इन्हों ने वारन हेस्टिंग की दर्शनी कृत साहाय्यकारिणी रीति (Subsidiary system) को पुनः प्रचलित किया । इस रीति का मूल यह था कि जो कोई किसी संधिपत्र के द्वारा इस पद्धति को अङ्गीकार करेगा उसे अंग्रेज़ी राज्य की भारतवर्ष में प्रधानतम शक्ति के आधीन रहना पड़ेगा और बदले में अपनी रक्षा के हेतु सरकार से प्रत्यय ले लेना होगा । बिना सरकार की आज्ञा उसे किसी से संधि तथा विग्रह न करना होगा और अपने व्यय से अपने राज्य में एक ऐसी सेना प्रस्तुत रखनी पड़ेगी जो कि आवश्यकता के समय सरकार को उपकारकारिणी हो ॥ इसी पद्धति के नियमों के अनुकूल वारन हेस्टिंगस ने अवध की पति-हीन बेगमों पर वाराणसीश चेतसिंह को सहायता देने का अभियोग लगाकर अवध को अपने करतलगत किया था † ॥ तदनन्तर १८०१

† १७७५ ई० में अंग्रेज़ों ने अवध के नवाब से बनारस मांगा परन्तु उसने उन्हें न देकर एक हिन्दू ज़िमीदार चेतसिंह को सरकार के आधीन होकर २२५०००० रु० वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा पर दे दिया ॥ १७८० ई० में जब अंग्रेज़ों ने मुद्राभाव से इस कर को अधिक करना चाहा तो चेतसिंह ने देने से इंकार किया । इन्होंने उसे पकड़ने की इच्छा से उसपर चढ़ाई की । वह तो ग्वालियर को भाग गया परन्तु इनके हाथ बहुत द्रव्य लगा ॥

अवध के नवाब की मृत्यु के अनन्तर उनकी बेगमों के पास बहुत रुपया था जिसे अंग्रेज़ों ने लेना चाहा परन्तु उन्होंने देने से इंकार किया तब इन्होंने रिक्तहर नवाब का पक्ष ले बेगमों से अंशहर नवाब के द्वारा ७६००००० रु० वसूल कराया और उनके ऊपर चेतसिंह को सहायता देने का अभियोग लगाया ॥ इस भांति साहाय्यकारिणी रीति के अनुसार बेगमों को अभियोगित कर उसे अपने करतल में किया ॥

ई० में नवाब सादतअली और उनके वज़ीर के कुत्सित शासन तथा साहाय्यकारिणी रीति के अनुसार अङ्गीकृत सेना के परिपालन में असावधानता देख कर गवर्नर जेनरल मार्क्विस वेलस्ली ने साहाय्य कारिणी रीति के नियमों के अनुकूल अवध को पुनः अभियोगी किया और अन्त में लार्ड कौर्नवालिस ने (द्वितीय बार १८०५-१८१३) इस दुर्णय का उपशम व सेना के पोषण निमित्त कुछ प्रान्त दे देने के हेतु नवाब को बिवस कर उनसे यह प्रान्त ले लिया॥ इस भांति १८०१ के संधिपत्र के अनुसार अवध का अनुशासन अंग्रेज़ों के हस्तगत हुआ और बादशाह को भली भांति शान्तिरूप से राज्य करने को इन्होंने कहा परन्तु शासन दिन प्रति दिन अधिक बिगड़ता गया और अन्त में सन् १८५६ ई० में लौर्ड डल्होसी के अनुशासन में होम गवर्नमेण्ट से यह आज्ञा मिली कि अवध बङ्गाल का राज्यांग किया जाय और बादशाह पेन्सिन देकर कलकत्ते भेजा जाय। इस प्रकार वाजिदअली शाह के समय में यह अवध चिर-भोगित यवनों के हाथ से वहिर्गत होकर अङ्ग्रेज़ों के हाथ में आया और तुरन्तही उस के प्रवन्ध के सम्यक् निर्वाह हेतु इसमें लखनऊ रायबरेली, फ़ैज़ाबाद और सीतापुर की चार कमिश्नरी की गईं और उनके आधीन लखनऊ, उनाव, हरदोई, रायबरेली, प्रतापगढ़, सुलतानपुर, फ़ैज़ाबाद, बाराबंकी, बहरायच, खीरी, सीतापुर और गोंडा आदिक १२ ज़िलों में से क्रमशः तीन तीन उनके हुए॥ अवध का यही विभाग बहुत दिनों तक चला आया परन्तु दूसरे या तीसरे बन्दोबस्त में सीतापुर व रायबरेली कमिश्नरी तोड़ कर केवल लखनऊ व फ़ैज़ाबाद की दो कमिश्नरी रक्खी गईं और रायबरेली व सीतापुर के प्रान्तों मे से रायबरेली, सीतापुर और खीरी लखनऊ में योजित किए गए और सुलतानपुर, प्रतापगढ़ और गोंड़ा, फ़ैज़ाबाद में मिलाए गए। इस तरह से लखनऊ चतुर्थांश को छोड़ आधे का मालिक हो बैठा। पहिले अवध भूभाग में ४ कमिश्नरी करने का कारण यह अनुमित होता है कि यहाँ बादशाही राज्य में अधिक अन्याय होता था और चिरकाल से स्वतन्त्र होने के कारण एका-एकी परतन्त्र होने से उनका राजा के विरुद्ध होना असम्भव न था

और इस प्रकार समय प्रान्त जो एकही बार प्रतिकूल हो जाता तो उसका समाधान दो कमिश्नरी से होना असम्भव था। सम्भवतः इसी विचार से पहिले ४ कमिश्नरी की गई॥ लखनऊ कमिश्नरी में लखनऊ संयुक्त प्रदेश में सबसे अधिक जनाकीर्ण नगर है। यहाँ चिकन कामदानी का काम अच्छा बनता है। हुसेनाबाद आसफुद्दौला का इमामबाड़ा दर्शनीय है (इनका वर्णन अन्त में होगा)

उन्नाव-इस ज़िले में उन्नाव, सफीपुर, पुरवा और मोहाना की ४ तहसीलें हैं। उन्नाव सदर मुकाम है। यहां का पेड़ा अच्छा होता है। वागरमऊ मुरादाबाद और सफीपुर बड़ी नगरी है।

रायबरेली इसमें रायबरेली डालामऊ, दिग्विजयगंज और सलोन की तहसीलें हैं। रायबरेली का गाढ़ा व बरा अच्छा होता है इसीसे देहाती लोग प्रातःकाल इसे दुहत्या शहर कहते हैं। डालामऊ में गङ्गा स्नान का मेला होता है। जायस बड़ी नगरी है॥

सीतापुर-इसमें सीतापुर, विसवां, सिधौली और मिश्रिख ४ तहसीलें हैं। सीतापुर का जलवायु बहुत अच्छा है। यहां सरकारी छावनी है। पीरनगर में लिहाफ़ अच्छे बनते हैं। नीमसार मिश्रिख और हरगाँव में हिन्दुओं के तीर्थ स्यान हैं। विसवाँ की तमाकू अच्छी होती है। यहाँ प्रेतनाथ मनसाराम का स्थान है। इनकी दुहाई खींची जाती है और ये वांछित फल के देनेवाले हैं। लहरपुर में राजा टोडरमल का जन्म हुआ था॥

हरदोई- इस ज़िले में हरदोई, शाहाबाद, बिलग्राम और संडीला ये ४ तहसीलें हैं। विलग्राम के फारसी भाषा के कवि और विद्वान प्रसिद्ध हैं। यहाँ एक कुंवा है जिसका पानी पीने से मनुष्य में प्रासी के पचजाने से जो शक्ति उत्पन्न होती है वही आजाती है। पिहानी में चाकू और सरौते अच्छे बनते हैं। सण्डीला प्रसिद्ध स्थान है॥

खीरी-इस ज़िले में मुहम्मदी, निघासन और लखीमपुर ये तहसीलें हैं। इसमें केवल मुहम्मदी का केतकी का फूल और गोला में गोकरनाथ महादेव जी का मेला प्रसिद्ध है। खीरी और लखीमपुर बड़ी नगरी हैं॥

लखनऊ ज़िला—सन् १८५६ ई० में जब होम गवर्नमेण्ट से अवध को अंग्रेज़ी राज्यांग करने तथा बादशाह को पेनशिन देकर कलकत्ते भेजने की आज्ञा मिली तो अन्तिम बादशाह वाजिदअली शाह कलकत्ते भेजे गए और अवध का शासन अंग्रेज़ों के हाथ से होने लगा। परन्तु नृपासनाच्युत वाजिदअली शाह के कुटुम्बी और अवध के अधिष्ठाता इस बात से असन्तुष्ट हुए और पुनः वैसीही स्वतंत्रता की इच्छा से राजपुत्र विरजिसक़दर के सहचर हुए। सरकार से विरुद्ध होकर युद्ध ठान देश में लूट फूक मचा दी, पर नीति निपुण सरकार ने शीघ्रही विरोधियों का दमन कर इस खण्ड में अपना राज्य स्थिर कर प्रजा गण में शान्ति फैलाई और इस नगर को अवध की राजधानी बना अपना राज शासन प्रचलित किया। यह अब लखनऊ कमिश्नरी में सब से बड़ा तथा जनाकीर्ण ज़िला है। इस ज़िले का आकार कुछ नियत नहीं है। कहीं तो यह अपने नाम के नगर से बहुत दूर तक चला गया है और कहीं केवल उसी के निकट दसी बारह मील पर्य्यन्त हैं॥ यदि इसका पूर्व और पश्चिम देशीय भाग (अर्थात् मध्य) कुछ और पतला होता तो इसकी आकृति स्त्रियों के कूटने वाले मूशल या बेहना के धुनकने वाले बान के समान होती या यदि मोहनलाल गंज की तहसील में पूर्व ओर अमेठी और बढ़ जाती और उधर मलिहाबाद में कुर्सी भी मिल जाता तो इसका स्वरूप कलिकलुषहारिणी श्री गंगा जी के बेसिन के समान होता॥ यह ज़िला २७°–१५' और २६°–३०' प्राच्य अक्षांशवृत्तों के मध्य तथा ८०°–३०' और ८१°–२०' उत्तरीय रेखांशवृत्तों के मध्य स्थित है॥ इस ज़िले की वायव्य और उत्तर दिशा की सीमा हरदोई तथा सीतापुर ज़िलों से होती है जोकि गोमती के प्रदेश में प्रविष्ट होने के पूर्ववाले भाग से विभक्त होती है। ईशान और पूर्व में सब से पूर्वीय किनारे तक जहां से कि गोमती और इस ज़िले का वियोग होता है बाराबंकी ज़िला है और वहां से धीमें धीमें दक्षिण दिशा को घूमती हुई

किनारे की रेखा रायबरेली प्रान्त से प्रविष्ट है । अवशिष्ट सम्पूर्ण पश्चिम व नैऋत्य का भाग उन्नाव ज़िले से घिरा हुआ है ॥ इस प्रदेश में सब से लम्बी रेखा जो इसके तीरान्तर उत्तर से दक्षिण को खीची जा सकती है अमानीगंज के उत्तरीय सीमाञ्चय से नटोली के उच्छिन्न कोट तक होती है । इसकी सम्पूर्ण लम्बाई लग भग २४ कोश (४८ मील) के है और सबसे अधिक लम्बी रेखा जो पूर्व से पश्चिम को खीची जा सकती हैं गोमती तट स्थित हुसेनपुर से गुदोली तक होती है । इसकी लम्बाई लगभग १४ कोश (२८ मील) के है । साधारणतः इसका सब क्षेत्रफल १९०१ में लगभग १७४५० वर्गात्मक मील के था और म्युनिसिपेलटी की कर के अतिरिक्त ८६३१९४ रू० वार्षिक आय थी । लखनऊ म्युनिसिपेलटी में १९०१ में ३५ चुंगी के नाके थे और ३५९८२१ रू० आय थी व म्युनिसिपेल बोर्ड से ४९९४३२ रू० आय थी ॥ इस ज़िले का अवस्थान अत्यन्त विशद मैदान तथा ग्रामों से भरा भली भांति वृक्षावृत्त और कुछ भागों में अत्यन्त कृषिकर्म संयुक्त दर्शित होता है परन्तु यह दृश्य उस स्थान पर बिलीन हो जाता है जहाँ किसी नदी का प्रवाह या ऊसर आ जाता है जो कि कभी कभी कोसों तक फैलता है और जिसमें सिवाय रेह के और कोई पदार्थ का चिन्ह तक नहीं दिखाई देता ॥ इस रेह को धोबी लोग बटोर लेजाते हैं और साबुन के स्थान पर काम में लाते हैं ॥ इन्हीं स्थानों में कहीं कहीं कंकड़ के गड़हे भी निकलते हैं जिनसे कि दो तीन फुट की गहराई तक लोनिया लोग सड़क बनाने को कंकड़ निकालते हैं ॥ सिवाय ऐसे स्थानों के और कहीं इसकी भूमि समस्थल नहीं है और नैऋत्य कोण से ईशान की ओर ढालू सी है परन्तु उसकी समभूमि की एकरूपता नदी नालों के वक्र प्रवाह से सूचित हो जाती है ॥ निम्नलिखित स्थलों की उंचाई से इसका ईशान की ओर अपसर्पिणी होना प्रमाणित हुआ जाता है जैसे कि इस ज़िले के उत्तरीय भाग में महोना के निकट इसकी उंचाई लगभग ४१५ फुट के है । फिर लखनऊ के केन्द्र के समीप आलमबाग के निकट ३९५ फुट है और फिर नयाम के ईशान में ३७० ही फुट रह जाती है ॥ इस तरह से यह उत्तर से दक्षिण

का लगभग ४३ फुट या साधारणतः प्रति मील १ फुट के हिसाब से ढालुवां होती जाती है ॥

२ पर्वत और नदियाँ—इस ज़िले में कोई पर्वत नहीं है केवल लक्ष्मणटीला जिसे लोग लक्ष्मण पर्वत कहते हैं नाममात्र को था सो वह भी अब मच्छी भवन दुर्ग के अन्तर्गत है ॥ इस प्रदेश की मुख्य नदियाँ गोमती और सई हैं ॥ गोमती पीलीभीत के पास से निकल कर सीतापुर व हरदोई ज़िलों में होती हुई जमखनवां गांव के निकट लखनऊ ज़िले में प्रविष्ट होती है और वहाँ से दो धारा, कोरारी, पकरिया, उतरिया, सुलतापुर, नौकरपुर, मंझी लालूट, कुलवा, गोपुरामऊ, लोदमऊ, बंसीगढ़ी, दोगौर, कांकराबाद, खेला, सोनघरा और घइला गावों में घूमती हुई लखनऊ पहुंचती है । वहां पर लखनऊ के तीरान्तर होते होते इसके ऊपर पत्थर, लोहा, पक्का, पीपा और रेल के मिलाकर छः पुल बँधे हैं जो एक तरह से अनुपूर्वशः वर्ष शत का समय और लखनऊ की पहिली दशा व उसकी आधुनिक सम्यतावस्था का अन्तर सूचित करते हैं । यहां पर इस नदी से पनचक्की, पेपरमिल, बरफखाना और वाटरवर्क्स आदिक कार्यों के लिये पानी लिया जाता है । फिर यह आगे बढ़ती है और बीबीपुर, बागामऊ, लोनापुर, चौरासी, नूरपुर, दोदामऊ, सूसघाट, अलियामऊ, रसूलपुर, टकेनामऊ, टिकराघाट, धौरहर, फतेपुर, हुसेनपुर और घुसकर होती हुई सलेमपुर पहुंचती है जहां से कि यह कुलटा की तरह इस ज़िले को छोड़कर बाराबंकी ज़िले में जाती है और इसतरह रामगंगा, गंगा, चौका और घाघरा के बीच के स्थानों को सींचती हुई सैदपुर के पास गङ्गाजी से मिल जाती है ॥ इस पर घेला, सरोरा, कांकराबाद, रैठाल, धमऊ, वदैया, माझी, कुलवा, बिसारी, नूरपुर, सुड़ियामऊ, घस्कर, शेखनापुर, गोरिया और सलेमपुर में घाट बंधे हैं जिनसे कि सरकार को वार्षिक कर मिलता है । कथना, सरायन, सई और नन्दा इसकी सहायक नदी हैं ॥

सई—हरदोई के झावर से निकलकर उन्नाव के मोहन परगने में होती हुई गुदौली के निकट इस ज़िले में प्रवेश कर

उसकी नैऋत्य कोण को सीमा होती है । यह नदी गोमती के तीरान्तर बहती है और इसके ऊपर नानामऊ, कलवा, गऊवा, लुत्फनगर, बेती, बलैारा, नीमटोकर, मीनापुर, मीरानपुर, और मरौलिया गांव हैं । बीरसिंहपुर से यह दक्षिण की ओर रायबरेली जिले को झुकती है और गोमती से मिल जाती है॥ मोहन, कलवां, बनी, जबरौलाघाट पर इसके ऊपर पुल बँधे हैं व नगवा (लूनी) और बांक इसकी सहायक नदियां हैं॥ इन दो बड़ी नदियों के सिवाय और इसमें बड़ी नदी कोई नहीं है । बेता, कुकरायल, नगवा (लूनी) और बांक आदिक केवल छोटी छोटी नदियां हैं जो बहुधा अनावृष्टि में सूख जाती हैं॥ (इनका वर्णन इनके परगना के वर्णन के साथ होगा)॥

३ नाला व झील-नगवा व बांक आदिक छोटी छोटी नदियों के अतिरिक्त इस ज़िले में एक बड़ा नाला भी है जो गाज़िउद्दीन हैदर ने खेती के हेतु कानपुर के निकट गंगाजी से कटवाया था, इस में जल नहीं आया केवल चार महीने वर्षाही का पानी रहता है । यह लखनऊ नगर को पूर्व व दक्षिण ओर घेरे हुए है । इसके ऊपर हिन्डोलना, सितवापुर और सदर के नाके के पुल बंधे हैं जिनके द्वारा पथिक गण नगर में प्रवेश करते हैं । यह जाकर लखनऊ के पूर्व गोमती से मिल जाता है ॥ इसके सिवाय और खेती का काम हो सकने लायक कोई नाले नहीं है परन्तु और छोटे छोटे हैं जिनसे कि केवल प्रावृषिक जल बहता है और किसी नदी से जाकर मिलजाता है ॥ इस प्रदेश में झीलें नहीं हैं केवल नयाम व सिसेंडी के निकट बड़े बड़े ताल हैं जिन्हें मनुष्य नयाम झील व सिसेंडी झील कहते हैं । इन दो बड़े तालों के सिवाय और और ताल भी हैं जिनमें पहिला करैला ताल तहसील मोहनलालगंज में मोहनलालगंज के पास है और दूसरा कठौता ताल तहसील लखनऊ में मौजा चनहट में है ॥

४ जल वायु व लोक संख्या--इस ज़िले का जल वायु समभाव का है अर्थात् न तो बहुत उष्णही है और न बहुत शीत

शिशिर ऋतु में जाड़ा अधिक होता है और ग्रीष्म में गरमी और वर्षा में दोनों तुल्य होते हैं ॥ जाड़ा गरमी बरसात की तीन ऋतुएं होती हैं जिनमें नवम्बर से फरवरी तक जाड़ा, मार्च से जून तक गरमी और जुलाई से अक्तूबर तक बरसात रहती है ॥ बरसात में जल अधिक बरसता है और उससे कम एक बार जाड़े में होता है। शेष ऋतुओं में वर्षा बहुत कम होती है । जाड़े की ऋतु में 'पुरवाई' और गरमी में 'पछियाव' अधिक चलता है । इसे 'लूह' कहते हैं । वर्षा में 'उतरहटी' अधिक प्रचण्ड होती है परन्तु अधिक बातमय मास चैत्र वैशाख व जेठ हैं । बहुधा इन्हीं मासों में छः सात वात्यावेग होते हैं जिससे बहुत से वृक्ष उखड़ जाते हैं । यहाँ के निवासियों को इस ज़िले के जल का अधिक परिदेवन रहता है । इसके अतिरिक्त शीतला, ज्वर, त्वग् रोग और अङ्ग पीड़ा आदि रोग भी लोगों को होते हैं जिसमें शीतला चैत्र प्रारम्भ होती और ज्येष्ठ तक प्रचण्ड हो जाती है परन्तु इस में मृत्यु बहुत कम होती है और ज्वरादिक निर्बलता व भोज्य पदार्थों में खाद्याखाद्य का विचार न करने से उत्पन्न होते हैं। अपर भयानक रोग विसूचिका है जो प्रत्येक वर्ष में कुछ न कुछ मनुष्य अपनी भेंट लेजाता है। यह जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर और नवम्बर ही में अधिकतर होता है ॥ और अन्य रोग भी मनुष्यों को होते हैं परन्तु ये मुख्य और अधिक हैं॥ पशुओं को जब कब खुरहा और मरही* की बीमारी हुआ करती है जिस में सहस्रों पशु उच्छिन्न होजाते हैं ॥ ऐसा रोगग्रस्तही होने के कारण से लखनऊ इस दशा को प्राप्त हुआ है कि संयुक्त प्रदेश में सब से बड़ा नगर लोकसंख्या में (आबादी या मर्दुम-शुमारी में) अवध ही में द्वितीय होगया । इसकी लोकसंख्या १९०१ ई० में के ७९३०३६ थी जिसमें हिन्दू मुसलमान सिख जैनी बौध पारसी और किरानी मिले हुए हैं । इनकी संख्या स्त्री व पुरुष का भेद आगे के चक्र से स्पष्ट हो जायगा—

* खुरहा में खुर फूलते हैं और पशु चारा नहीं खता । यह आषाढ़ से क्वार तक होता है और मरही में पशु पोंकते हैं और उनकी बोटें धरी जाती हैं यह बहुधा बैसाख से आधे जेठ तक होती है ॥

लोक संख्या बोधक चक्र ।

हिन्दू		मुसल्मान		किरानी		जैनी		सिख		पारसी		बौद्ध		योग	
६२१९६२		१६२८००		७६६९		६६८		१५६		११८		६३		७९३०३६	
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
३२७१९५	२९४५६७	८१८१९	८०९८१	५३४२	२३२७	३३७	३३१	११५	४१	७६	४२	६३	-	४१४९४७	३७८२८९

लखनऊ के हिन्दुओं में केवल ब्राम्हणही नहीं हैं किन्तु और जातियाँ भी है जिनकी एक सूचि नीचे लिखी है—

ब्राम्हण	नाऊ	बढ़ई	चमार
क्षत्री	भाट	भुजवा	भंगी
कायस्थ	मुराऊ	कुँभार	मोची
खत्री	लोधा	खरादी	माली
बनिया	कहार	कलवार	धोबी
काश्मीरी	सुनार	चिड़ीमार	
अहीर	तँबोली	खटिक	
बारी	हलवाई	तेली	

धर्म्म यहाँ के विशालकुलसम्भूत ब्राम्हण खत्री बनियें और रस्तोगी शिव की उपासना करते हैं। कायस्थ देवी पूजते हैं। काश्मीरी ब्राम्हण भी शिवही की पूजा करते हैं। ये लोग इस विचार से कि देवी मांस व मदिरा पान करती हैं उनकी अर्चना से घृणा करते हैं। नीच कुल के हिन्दू देवीही को पूजते हैं और पासी चमार आदिक नीचकुलोत्पन्न हिन्दू नास्तिक कहे जाते हैं। हिन्दुओं में बहुत से गुरु नानक के मतावलम्बी हैं। वैष्णव बहुत कम हैं॥ जैसे लखनऊ ज़िले के हिन्दुओं में इतनी जातियां हैं वैसे ही यहां के मुसल्मानों में भी बहुत जातियां है। उनकी नामावली नीचे लिखी है—

सैय्यद	भाड़	जुलाहा
पठान	भिस्ती	कुँजरा
मोग़ल	बिसाती	बकरकसाई
शेख	डफाली	कसाई
आतसबाज	धुनिया	पतुरिया
भठियारा	दरजी	

ये सब जातियाँ सुन्नी व सिया भागों में विभक्त हैं। इन दोनों भागों में अन्तर यह है कि पहिलेवाले तो चारों खलीफ़ों को अयणीरूपक मुहम्मद के उत्तराधिकारी मानते हैं परन्तु दूसरे अली और उनके अनुगामियों ही को ग्रहण करते हैं॥ लखनऊ में

अधिकतर शिया लोगों ही की वस्ती है। यहाँ के नवाब वेग में और चैाधरी आदिक सब शियाही धर्म के हैं। सुन्नी बहुत कम हैं॥ यहाँ के मनुष्य हिन्दू या मुसल्मान सब सामान्य आकार के होते हैं और अधिकतर गेहुँआ रंग होता है केवल खत्री, काश्मीरी, अगरवाले और मुग़ल आदिक अधिक गोरे होते हैं। इनकी मातृभाषा उर्दू है जो कि बड़ी मिठाई से बोली जाती है। सभ्यता ईश्वर ने सब यहीं रची है परन्तु मनुष्य धर्म्महीन विषयोपभोगरत अधिक हैं। इनकी इच्छा सदा घरही में बैठे गलसट्टे उड़ाने की होती है इसीसे नगर अधिक ऋणी व धनहीन होता जाता है॥ मनुष्यों का भोजन प्राय: वही है जो खीरी आदि अन्य जिलों में होता है केवल अन्तर यह है कि यहाँ के मनुष्य उर्द, मोथी, अरहर बहुत खाते हैं और चावल कम॥ सितम्बर से मार्च तक लोग अधिकतर चावल, कोदो, मकई और बाजरा आदि खाते हैं और अप्रैल से अगस्त तक चना, जव, सावा और अरहर आदि खाते हैं॥ मनुष्य दिन भर में दो बार खाते हैं और एक मजूरी करनेवाला मनुष्य अधिक से अधिक सेर भर अन्न खाता है। इससे अधिक खुराक बिरलेही मनुष्यों की होती है॥

५ँ खेती—इस ज़िले के भूतत्वविषयक रचना के विषय में सिवाय इसके कि यह एक पुलिनमयीकीट है और कुछ नहीं लिखा जा सकता। यहाँ की पृथ्वी जोतास व जोतनेलायक जहाँ अच्छी होती है "दूमट" कहलाती है जिसकी कि शब्दव्युत्पत्ति से हलुकी व गरुई मिट्टी का मेल सूचित होता है। गरुई मिट्टी को मटियार कहते हैं और हलकी मिट्टी बालू मिश्रित होती है। जहाँ केवल बालू ही होता है उसे "भूड़" कहते हैं॥ इस ज़िले की भूमि अधिक शश्योत्पत्तिकारिणी है और पानी व बांस डालने से सब प्रकार की पृथ्वी उर्वरा हो सकती है। भूड़ केवल नदी तटस्थित गावों में होती है। लखनऊ नगर (जिसके तीरान्तर गोमती बहती है) और निगोहाँ के परगने वसिसेंडी मे (जहाँ सई बहती है) ऐसी पृथ्वी बहुत है और काकोरी में जहाँ कोई नदी क्या नाला भी नहीं है

इस प्रकार की में भूमि का लेश मात्रभी नहीं पाया जाता । यह पृथ्वी (भूड़) केवल देवमातृक होती है अर्थात् केवल वृष्ट्यम्बु जीविनी और अवशेष भूमि की प्राकृतिक उत्पत्ति को कूपादिकों से बहुत सहायता मिलती है ॥ अब अवध में इस ज़िले से उत्तम खेती और किसी ज़िले में नहीं होती । इसका सम्पूर्ण क्षेत्र फल ६१८९२४ एकड़ है तिस में केवल ३५०४०० एकड़ में १९०१ में खेती थी बाकी ऊसर व जोतने लायक है ॥ सम्पूर्ण क्षेत्रफल में कितनी पृथ्वी कुवां से सीची जाती है, कितनी ताल से कितनी गैर सीची होती है, कितनी बागात है, कितनी बंजर यह सब नीचे के चक्र से विदित होगा-

जोतास	सींच से	कुआँ से	९०६३९
		नालों से	।
		तालों से	३४३७९
		दूसरे जल से	५८९५
		योग	१३०९१३
	गैर सींच		२१९४८७
	कुल जोतास		३५०४००
जोतने लायक	ऊँख के वास्ते		२
	न्यूफाली		१७१४७
	मौजान		१७१४९
	ओल्डफाली		५४६४३
	बागात		२२९६३
	जोतने लायक बंजर		४८८८५
	योग		१२६४९१
	कुल जोतने लायक		१४३६४०
ऊसर	बंजर		७६७२१
	पानी से घिरी		२२०७६
	घेरमभू		२६०८७
	योग बंजर		१२४८८४
योग			६१८९२४
दुतनाव	खरीफ़		२५६१२२
	रबी		१६७०२४
	ज़ैद		७७७९
	योग		४३०९२५
	दुतनाव		८०५२५

यद्यपि इस ज़िले के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का दो तिहाई जोतास नहीं है परन्तु यहां की ऐसी उर्वरा भूमि है कि ऐसा अन्न किसी अन्य ज़िले में नहीं उत्पन्न होता इसी से लखनऊ की खेती सब से प्रथम गिनी जाती है और पृथ्वी पर कर भी अधिक है यहां तक कि १०) से १५) बीघा तक पड़ता है ॥ यहां खेती में दो मुख्य शश्य-संचयकाल होते हैं जो रबी और खरीफ़ कहलाते हैं। हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में उत्पन्न अन्न को रबी और वर्षा और शरद ऋतुओं में उत्पन्न अन्न को खरीफ़ कहते हैं ॥ रबी में गेहूं, गोजई, चना, कलाय, बेरी (चना और जव का गवड़हर) और अरहर पैदा होती है और खरीफ़ में धान, साँवा, मेडुआ, काकुन, और अन्य लघु शश्य उत्पन्न होते हैं ॥ इन दोनों शश्यसंग्रह समयों के मध्य में एक और अन्न ग्रहण काल होता है जिसे हेवँत कहते हैं। यह शरद और हेमन्त ऋतुओं में होती है और जुआर, बाजरा, उर्द, मूँग, मोथी, मसूर और लोबिया अदिक इसमें उपजते हैं। इन अन्नों के सिवाय यहां तमाकू, अफ़ीम, नील, रूई, पौड़ा और कछियाना पदार्थ जैसे साग, तरकारी आदि भी होते हैं। मसाले में जीरा, सौंफ धनियां और तेलहन में तिल्ली, दाना (पोस्ते का) अरसी, सरसों, रेंड़ी पैदा होते हैं। तेलहन सब दूसरे अन्न के साथ बोये जाते हैं केवल पोस्ते का दाना अकेला होता है। अरहर के साथ पटुआ बोया जाता है जिसका सन निकालते हैं। औषधियों में केवल काला दाना अफीम होती है। यह सब अन्न इस प्रान्त में ऋतु ऋतु में होते हैं, परन्तु कौन किस मास में कटता है यह नीचे की सूची से विदित होगा—

जेठी धान	जून या आषाढ़
मक़ई	अगस्त या भादों
सावां (जेठी)	मई या जेठ
सावां (भदैला)	अगस्त या भादों
मेडुंवा	सितम्बर या कुवार
काकुन	,, ,,
कोदो	,, ,,

कुआरी धान	सितम्बर या कुवार
मोथी	अक्तूबर या कातिक
लोबिया	,, ,,
मूंग	,, ,,
उर्द	नवम्बर
बाजरा	,, अगहन
छोटी जुवार	,, ,,
लड़हन	दिसम्बर व जनवरी पूस
ऊंख	मार्च चैत
चना	,, ,,
जव	,, ,,
गोहूं	,, ,,
अरहर	,, ,,
ककरी, तरबूज़, खरभूजा	अप्रैल या जेठ

ऐसा यहां की खेती का हाल है और यह साल भर में लगभग सब महिनों में होती है। यह अन्न रेल व बैल गाड़ियों के द्वारा लखनऊ जिले से लखनऊ नगर व अन्य नगरों को जाता है। इनके ऊपर चुंगी लगती है॥

६ रेलवे लाइन व सड़कें—इस जिले की सब रेलवे लाइन अवध रुहेलखण्ड रेलवे के अन्तर्गत हैं। यह बड़ी लाइन लखनऊ से पूर्व दक्षिण नैऋत्य और पश्चिम की ओर जाती हैं॥ (क) पूर्व को जाने वाली लखनऊ परगने से होकर बाराबंकी को जाती है और वहां से अपनी एक शाखा वह रामघाट की ओर भेजती हुई फैजाबाद होकर बनारस पहुंचती है। लखनऊ ज़िले में इसके स्टेशन (१) लखनऊ (२) मल्हौर और (३) जुगौर हैं॥ (ख) दक्षिण की ओर जानेवाली रायबरेली होकर मोगलसराय को गई है॥ इसके स्टेशन (१) लखनऊ (२) मोहनलाल गंज और (३) निगोहा

हैं ॥ (ग) नैऋत्य कोण को जानेवाली कानपुर को जाती है इसके स्टेशन (१) लखनऊ (२) अमौसी और (३) हरौनी हैं और (घ) पश्चिम को जानेवाली काकोरी और मलिहाबाद परगने से होती हुई हरदोई ज़िले के तीरान्तर होकर शाहजहांपुर बरेली और मुरादाबाद होती हुई सहारनपुर को जाती है। यह लाइन आगरा प्रदेश में मोगलसराय से सहारनपुर तक है और उधर पंजाब में लाहोर तक चली गई है ॥ अवध रुहेलखण्ड रेलवे में इससे बड़ी और कोई लाइन नहीं है। इसके स्टेशन लखनऊ ज़िले में (१) लखनऊ (२) आलमनगर (३) काकोरी (४) मलिहाबाद और (५) रहीमाबाद हैं ॥ इस ओ० आर० आर० लाइन के सिवाय दो और लाइनें हैं जो आर० के० आर० (रुहेलखण्ड कमायूं रेलवे) और बी० एन० डबल्यू० आर० (बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे) कहलाती हैं। इनमें से पहिली लखनऊ परगने वायव्य के कोन की ओर जाती है और दूसरी बहरामघाट से बड़ी लाइन के साथही साथ कानपुर तक गई है। इसके स्टेशन बहरामघाट की ओर (१) ऐशवाग (२) आगामीर की ड्योढ़ी (३) डालीगंज (४) बादशाह नगर (५) मल्हौर और (६) जुगौर हैं और कानपुर की ओर वही स्टेशन हैं जो कि बड़ी लाइन में हैं ॥ इस लाइन से लखनऊ से एक और शाखा फूटी है जो सीतापुर की ओर जाती है। इसके स्टेशन (१) ऐशबाग (२) आगामीर की ड्योढ़ी (३) डालीगंज (४) मडियाव (५) तालाब बख़्शी और (६) इटौंजा हैं। इन लाइनों के सिवाय और कोई रेलवे सड़कें नहीं हैं ॥

पक्की सड़कें ३ हैं जो कि दक्षिण को कानपुर की ओर, उत्तर को सीतापुर की ओर और पूर्व को फ़ैज़ाबाद की ओर जाती हैं। ये स्थान स्थान पुल व डाकबगलों से युक्त हैं ॥ इनसे छोटी मुख्य सड़कें ७ हैं जो लखनऊ से—

(१) कुर्सी को जाती है। यही फिर आगे मुहम्मदाबाद को गई है ॥

(२) देवे की ओर जाती है ॥

(३) गोसाईंगंज और अमेठी होती हुई सुलतापुर को गई है। यह गोसाईंगंज तक पक्की बाकी कच्ची है॥

(४) मोहनलालगंज होती हुई रायबरेली को जाती है॥

(५) सई को पुल पर से नाँघ कर मोहान को गई है। यही फिर उन्नाव ज़िले के रसूलाबाद तक चली जाती है। यह सड़क कच्ची है और–

(६) मलिहाबाद को गई है। इस का विस्तार संडीले तक गया है। यह काकोरी तक पक्की बाकी कच्ची है॥

(७) नयाम को जाती है। यह सम्पूर्ण सड़क कच्ची है इन सड़कों से राजधानी प्रत्येक परगनों से मिल जाती है और प्रत्येक परगना भी परस्पर अन्य सड़कों से यों मिल जाता है। ऐसी सड़कों में से–

(१) गोसाईं गंज से मोहनलालगंज होती हुई बनी के पुल के निकट जनावगंज को जाती है जहाँ पर यह लखनऊ से कानपुर को जानेवाली सड़क से मिल जाती है। यह सड़क मोहनलाल गंज तक पक्की बाकी कच्ची है। इसमें मोहनलालगंज के आगे से एक शाखा और निकलती है जो सिसेंडी होती हुई नवरीला घाट को जाती है। यह भी कच्ची है॥

(२) बनी से मोहान होती हुई मलिहाबाद को जाती है जहाँ से फिर यह मालगाँव होती हुई हरदोई ज़िले के पीपरगाँव को जाती है। यह सड़क सब जगह कच्ची है। इसी में से माल के निकट से एक शाखा निकलती है जो कि इटौंजा होकर महोना को जती है और वहाँ से कुर्सी पहुंचती है। यह शाखा भी कच्ची हैं॥ और–

(३) लखनऊ से बिजनौर को जाती है जहाँ से यह सिसेंडी निगोहाँ नयाम होकर सलेमपुर पहुंचती है। यह भी कच्ची सड़क है॥

इन सड़कों के सिवाय लखनऊ प्रान्त में और कोई सड़कें नहीं हैं और इनके मीलों की गणना लोहे के पुल से होती है॥ इस स्थान से और सड़कें निकलती हैं जो मुख्य नगर में गई हैं।

ये सड़कें ३ हैं जो दक्षिण व नैऋत्य दिशा को जाती हैं और गाज़ीउद्दीन हैदर के नाले को नाघकर कानपुर को जानेवाली बड़ी सड़क से मिलजाती हैं॥ एक सड़क और नदी के किनारे किनारे छतर मंज़िल के निकट हजरत गंज होकर सितापुर के नाके से स्टेशन को जाती है। यह ठंढी सड़क कहलाती है। इस पर पुलिस का पहरा सदा बना रहता है और साँझ सबेरे इसी मार्ग से अंग्रेज़ लोग निज यानों पर चढ़कर वायु परिवर्तनार्थ घूमने जाते हैं। इस सड़क के दक्षिण ओर का विस्तार "अबाट रोड" कहलात है जिससे कि फैज़ावाद व बहरामघाट से व्यापार की अधिक वास्तुएं आया करती हैं। इनके अतिरिक्त अमीनावाद रोड व कैनिंग रोड हैं जिनमें पहिली नगर के अति सघन भाग से होकर कैसरबाग के दक्षिण ओर से जाती हुई गोमती के किनारे ठंढी सड़क से मिल गई है और इधर वही हिन्दोलना के नाके होकर चारबाग स्टेशन को आई है और दूसरी नगर के बाहरही बाहर मच्छी भवन के नैऋत्य कोण से आगामीर का झोढ़ी गोलागंज होती हुई सीधी सदर बाज़ार कन्टोन्म्यन्ट को गई है। लोहे के पुल से ३ सड़कें और निकली हैं जिनके द्वारा नगर में सीतापुर और मलिहावाद से व्यापार के पदार्थ आया करते हैं। जहाँ ये दोनों सड़कें मिली हैं उस स्थान से एक और सड़क निकली है जो सीधे दक्षिण को जाती है और नहर नाँघकर पहिले कही हुई कानपुर की सड़क से मिल जाती है। इसका नाम विक्टोरिया रोड है। येही मुख्य नगर में बड़ी २ सड़कें हैं और इन्हीं के द्वारा बैल गाड़ियों में सीतापुर, फैज़ाबाद, कानपुर और हरदोई आदि ज़िलों से व्यापार की चीजें जाया आया करती हैं॥ इन सड़कों के अतिरिक्त और भी छोटी छोटी सड़कें हैं जो एक सड़क को दूसरी से मिलाती हैं। इनका लिखना इस पुस्तक में असम्भव है॥

९ शिक्षा–ज़िले का शिक्षा विभाग इस प्रकार से है कि यहां के देहाती कस्बाती व म्युनिसिपल (उर्दू व हिन्दी) मदर्से प्रान्त के डिपुटी इन्स्पेक्टर के आधीन रहते हैं जो परीक्षा व जांच

के हेतु समय समय पर दौरा किया करते हैं और मुख्य नगर के सरकारी इमदादी व रिकग्नाइज़्ड अंग्रेजी स्कूलों के अधिपति इन्स्पेक्टर कहलाते हैं। ये अपने असिस्टण्टों के सहित इन स्कूलों में जाँच के हेतु जाया करते हैं॥ ज़िले में देहाती उर्दू व हिन्दी मदर्से ४९ हैं तिन में तहसील मलिहाबाद में कस्मंडी, तालावबख़्शी, इटौंजा, पहाड़पुर, रहीमाबाद, नबीपनाह, मड़ियांव, जमखनवां, अमानीगञ्ज कुस्मरावां, माल, बेहटा, मड़वाना, आटगढ़ी, सिस्पन, सहलामऊ, गहदों, सालेहनगर, हरधौरपुर, खड़हुवां, खालिसपुर, सआदत नगर, दिलावरनगर, मँहगवाँ और भौली मिलाकर २५, तहसील लखनऊ में काकोरी, उजरियांव, जुग्गौर, भटगांव, अमौसी, बिजनौर, नैतीखेर, ईंटगांव, चनहट, नरायनपुर, परवरपश्चिम, मौंदा, भवरूख, ऐन, अमराईगांव, उत्तरठिया, थावर, दादूपुर, कल्लीपश्चिम, बरौना, दिगौरिया, बेहटा, मल्हौर, रहीमनगर पड़ियाना, टेखां और काकराबाद के मिलाकर २६ और तहसील मोहनलालगञ्ज में सिसेंडी, लवलि, सिथौली, क़ासिमपुर, बहरौली, समेसी, करोर, सलेमपुर, दाहियर, जबरौली, मदेखर, मीरकनगर, निगोहां, गोसाँईगञ्ज, बक्कास, उतरांवा, कनिकहा और पुरहिया मिलाकर १८ मदर्से हैं। इन मदर्सों के सिवाय क़स्बाती मदर्से महोना, अमेठी, मोहनलालगञ्ज, मलिहाबाद और नगराम में हैं और एक मलिहाबाद मदर्से का ब्रेञ्च बख़्तियार नगर के नाम से बोला जाता है। म्युनिसिपल पाठशाला नौबस्ता मिडिलस्कूल, अलीगञ्ज प्राइमरीस्कूल मकतब इमदादी कोइहर बहरौली हैं। सरकारी स्कूल केवल मौडल स्कूल नार्मलस्कूल के बोर्डिंग हाउस के भीतर है। लड़कियों के पढ़ने के मदर्से मलिहाबाद व गोसाईंगंज में हैं और मुख्य नगर में ४ हैं॥ काकोरी में एक अंग्रेजी स्कूल मिडिल तक है। और लखनऊ नगर में नार्मल और इंडस्ट्रियल स्कूल के सिवाय जिसमें लोहार व बढ़ई आदिकों का काम सिखाया जाता है और कोई अंग्रेज़ी स्कूल सरकारी नहीं है। जो हैं सो इमदादी हैं जिनको कि सरकार कुछ सहायता देती है॥ ऐसे स्कूल १ जुबिली २ कोंस ३ चर्चमिशन ४ सिंटीनियल और ५ सदरबाज़ार हैं जिनमें इंट्रेन्स

तक की पढ़ाई होती है। ऐसे ही स्कूल और हैं जिन में १ हुसेनाबाद में हुसेनाबाद हाईस्कूल और २ नदी पार बादशाह बाग़ के समीप कालविन स्कूल तालुकदारों का है परन्तु यह "रिक्मनाइज़ड" हैं॥ इनसे ऊपर की पढ़ाई के लिये केनिंग कालेज, क्रिश्चियन कालेज, थीम्यन्स कालेज और लामार्टीनियर कालेज हैं जिनमें पहिला सब से बड़ा है और तीसरे में केवल स्त्रियों हीं की उच्च शिक्षा होती है। इन कालिजों में अन्तिम इलाहाबाद के विश्वविद्यालय से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता॥ इनके अतिरिक्त २ अंग्रेजों के स्कूल हैं जिनमें अधिकतर उन्हीं के बालक शिक्षा पाते हैं और और बहुत छोटे छोटे स्कूल हैं जिनमें किसी में मिडिल तक, किसी में लोवर मिडिल तक और किसी में केवल अपर प्राइमरी ही दर्जे तक की पढ़ाई होती है। ऐसे स्कूलों की गणना करना तो सम्भव नहीं है परन्तु यह कहा जा सकता है जो कोई पुरुष विद्वान् हो तो उसे यहां क्षुधापीड़ित न रहना पड़ेगा॥

८ राज्यानुशासन—यह ज़िला डिपुटी कमिश्नर या कलक्टर के आधीन है जो यहां के सब से बड़े हाकिम हैं। इनके आधीन ३ डिपुटी कलक्टर, ३ तहसील्दार, १ सिटी मजिस्ट्रेट और १ कन्टोन्म्यन्ट मजिस्ट्रेट रहते हैं जिनके समीप माल, चोरी व मारपीट आदि के अभियोग न्याय के हेतु आया करते हैं। अन्तिम दोनों कार्य्याधीशों के निकट केवल नगर और कन्टोन्म्यन्ट ही के ऐसे अभियोग आते हैं॥

९ तहसील व परगने—सुशासन होने के हेतु बृटिश इंडिया जैसे प्रिसिडेन्सी, भूभाग आदिक खण्डों मे विभक्त है वैसेही जिले भी माल व मारपीट की जाँच के हेतु भिन्न भिन्न खण्डों में विभक्त होते हैं। ये खण्ड तहसील कहलाते हैं और इनका अधिपति तहसीलदार इन्ही में रहता है। इन खण्डों के पुनः कई एक भाग होते हैं जो परगना कहलाते हैं॥ ऐसे खण्ड इस जिले में पहिले ४ थे जो कुर्सी, मलिहाबाद, लखनऊ और मोहनलालगंज की तहसीलें कहलाते थे और जिनके आधीन लखनऊ, काकोरी, महोना बिजनौर, कुर्सी, देवे, मोहनलालगंज, निगोहां, सिसेंडी, मलिहाबाद और

महोना के १० परगने थे । इन परगनों का विभाग इस प्रकार से था कि महोना कुर्सी के आधीन, मलिहाबाद और महोना मलिहाबाद के आधीन, लखनऊ, बिजनौर और काकोरी लखनऊ के आधीन और निगोहा सीसेंडी और मोहनलालगंज, मोहनलालगंज की तहसील के आधीन था परन्तु नूतन बन्दोबस्त से कुर्सी की तहसील तोड़कर उसके ३ परगनों में से कुर्सी व देवै बाराबंकी ज़िले में मिलाए गए और महोना मलिहाबाद में मिलगया । इसके बदले में मोहान का परगना उन्नाव ज़िले में चला गया तब से मलिहाबाद लखनऊ व मोहनलालगंज की ३ तहसीलें व महोना, मलिहाबाद, काकोरी, लखनऊ, बिजनौर, मोहनलालगंज और निगोहा के ७ परगने रह गए ॥

तहसील व परगनों का संक्षिप्त वर्णन ।

१ **तहसील मलिहाबाद**—यह तहसील लखनऊ के वायव्यकोण में स्थित है और सब से बड़ी तहसील है । इसके उत्तर में संडीला, बारी व रामनगर, दक्षिण में लखनऊ, पूर्व में नवाबगंज और पश्चिम में मोहान हैं । इसमें मलिहाबाद, इटौंजा, और मड़ियांव के ३ थाने, तलाव बख्शी, मड़ियांव, इटौंजा, मलिहाबाद, रहीमाबाद और कस्म के ६ डाकघर व १ औषधालय मलिहाबाद में है । मलिहाबाद, महोना, इटौंजा, भिठौली, बड़ी पुरियां हैं । मड़ियांव में पहिले नवाबी में छावनी रहती थी । मलिहाबाद व महोना इसके परगने हैं ॥

परगना मलिहाबाद-इस परगने के उत्तर में हरदोई, पश्चिम में काकोरी, पूर्व में लखनऊ व महोना है । ईशान कोन की ओर इसकी पृथ्वी बलुई है और बेता, झिरगी और अकबादी नदियों के आस पास सब ऊसर है जिस में सड़क बनानेवाले कंकड़ के सिवाय और कुछ नहीं पाते ॥ इस परगने में १९८ गांव या मोहाल हैं । अवध रुहेलखण्ड रेलवे की मुख्य लाइन इस परगने के तीरान्तर होकर जाती है और इसी नाम की नगरी में इसका एक स्टेशन है ॥

परगना महोना-के उत्तर में ज़िला सीतापुर, दक्षिण में परगना लखनऊ, पूर्व में बाराबंकी ज़िला और पश्चिम में परगना मलिहाबाद है॥ इस परगने में १६४ गांव या २३६ मोहाल हैं इसके ईशान में कंकरीली भूमि है जो कि झील व ढाखों से परिपूर्ण हैं और आग्नेय कोण की ओर पृथ्वी का अधिकांश ऊसर है, नैऋत्य की ओर भूड भरी हुई है॥

२ तहसील लखनऊ-लखनऊ की तहसील प्रान्त के मध्य में स्थित है। इसकी उत्तरी सीमा मलिहाबाद, दक्षिण की मोहनलालगञ्ज, पूर्व की नवाबगञ्ज व हैदरगढ़ और पश्चिम की महोना की तहसीलें हैं॥ यह ओ० आर० आर०, आर० के० आर० और बी० एन० डब्ल्यू० आर० लाइनों का केन्द्र है। गोमती कुकरायल और बेता इसकी नदियां हैं॥ इस तहसील में सआदतगञ्ज, दौलतगञ्ज, गनेशगञ्ज, वजीरगञ्ज, हसनगञ्ज, चौक, सदरबाज़ार, बंथरा और काकोरी को मिलाकर ९ थाने जिनमें, ७ मुख्य नगर में हैं) अमीनाबाद, चौक, हजरतगञ्ज, सदरबाज़ार, सआदतगञ्ज, रकाबगञ्ज, मन्सूरनगर, आगामीर की ड्योढ़ी, चारबाग, हरौनी, बिजनौर और चनहट के मिलाकर १२ डाकघर (तिन में ९ मुख्य नगर में) और गोलागञ्ज, बिक्टोरिया गञ्ज, हुसेनाबाद, हज़रतगञ्ज, चौपटिया, गनेशगञ्ज, आदिक ६, २ स्त्रियों के जोकि गोलागञ्ज व मीनाशाह की दर्गाह के निकट हैं और १ युनानी चौक का मिलाकर ११ औषधालय हैं। बिजनौर, लखनऊ और काकोरी इसके परगने हैं॥

परगना बिजनौर—यह परगना लखनऊ नगर व कन्टोन्मेण्ट के दक्षिण में है। इसके उत्तर से लखनऊ व काकोरी, दक्षिण में निगोहा व उन्नाव ज़िला, पूर्व में परगना मोहनलालगञ्ज और पश्चिम में उन्नाव ज़िला है। इस परगने में १०२ गांव या २०१ मोहाल हैं। यहां ऊसर बहुत है और इसकी भूमि पश्चिम की ओर ढ़ालू है जहां पर कि कई एक झीलों की माला सी बनी हुई है। सई और गोमती नदी से इसकी खेती का निर्वाह होता है। बिजनौर लखनऊ ज़िले में प्रसिद्ध नगरी है॥

परगना लखनऊ-इस परगने की उत्तरीय सीमा महोना पूर्वीय सीमा बाराबंकी प्रान्तर्गत देवे, दक्षिण की सीमा बिजनौर और मोहनलालगञ्ज और पश्चिम की सीमा मलिहाबाद है। इसमें १८० गांव या २९५ मोहाल हैं और सम्पूर्ण क्षेत्रफल १६५ वर्गात्मक मील है। यह परगना लखनऊ नगर को चारो ओर से घेरे हुए है और इसका स्वरूप एक अनियत आयत क्षेत्र के समान है। इस में गोमती नदी वायव्य कोण से लहराती हुई नैरृत्य की ओर बहती है जिसकी सहायक नदियां परगने में बेता और कुकरायल हैं जिनमें पहिली हरदोई ज़िले से निकलकर मलिहाबाद परगने से होती हुई कांकराबाद के निकट गोमती से मिल जाती है और दूसरी मौजा अस्ती से निकलकर लखनऊ में गोमती में गिरती है। गोमती के तटवर्ती ग्रामों को छोड़कर जहां कि केवल भूड़ही होती है अन्य स्थानों में अच्छी दूमट भूमि है। यह नगर अवध रुहेलखण्ड रेलवे लाइन का केन्द्र है जिससे कि मुख्य मुख्य शाखाओं के अनन्तर जो कि पूर्व से पश्चिम को जाती हैं एक और शाखा रायबरेली की ओर गई है जिसका बिस्तार उधर कानपुर को गया है। परगने के वायव्य कोणीय भाग के तीरान्तर आर० के० आर० लाइन भी जाती है और बी० एन० डब्ल्यू० आर० लाइन बहरामघाट से चलती है और कानपुर तक इसी लाइन के साथही साथ जाती है। इस में प्रसिद्ध स्थान लखनऊ नगर है॥

परगना काकोरी-लखनऊ ज़िले में यह परगना सब से छोटा है। इसके पूर्व में लखनऊ और पश्चिम में उन्नाव ज़िले का मोहान है जो कि लूनी नदी से जिसे नगवा कहते हैं विभक्त किया जाता है। इसके उत्तर में मलिहाबाद और दक्षिण में बिजनौर है। इस परगने का उत्तरीयार्ध गोमती व उसकी सहायक नदी बेता से सींचा जाता है और दक्षिणार्ध में नगवा नाला अपने जल से इसे सींचता है। यह मोहान के कुछ मील उत्तर से निकल कर काकोरी परगने से होता हुआ बिजनौर के परगने में गोमती से मिलता है। इसमें ६४ गांव या १०९ मोहाल है। ओ० आर० आर० की मुख्य लाइन इसी में से होकर जाती है और उसका एक स्टेशन भी

इसमें है। इस परगने में काकोरी एक बड़ी नगरी है और यहां अधिकतर यवनों का निवास है॥

३ **तहसील मोहनलालगंज**-के उत्तर में लखनऊ, दक्षिण में पुरवा व महराजगंज, पूर्व में हैदरगढ़ और पश्चिम में लखनऊ तहसीलें हैं। यहां मोहनलालगंज गोसाईंगंज के २ थाने, मोहनलालगंज, गोसाईंगंज, अमेठी, नैगराम, गुमानगंज और सिसे को मिलाकर ६ डाकघर और मोहनलालगंज व सलेमपुर के २ औषधालय हैं और इसी नाम की पुरी में ओ० आर० आर० लाइन का एक स्टेशन है। निगोहा व मोहनलालगंज इसके परगने हैं॥

परगना निगोहा-इसके उत्तर में मोहनलालगंज, पूर्व में रायबरेली की बछरावां तहसील और पश्चिम में बिजनौर का परगना हैं। इसके आग्नेय कोण में सई के किनारे किनारे बालु भरा है, दक्षिण में जंगल हैं और ईशान में निरा ऊसर है। सई और बाक के संगम के निकट भूड़ है। इस परगने में १२ फुट से अधिक जल कहीं नहीं हैं। इस में ५० गांव या ९२ मोहाल हैं। लखनऊ और रायबरेली लाइन इस परगने में से होती हुई जाती है और इसी पुरी में एक स्टेशन है॥

परगना मोहनलालगंज-के उत्तर में गोमती, पश्चिम में लखनऊ व बिजनौर परगने, दक्षिण में निगोहा और पूर्व में रायबरेली व बाराबंकी जिले हैं। परगने का केन्द्र ऊसरही भूमि से भरा हुआ है जोकि पूर्व से पश्चिम को जाती है। गोमती के तीर तीर इस में बालू है और दक्षिण ओर बहुतसी झीलें हैं जिनसे सीचने में सुगमता पड़ती है। झीलों के निकट की पृथ्वी भटियारी है और धान बहुत उत्पन्न होता है। इस में १७३ गांव हैं जिनमें २७४ मोहाल है। लखनऊ से रायबरेली को जानेवाली रेल इस परगने में से होकर जाती है और इसकी पुरी में एक स्टेशन भी है॥

प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन।

तहसील लखनऊ=में लखनऊ नगर गोमती के दक्षिण तट पर २६°-५२' अंशों के मध्य स्थित है परन्तु अब कुछ भाग नदी के

उत्तर का भी इसी में मिला लिया जाता है। इसका निवास दूर से देखने में तो बहुत सम्पन्न विदित होता है पर बस्ती बहुत कम है। पश्चिम की ओर तो प्राचीन निवास अब अधिक छिन्न भिन्न हो गए हैं केवल चौक से लेकर पूर्व ज्यों ज्यों सदर बाजार की ओर आओ त्यों त्यों अधिक जनाकीर्ण मिलता है। यहां के मुख्य निवासी अधिकांश यवन प्रतीत होते हैं क्योंकि हिन्दु भी जो यहीं के उत्पन्न हैं वे वेष भाषा आचरण आदि में तदनुकारी ही पाए जाते है। राजकीय प्रबन्ध रहने पर भी इस नगर की मलीनता तो नहीं जाती पर नागरिक जन वेष और भाषा में अति स्वच्छ हैं जिससे मूर्ख और निर्धन भी गुणवान और धनी भासता है। पारसी भाषा यहां के जनों की मातृभाषा मानी जाती है। व्यापार चर्चा तो यहां पर नाम को नहीं है यदि कुछ है भी तो खत्री, अगरवाले, रस्तोगी आदि कुछ जातियों में, पर शिल्पकारी यहां की प्रशंसनीय है जैसे चिकन, कामदानी के पान टोपियों के पल्ले, चांदी सोने के आभरण व भाजन कलई मीनाकारी व पच्ची का काम मुसव्विरी आदि आदि का काम उत्तमोत्तम होता है। यहां के राव रंक सभी निज पूर्व पादशाह वाजिद अलीशाह के स्मारक चिन्ह व्यसन समूहों को चिरस्थापित रखने की चेष्टा किया करते हैं जिनकी गणना शारदा भी नहीं कर सकती पर निदर्शनमात्र कुछ लिखे जाते हैं जैसे कवियों की बैतबाजी और सब गुणी मूर्ख धनी निर्धन जनों की तो बटेर कबूतर तित्तिर मुर्ग पतंगबाजी, गंजीफा चौपर शतरंज ताशबाजी अफ़ीम चर्स मदिरा द्यूत वेश्या आदि बाजी इत्यादि जिसके कारण अवध की राजधानी भी होकर, यह नगर बुभुक्षितों का आगर हो रहा है॥

नगर रक्षा के हेतु सरकार ने प्रहरी जनों का एक दल बादशाह बाग में स्थापित किया है जो कि २ भागों में बिभक्त होकर एक भाग कोतवाल की आज्ञानुसार छः थानों में निज निज थानेदार की सहायता से नगर रक्षा करता है और दूसरा भाग न्यायलयों के अधिकारियों की साहाय्य कोशरक्षा बन्दीगृह पालन करता है। इन दोनों भागों में भेद यह है कि प्रथम निरस्त्र और द्वितीय सास्त्र रहता है। कोतवाल सहायक थानेदारों के सहित

स्वीयानुचर प्रहरियों के द्वारा चोर आदि से नगर रक्षा करते हैं ॥ और भी एक वृहत्सेना हिन्दुस्तानियों की, एक अंग्रेज़ों की, एक अश्वारोही दल और तोपखाना आदि युद्ध के सामान सदा सज्जित रहते है जो समय समय पर बाहर भी जाया करता है॥ यहां पर प्राचीन और नवीन स्थानों से ये स्थल दर्शनीय हैं, बड़ा इमामबाड़ा, रूमीदरवाज़ा, हुसेनाबाद, छतरमंजिल, शाह नज़फ, ला मार्टीनियर कालेज, नवीन न्यायालय, बादशाहबाग, बनारसीबाग, बिक्टोरियाबाग, और नहर के दक्षिण तटस्थ दोनों राजकीय दुर्ग हैं। इनके अतिरिक्त अभी बहुत से स्थान दर्शनीय और प्रसिद्ध, छिन्न भिन्न अवशिष्ट पड़े हैं। यहां एक पागलखाना है जिसमें बिक्षिप्त पुरुषों का पालन पोषण होता है॥ इस नगर में ४ कालिज और ७ हाईस्कूल हैं जिन में से १ कालेज बालिकाओं का, अपर ३ बालकों और १ हाईस्कूल केवल राजकुमारों की शिक्षा के हेतु गोमती के उत्तर तट पर बना है। अन्य सब सर्व साधरण के लिये दक्षिण भाग पर हैं । मिडिलस्कूल और अपरप्राइमरी स्कूल तो बहुत है पर इन सब स्कूलों में सरकार कुछ साहाय्य देती है। अपर सब व्यय उन्हीं पर निर्भर है । सरकार के व्यय से तो नार्मल स्कूल और इंडस्ट्रियल स्कूल चलते हैं । यहां एक नृत्य पाठशाला बिंदादीन कत्थक की ओर से झाऊलाल की बज़ार के निकट है जिसमें दूर दूर की वेश्या व कत्थक आकर शिक्षा पाते हैं ॥ यहां पर डिपुटी कमिश्नर का दफ्तर, सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, ट्रेज़री आफ़िस, मुंसिफी [उत्तर और दक्षिण की] सेशन जज, जुडिशल कमिश्नर, अदालत मातहेत, डिस्ट्रिक्ट जज, डिपुटी कलक्टर का दफतर, रजिस्ट्रार का दफतर, डैरेक्टर आफ़ लैण्ड रेकर्डस, इंस्पेक्टर आफ स्कूलस, असिस्टंट इन्स्पेक्टर आफ स्कूल, इंस्पेक्टर जेनरल आफ सिविल हास्पिटलस, इन्स्पेक्टर जेनरल आफ प्रिज़िनस कमिश्नर का दफतर, कण्टोनमेण्ट मजिस्ट्रेट, स्टोर कीपर, कमसरियट ओपियम एजण्ट का आफिस, पोस्टमास्टर जेनरल का दफ़तर, सिटी मजिस्ट्रेट, म्यूज़ियम ओफिस, इक्ज़क्यूटिव इंजीनियर, सुपरिण्टेण्डेण्ट हार्टिकल्चरल गार्डेन, नज़ूल, म्युनिसिपेलटी, डिपुटी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, कन्सल्टिंग इंजीनियर, बंगाल बंक, इलाहाबाद बंक, सिविल

चक्रवर्ती, बा० भगवनदास, बा० ठाकुर प्रसाद और बा० श्यामसुन्दर दास, इस कमेटी ने शेष सब कार्य को समाप्त किया। अब वैज्ञानिक कोश पुन: छपने लग गया है। प्रति नम्बर अलग अलग छापा जायगा और एक आने फर्मे के हिसाब से उसका दाम होगा। जिन्हें उसे लेना हो ग्राहकश्रेणी में अपना नाम लिखवा दें-ज्यों ज्यों छपता जायगा उनके पास भेज दिया जायगा।

(७) सन १९०४ के मेडल के लिये निम्न लिखित विषय नियत किए गए हैं (१) किण्डर गार्टेन की शिक्षा (२) जापान का इतिहास (३) भूतत्त्व विद्या (४) अर्थशास्त्र।

(८) पृथ्वीराजरासो का ८, ९, १०, और ११ वां समय छप गया है। ग्राहकों के पास शीघ्र भेजा जायगा। पहिले समय की जितनी प्रतियां थी सब बिक गई अब वह पुन: छापा जा रहा है।

(९) सभासदों का जो फोटो १९ फर्वरी को लिया गया था वह अभी फोटोग्राफर के यहां से नहीं आया है-जो सभासद उसे लेना चाहेंगे उनके पास वह आतेही भेज दिया जायगा। उसका दाम १॥) वा २) रु० होगा।

(१०) नागरीप्रचारिणी ग्रन्थमाला का अगला नम्बर अभी छपकर तयार नहीं हुआ है। छपते ही अधिकारी सभासदों के पास भेज दिया जायगा।

नवीन अधिकार प्राप्त सभासद।

(१) राय प्रल्हाद दास, काशी

७ अप्रैल १९०२-(१) बाबू ज्वाला प्रसाद मथुरा

२५ जूलाई १९०३-(१) बाबू नारायण प्रसाद, मुरादाबाद

२६ सितम्बर १९०३-(१) पण्डित रामसहाय शर्म्मा, शाहाबाद (२) महाराज कुमार लाला रघुनाथ प्रसाद सिंह, जि० गोरखपुर (३) बाबू संकटा प्रसाद, काशी।

३१ अक्तूबर १९०३-(१) पण्डित जगदीश्वर प्रसाद ओझा, जि० दरभङ्गा (२) बाबू भवानी प्रसाद गुप्त, बिजनौर (३) पण्डित दीन दयाल शर्म्मा, जि० सीतापुर (४) पण्डित माधव प्रसाद पांडेय,

फ़ैज़ाबाद (५) बाबू कड़ेदीन सिंह जि० प्रतापगढ़ (६) पण्डित, अज्जनी सहाय शुक्ल, जि० खीरी (७) सेठ मथुरा प्रसाद, हरदोई (८) पण्डित चन्द्रशेखर मिश्र, हरदोई (९) बाबू भगवती सहाय, बांकीपुर (१०) पण्डित सूर्य कुमार मिश्र, हरदोई (११) बाबू मन्ना लाल, हरदोई (१२) बाबू प्यारे लाल, हरदोई (१३) बाबू गोकुल प्रसाद पाठक, सुलतांपुर (१४) बाबू गंगा प्रसाद, शाहाबाद।

२८ नवम्बर १९०३-(१) पण्डित दुर्गा प्रसाद पांडे, रायपुर (२) पण्डित राम अधीन पांडे, जबलपुर (३) बाबू मक्खन लाल गुप्त, इटोला (४) राय देवी प्रसाद, कानपुर (५) पण्डित दीनदयाल, शाहाबाद (६) बाबू बन्दीदीन गुप्त, जि० उन्नांव (७) पण्डित सुन्दर लाल शर्म्मा, इटावा (८) बाबू शारदा प्रसाद, जि० मथुरा (९) पण्डित गोपाल सदाशिव आपटे, काशी (१०) बाबू गंगा प्रसाद गुप्त, काशी (११) पण्डित कृष्णाजी नारायण साटे, काशी (१२) बाबू जमुना दास, काशी।

२६ दिसम्बर १९०३-(१) पण्डित हरप्रसाद शर्म्मा, बुलन्दशहर (२) बाबू राधाचरण, ओरई (३) बाबू बिट्ठल दास, मुरादाबाद (४) पण्डित अनन्त राम पांडे, रायगढ़ (५) बाबू पन्ना लाल जैन, बम्बई (६) बाबू राधाकृष्ण, लशकर (७) पण्डि विश्वानाथोपाध्याय, श्रीनगर (८) पण्डित माधव राव विनायक किटे, इन्दोर (९) गोस्वामी ब्रजनाथ शर्म्मा, आगरा (१०) बाबू मकुन्द राम, हरदोई (११) बाबू सरजू सिंह, काशी (१२) बाबू कालिदास मित्र, काशी

३० जनवरी १९०४-(१) बाबू जंगबहादुर सिंह, जि० बनारस (२) बाबू ब्रजमोहन लाल, बलरामपुर (३) पण्डित केदार नाथ पाठक, मिर्ज़ापुर (४) बाबू सतगुरु सहाय निगम, जि० सीतापुर (५) बारहट कृष्ण सिंह जी, जोधपुर (६) लाला गिरधारी लाला बहरा, लाहोर (७) बाबू कालिका सिंह, जि० बनारस (८) बाबू गणेश प्रसाद भार्गव, काशी (९) ज्योतिर्विद मन्नूदेव शर्म्मा, कशी (१०) बाबू गौरी शङ्कर, काशी (११) पण्डित बद्रीनाथ वैद्य, काशी (१२) बाबू सोभागचन्द वस्तावन्द, काशी (१३) पण्डित भोला नाथ पाठक, काशी (१४) बाबू राधाकृष्ण वर्म्मा, काशी (१५) लाला मंगलराय काशी।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक—श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न

हरिश्चन्द्र।

भाग ८ } जून सन् १९०४ ई० { संख्या ४

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)

वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस

मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 11th June, 1904.

सभा सम्बन्धी समाचार ।

(१) सभा के साधारण मासिक अधिवेशन ता० २६ मार्च ३० अप्रैल और २८ मई को हुए थे । इनमें सब मिलाकर ४० महाशय नवीन सभासद चुने गए और प्राइवेट स्कूलों के भविष्यत पर कई व्याख्यान हुए ।

(२) १८ अप्रैल को सभा का एक विशेष अधिवेशन हुआ था जिसमें १४वें नियम का संशोधन किया गया । इसकी सूचना इस पत्रिका के साथ अलग भेजी जाती है ।

(३) सभा ने ग्वालियर के विद्यार्थियों में तीन पारितोषिक ५) ३) और २) रु० के और ६ प्रशंसापत्र उत्तम नागरीलिपि के लिये देना स्वीकार किया है । इसे वहां के शिक्षा विभाग ने स्वीकार कर लिया है ।

(४) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की दूसरी रिपोर्ट भी गवर्मेंट ने छापकर प्रकाशित कर दी है और सभा से चौथी रिपोर्ट गवर्मेंट के पास भेजदी गई है ।

(५) इस वर्ष भी संयुक्त प्रदेश के ग्रामीण स्कूलों में नागरी हस्तलिपि की परीक्षा हुई और यथानियम पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए गए । पण्डित रामनारायण मिश्र ने श्यामो नाम की वालिका को २) रु० विशेष पारितोषिक दिया ।

(६) सभा ने इस वर्ष "मंगलग्रह" शीर्षक लेख पर पण्डित अच्युत प्रसाद द्विवेदी बी० ए० को पदक देना निश्चय किया है ।

सर्जन का दफतर, तहसीली, डिस्ट्रिक्ट ट्राफ़िक सुपरिण्टेण्डेण्ट, इक्ज़ामिनर आफ अकौण्टस, लोको आफ़िस, रेलवे इंजीनियर और गवर्नमेण्ट टेलीग्राफ आफ़िस आदिक हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से अंग्रेज दूकानदारों के दफतर हैं और बरफ, मैदा, कागज, पानी, लोहा आदि के कारखाने भी हैं। यहां पर छोटे बड़े सब मिलाकर १० औषधालय हैं जिनमें से दो केवल स्त्रियों के हैं। यों तो इस नगर में प्रति मास दो चार मेले होतेही रहते हैं पर इतने मेले प्रसिद्ध हैं। चैत्रकृष्ण ८ को शीतला का मेला, ज्येष्ठकृष्ण में प्रथम मंगल को अलीगंज में महाबीर का मेला, भाद्रशुक्ल में आदित्यबार को भैरवजी का मेला, इसी दिन रात्रि को नृत्यशिक्षक बिन्ददीन का यहां नृत्य होता है। माघ शुक्ला ५ को मीनाशाह की दर्गाह का मेला और सबसे बढ़कर हिन्दू मुसल्मानों के अभीष्ट इमामहुसेन का मुहर्रम का मेला अत्यन्तही दर्शनीय होता है जिसे देखने के लिये बहुत दूर दूर के जन आते हैं॥

तहसील मोहनलालगंज-में अमेठी में बड़े बड़े मुसल्मान होगए हैं। यहां बन्दगी मियां की दरगाह है और आलमगीर के उस्ताद मुल्ला जीवन यहां पैदा हुए थे। बक्कास और सलेमपुर में गोमती स्नान का मेला होता है, गोसाईंगंज में आठों का मेला होता है, बहरौली और खुजौली में उर्स का मेला होता है॥ परगना निगोहा में मौज़ा राती के निकट कार्तिकी का मेला होता है। इसी परगने में बद्यौना मौज़े में एक ताल है जिसकी भूमि का यह गुण है कि उसके जल से नहवाने से लड़कों का सूखी का रोग दूर होजाता है। यह क्रिया केवल रबि और भौमवार को होती है॥

तहसील मलिहाबाद-में मलिहाबाद के आम और बेर प्रसिद्ध हैं। यहां तुलसीदासजी की लिखी हुई रामायण की पोथी विद्यमान है जिसके दर्शन को हिन्दू दूर दूर से आते हें। तहसील

लखनऊ में काकोरी में उर्स तुराबअली शाह का मेला बड़ी धूम से होता है। बिजनौर में शकुन्तला पैदा हुई थी॥

नगरी व पुरी—लखनऊ नगर को छोड़ कर और इस प्रान्त में कोई बड़ी नगरी नहीं हैं जिसकी कि लोकसंख्या ५००० या इससे अधिक हो। केवल बिजनौर, नगराम, महोना, कसमंडी, मलिहाबाद काकोरी और अमेठी बड़ी बड़ी पुरियां हैं जो लोकसंख्या में न्यून हैं॥

गोरखपुर ज़िले का संक्षेप वृत्तान्त।
(पण्डित नरेशप्रसाद मिश्र लिखित।)

सीमा—इस ज़िले के उत्तर में राज्य नेपाल की तराई का दक्षिण भाग, दक्षिण में घाघरा यानी सर्यू नदी, पश्चिम में ज़िला बस्ती और पूरब में सारन का ज़िला है। यह २६ से २७ $\frac{1}{2}$ तक उत्तर अक्षांश और ८२ से ८४ तक पूर्व्व देशान्तर में फैला है। इस ज़िले का क्षेत्र-फल ४५८५ वर्गात्मक मील है। यहां सन १८८१ ईस्वी की गणनानुसार २६१७१२० मनुष्य बसते हैं। इस ज़िले की लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक १०० मील के लग भग है और चौड़ाई पूर्व्व से पश्चिम तक ७५ मील है। छप्पर बन्द छोटी छोटी बस्तियां १५८००७ के लगभग हैं॥

गोरखपुर नाम पड़ने का कारण।

शहर गोरखपुर में एक तपस्वी जिनका नाम गोरखनाथ जी था रहते थे। ये योगाभ्यास में परम प्रवीण थे। यह मछेन्द्रनाथ के चेले थे परन्तु इनकी विभूति अपने गुरु की विभूति से अधिकतर चलती थी क्योंकि बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि किसी समय मछेन्द्रनाथ जी भ्रमण करते करते लंका में पहुंच गए और वहां जाकर रहने लगे सो इनका मन यहां इतना अटका कि अपनी कुटी और चेलों इत्यादि को भूल गए। लोग यहां तक भी कहते हैं कि वह किसी राजकुमारी की प्रीति में बझ गए थे। इस बात को सुनकर श्री गोरखनाथ जी लंका को गए और वहां जाकर बोले 'जागु जागु मछेन्द्र गोरख आया' फिर उनको साथ लेकर चले तो देखते क्या हैं कि मछेन्द्रनाथ जी अपनी गुदड़ी में अशर्फ़ी भरे हैं।

इस समय अपना तपोबल दिखाने के लिये गोरखनाथ जी ने एक पहाड़ पर लघुशंका की धार मारी कि उस पहाड़ का जो भाग मूत्र से भिगा सारा सुवर्ण हो गया। मछेन्द्रनाथ जी अपने चेले के इस कर्म को देख कर अति विस्मित और ठठकेसे रह गए। तब से गोरख-

नाथ जी का नाम संसार में और प्रसिद्ध हुआ। इस कारण से इनके नामानुसार इस नगर का गोरखपुर नाम प्रगट हुआ। गोरखनाथ के तीन चेले थे पहिला भर्तृहरि दूसरा गोपीचन्द और तीसरा पूर्ण जो दिल्ली के किसी मुसलमान बादशाह का लड़का था। सारे नेपाली इन्हीं के घराने के चेला होने से अपने को गोरखा कहते हैं। सब कनफटे योगी इन्हीं के पन्थावलम्बी हैं। अब गोरखनाथ की गद्दी पर एक महन्त हैं जो साधुता भाव को छोड़ कर महाराजों की नाईं रहते हैं। इनके अधिकार में कुछ ज़मीन भी है जो सरकार अंगरेज़ बहादुर की ओर से माफ़ी है। एक अति सुहावना और दिव्य मन्दिर शहर के उत्तर ओर बना है जिस में गुरु गोरखनाथ की समाधी है। यहां पर महन्त की ओर से एक पुजारी नियत है जो समाधी की पूजा करता है। यहां वाले अपने बच्चों का मुंडन गोरखनाथ के स्थान पर करवाते हैं और उनके नाम पर खिचड़ी और लोहे का त्रिशूल चढ़ाते हैं। महन्त जी सदैव मठ में रहते हैं और फाल्गुन के महीने में धुलहड़ी के दिन बाहर निकलते हैं। उस दिन वहां बहुत भीड़ होती है और बहुत पूजा चढ़ती है॥

अधिकार के विषय में॥

यह सारा ज़िला पहिले कोशल राज्य में शामिल था जिसे राजा वैवस्वत मनु ने बसाया था। जब वह बंश बलहीन हुआ और उसका पराक्रम घट गया तब इस ज़िले को काशी के राजा ने अपने अधिकार में कर लिया। फिर थोड़े दिन के अनन्तर काशी के राजा को इस ज़िले से गोरखनाथ के चेलों ने निकाल दिया। कुछ काल तक गोरखे भी इस ज़िले में अधिकार रखते थे। पर उत्तर के पर्वतों से थारुओं ने आकर उन्हें भी निकाल बाहर किया और अपना राज्य सरयू के उत्तर किनारे तक स्थापित किया। उनके मन्दिरों के देखने से मालूम होता है कि बहुत पुराने समय अर्थात् सन् ७०० ईस्वी में वे इस प्रान्त में राज्य करते थे। ब्राह्मण राजपूत और भरों ने थारुओं को भी निकाला। मुसल्मानों का अधिकार होने से पहिले यह सारा ज़िला श्रीनेत राजपूतों के अधिकार में था। कोशल

का शेष भाग कन्नौज के राजाओं के अधिकार में था। यद्यपि यहां के राजा मुसल्मानों की प्रजा कहलाते थे पर मुसल्मान बादशाहों के आधीन कभी नहीं हुए। वरन अपने अपने गढ़ों में स्वतंत्र पृथक पृथक राज्य करते रहे। सन् १८०२ इस्वी में अवध के नवाब ने इस ज़िले को सरकार अंगरेज़ के हवाले किया। उसी समय से इस ज़िले की उन्नति हुई और आबादी बढ़ती चली। अब इस ज़िले में बन केवल ५०००० एकड़ है। पहिले आज़मगढ़ भी इसी ज़िले में शामिल था पर सन् १८३० इस्वी में वह अलग ज़िला बनाया गया। बस्ती का ज़िला भी इसी में शामिल था परन्तु यह भी अब एक पृथक ज़िला नियत हो गया है। बस्ती के ज़िले के मुक़दमें भी गोरखपूर के जज के यहां सुने जाते हैं। यहां की सारी पृथ्वी समधरातल है सिवाय उस धूस के जो परगने तिलपुर में ५० फ़ीट ऊंची है। यहां की धरती में बालू और मिट्टी मिली है और बहुत उपजाऊ है पर यह मिट्टी बहुत नीचे तक नहीं है। इस ज़िले में सींचना कम पड़ता है क्योंकि पानी बहुत निकट रहता है। अब ज़मीन इस ज़िले की कमज़ोर होती जाती है जिससे पैदावार कम होती है। पर नई ज़मीन जो जंगल काट कर तैयार की गई है बहुत उपजाऊ है। धरती की पैदावार कम होने का कारण गौओं का कम होना है॥

जल वायु और ऋतुओं के विषय में।

यहां का जल वायु ठंढा है पर जंगलों के कट जाने से कुछ बदलता भी जाता है। ऋतु इस भाग में छओ अर्थात् सरद शिशिर हेमन्त वसन्त ग्रीष्म और पावस सब जगह समान होती है॥ इस ज़िले में ११ परगने ६ तहसीलें और ३ मुन्सफियां हैं॥

नदियों के विषय में।

१ सर्यू—हिमालय पहाड़ में भागेश्वर से निकल कर इस ज़िले में बहती हुई सेमरिया बाज़ार ज़िले आरा के निकट गंगा में मिली है। ६०० मील बही है। इस ज़िले के मुख्य स्थान शाहपुर गोपालपुर गोलाबाज़ार बड़हलगंज बरहज और भागलपुर हैं॥

२ रापती—तराई से निकल कर इस ज़िले में बहती हुई मौज़ा

रामपुर परगना सलेमपुर मझौली के पश्चिम सर्यू नदी में मिली है ॥ इस के किनारे धानी गोरखपुर खास और गजपुर प्रसिद्ध स्थान हैं ॥

३ बड़ी गंडक या नारायणी-हिमालय पहाड़ के मुक्तिनाथ से निकल कर इस ज़िले में बहती हुई माझी के निकट जो ज़िले सारन में है गंगा में मिली है ॥

४ छोटी गंडक-नेपाल में बुटवल के पहाड़ से निकल कर इस ज़िले में बहती हुई गोठिनी घाट ज़िले सारन में सर्यू से मिली है । २०० मील के लगभग बही है ॥ इस के किनारे सिसवा बाज़ार, रगरगंज, वैकुंठपुर हतवा (भटनी स्टेशन) मझौली और सलेमपुर मुख्य स्थान हैं ॥

सिवाय इन बड़ी नदियों के इस ज़िले में छोटी छोटी नदियां बहुतायत से हैं जिन के नाम ये हैं ॥

झरही कुशली फरेन्दा मझने कुआने तरैना गोरा तुरा खनुआ घाघो रोहिण धमेला सवन सियाही आमी नकटा कुर्ना और इलार ॥

झील और ताल के विषय में ।

१ भेड़ी ताल-यह ताल तहसील बांसगांव में बड़हल गंज के उत्तर बरसात में ५ मील के लगभग लम्बा और ४ मील के लगभग चौड़ा हो जाता है ॥

२ रामगढ़-यह ताल शहर गोरखपुर से लगा हुआ पूर्व्व की ओर १½ मील लम्बा और इतनाही चौड़ा है ॥

३ डोमिन गढ़-यह ताल शहर गोरखपुर से मिला हुआ पश्चिम ओर १ मील लम्बा और इतनाही चौड़ा है ॥

४ अमियार ताल-परगने भौआ पार में क़रीब २ मील लम्बा और एक मील चौड़ा है ॥

५ नदौर-यह ताल ३ मील लम्बा और १ मील चौड़ा है ॥

पैदावार के विषय में ।

इस ज़िले में खरीफ़ (कुआरी) और रबी (चैती) की दो फसलें होती हैं और कहीं कहीं तीन फसलें भी हो जाती हैं । गल्ला तरकारी और फल बहुतायत से उपजते हैं परन्तु चावल यहां की मुख्य

पैदावार है। इस ज़िले में जव बाजरा ऊख चना पोस्ता नील रुई उर्द सरसों तीसी तिल रेंड़ी कोदो टागुन सांवा बजड़ी कपास केरा अरहर मसुरी और कई प्रकार के धान और तरकारियां जैसे आलू गोभी परवर सेम भंटा नेनुआ तरोई बंडा अरुई मुरई भिंडी लहसुन पियाज़, अदरक हरदी और मसाला जैसे सौंफ धनिया मेथी अजवाइन और अनेक प्रकार के फल जैसे आम कटहल बड़हल लीची नाशपाती अनन्नास सफ़तालू इत्यादि वहुतायत से पैदा होते हैं॥

जीव जन्तु कीड़े मकोड़ों के विषय में।

इस ज़िले के जंगलों में सांप बिच्छू विषखोपड़े आदि विषैले जीव बहुत हैं कि जिनके काटने से मनुष्य तुरन्त मर जाते हैं और अजगर भी इस ज़िले के जंगलों में १० फीट तक लम्बे देखे गए हैं और एक कीड़ा जिसको लोग गेडुर कहते हैं बहुधा आम की गुठलियों में रहता है। यदि मनुष्य भूल से उन गुठलियों के साथ उस को खा जाय तो वह तुरन्त मर जाता है। मेरी समझ में वह कीड़ा साक्षात् काल भगवान का अवतार है।

इस ज़िले के बनों में अनेक प्रकार के मृग रहते हैं उनमें हरिण बारहसिंघा अरना भयसा भेड़िया सूअर आदि मुख्य हैं। अभी ६० ही वर्ष व्यतीत हुए होंगे कि यहां के बनो में चीता रीछ बाघ और हाथी भी पाए जाते थे परन्तु अब बनों के कटने से वे तराई की ओर चले गए हैं॥

बहुत प्रकार के सर्प इस ज़िले में पाए जाते हैं इन में प्रसिद्ध गोहुअन करइता सोन बरोरी और धूथर हैं॥

पक्षियों के विषय में।

इस ज़िले में कई प्रकार के पक्षी होते हैं जिन में भंगराज शामा हरेवा पिद्दा नंदुर अगिनलाल अबलक़ा दहिगल पीलक पवई काला-तीतर और सुगा आदि मुख्य हैं॥

पालतू जानवरों के विषय में।

गाय बैल भैंस घोड़ा हाथी ऊंट हरिण नील गाय कुत्ता बाघ बकरी भेड़ और गदहा इस ज़िले के पालतू जानवरों में प्रसिद्ध और मुख्य हैं।

मार्ग और टिकने के स्थानों के विषय में।

गोरखपुर से आज़मगढ़ ५८ मील दक्षिण है। इन दोनों शहरों के बीच में जो पड़ाव हैं उनके नाम ये हैं——

१ बेलीपार, २ कौड़ीराम, ३ गगहा, ४ बड़हल गंज। यहां से गोरखपुर २७ मील है॥

गोरखपुर से तुलसीपुर वायुकोण पर ७७ मील है॥

पड़ाव—१ बरई पार, २ बाखिरा, ३ गोठहा, ४ बांसी, ५ महदेवा, ६ विसकोहर॥

गोरखपूर से सुगौली जहां कि सरकार अंगरेज़ बहादुर के साथ नेपालियों ने सुलह की की ८४ मील ईशान कोण पर है जिसमें १ पड़ाव पिपरायच, २ क़प्तानगंज, ३ रामकोला, ४ पड़रौना, ५ तिलपुर जो गंडक के किनारे है॥

गोरखपुर से छपरा ११० मील पूरब है। १ पड़ाव चौरी चौरा, २ देवरिया, ३ मुसैला, ४ सलेमपुर, ५ गोठिनी है॥

गोरखपुर से बुटवल ८० मील उत्तर है १ पड़ाव फादहन, २ मिर हिरिया, ३ बेलाहरैया, ४ लोटन ५ रसि आवल है॥

गोरखपुर से बस्ती पश्चिम को है १ पड़ाव कांटे है बाद से बस्ती ज़िला शुरू हो जाता है॥

रेल्वे लाइन के विषय में।

इस ज़िले के अन्तर्गत बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे और उसकी शाखाएँ हैं। मेन लाइन सन १८८३ इस्वी में और उसकी दक्षिणी शाखा भटनी से बनारस को सन् १८९५ इस्वी से खुली है। और बनारस ब्रांच से एक शाख़ बरहज बाज़ार को सन १८९५ में खुली है॥

मेन लाइन के स्टेशनों के नाम——

१ डोमिन गढ़, २ गोरखपुर (आमद रवानगी) ३ कुसुम्ही, ४ चौरी चौरा, ५ गौरी बाज़ार, ६ तहसीलदेवरिया, ७ नूनखार भटनी (आमद रवानगी) भाट पार, १० बनकटा (फ़्लैगस्टेशन)॥

बनारस ब्रांच स्टेशनों के नाम जो इस ज़िले ये हैं——

१ भटनी (ग्रामदरवानगी), २ सलेमपुर, ३ लाररोड, और ४ तुर्तीपार हैं।

बरहज ब्रांच के स्टेशनों के नाम,–

१ सलेमपुर, २ सतरांव ३ और बरहज बाज़ार।

सिवाय इन लाइनों के एक और नई लाइन भटनी स्टेशन से उत्तर के राज्य तमकुही होती पड़रौना और बेतिया को जानेवाली है, जिसकी खूंटी इत्यादि गड़ गई हैं पर काम अभी बन्द है।

रीति सिंचाई के विषय में।

यहां खेतों की सिंचाई कूए, ताल और नदियों से होती है और किसी स्थान में सिंचाई की आवश्यकता भी नहीं होती है जिसे भाठमाटी कहते हैं।

सेर, पन्सेरी और धरती के माप के विषय में।

शहर गोरखपुर में दो तरह का सेर चलता है। गोले में ३६ गंडे का, दुकानों पर ३२ गंडे का और बाहर २५ गंडे का। तहसील देवरिया में १४ गंडे के सेर का प्रचार है और कहीं कहीं अट्ठाइस गंडे के सेर का प्रचार है। इन सेरों के सिवाय शास्त्रानुसार जो सेर आदि हैं उनका भी प्रचार इस ज़िले में है। ३०$\frac{1}{2}$ गंडे की रजिया और २५ गंडे की काठ की सेइ बनी रहती है जिससे ग्रामीण लोग अपना अन्न मापते हैं। ६$\frac{1}{4}$ गंडे का मान होता है जिसको पाव की जगह चलाते हैं। ३ गज़ का गट्ठा होता है और बीस गट्ठे की जरीब होती है जिससे धरती को मापते हैं।

बुद्धि, बल, विद्या और चालाकी के विषय में।

बहुधा इस प्रान्त के लोग अनपढ़े और मूर्ख हैं परन्तु किसी अन्य देशी से बात करते समय अपने को परम चतुर और गुणज्ञ दर्साते हैं। अब सर्कारी और एडेड स्कूलों के द्वारा जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की अनुमति से स्थापित हैं कुछ कुछ लोग हिन्दी और उर्दू जानने लगे हैं। संस्कृत का प्रचार सिर्फ़ दीन ब्राह्मणों में है। सो भी नाममात्र को, क्योंकि अब दरिद्र ब्राह्मणों के लड़के पढ़ने के व्याज से काशीजी को प्रस्थान करते हैं और वहां पहुंचने पर

अनेकों प्रकार के दुष्कर्म करके द्रव्य उपार्जन करने लगते हैं और लोगों को दिखाने के लिये लघुसंग्रह अथवा सारस्वत की पोथी मोल ले लेते हैं और मंगलाचरण का एक श्लोक तोते की न्याईं रट लेते हैं। जब ये महाशय अपने परिवार में पुनरागमन करते हैं तो उनके मध्य में अपने को षटशास्त्री मानते हैं क्योंकि परिवारवाले बिचारे बहुधा अनपढ़े होते हैं। ब्राह्मणों में जो लक्ष्मीपात्र हैं वे संस्कृत को दरिद्र विद्या मान कर पढ़तेही नहीं। रहा सहारा हिन्दी का, सो टके की दो तीन पुस्तकों को पढ़कर अपने को बृहस्पति से भी बढ़कर मानते हैं और बात करते समय अपने को परम ज्ञानी और अद्वैत-वादी दर्साते हैं। परन्तु ये लोग वास्तव में नास्तिक के परदादा और हृदय शून्य हैं। यदि इन लोगों को कोई अंगरेज़ी अध्ययन करने को कहे तो उसको निश्चरी विद्या कह कर त्याग देते हैं और कहते हैं कि मुझे नौकरी नहीं करनी है। तात्पर्य यह कि ये लोग अंगरेज़ी विद्या को नौकरी का द्वार निश्चित करते हैं। अंगरेज़ी स्कूल और कालेज भी इस ज़िले के प्रधान स्थान पर स्थापित हैं जहां एफ़० ए० तक पढ़ाया जाता है। यहां दो चार पुरुषों ने बी० ए० डिगरी प्राप्त की है परन्तु एम० ए० तक अभी कोई भी नहीं पहुंचा है।

यहां के लोग उत्साहहीन हैं यदि कोई कुछ उत्साह करे तो उसमें सहायता नहीं करते बल्कि उस पुरुष की चुटकी लेते हैं। द्वेषता इन लोगों में इतनी प्रबल है कि सगे भाई को 'चौथ चन्द्र' की न्याईं त्याग देते हैं। चालाकी इन लोगो में इतनी है कि धूल की रस्सी बटते हैं। जल वायु के अच्छे होने से यहां के मनुष्य पुष्ट और बलवान होते हैं।

बाहर और इस ज़िले की वस्तुओं के आने जाने के विषय में।

तीसी, चीनी, अफयून, चावल, गल्ला, लकड़ी, चमड़ा, और सींग इस ज़िले से बाहर को जाती हैं। छीट, कपड़ा, रुई, नमक, बरतन, मसाला, लोहा, गोरखपुरी पैसा, मधु पहाड़ी, मसाला, कस्तूरी और चंवर आदि बाहर से आते हैं।

यहां के ब्राह्मणों के विषय में ।

* सरवार अर्थात सर्यूपार (सर्यू के उत्तर भाग) के ब्राह्मण तो प्रसिद्ध ही हैं और इनकी प्रतिष्ठा श्रीरामचन्द्रजी के समय से समझी जाती है। सो इस ज़िले में इनके कई एक प्रसिद्ध स्थान हैं जिनमें दो एक नाम लिखदेते हैं। पयासीपिंडी, पिपरा, सिरजम, देवरिया, सोंपरी, बुढ़ियां, बारी, सोहगौरा, भेड़ी, मामखोर, और मझगांवां आदि प्रसिद्ध स्थान हैं। इन स्थानों में पयासी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी चढ़ी है और यहां के ब्राह्मण अति सरल स्वभाव से रहते हैं। ये लोग अपने जाति कर्मानुसार सर्व कार्य्य को करते हैं। ये लोग सन्ध्या तर्पण में अति निपुण और स्वधर्मावलम्बी हैं। पूर्व काल में यहां मणिमिश्र नामक एक ऐसे विद्वान हुए थे जिन्होंने सारे भारतखंड को पराजय किया। ऐसा सुना ही नहीं जाता है कि किसीने उनका शास्त्र में मुकाबिला किया। यहां के ब्राह्मण प्रतिग्रह लेने में इतना संकोच रखते हैं कि यदि कोई इन्हें करोड़ों रुपये देवे तो भी न अंगीकार करेंगे। पीपरा में गौतम मिश्र बसते हैं इन्हीं के गोत्र में वर्तमान काशीराज हैं। और और स्थानों पर भी पंक्ति और कुलीन ब्राह्मण बसते हैं।

---

* सरवार उस स्थल का नाम है जो पश्चिम अयोध्या के रामरेखाघाट से लेकर पूरब गंडक और गंगा के संगम तक और उत्तर चम्पारन की दक्षिणी सीमा से लेकर सर्यू नदी तक दक्षिण में फैला हुआ है। यथा:-

स्वपुरः पूर्वतो भागे रामेण धनुषा कृता।
रामरेखा समाख्याता तस्याश्च पूर्वतो दिशि ॥ १ ॥
गंडक्या गंगया यत्र संगमस्तत् समावधि।
शतक्रोशस्य भूभागं दक्षिणोत्तरतस्तया ॥ २ ॥
सर्व्वाः चोत्तरतटात् चम्पारण्यस्य दक्षिणे।
पंचाशत्क्रोशभूभागं सुसंकल्प्य च दत्तवान् ॥ ३ ॥
ततो रामाज्ञया ते च सरयूपारमागमन्।
सरयूपारिणो जाता ब्राह्मणा रामपूजिताः ॥ ४ ॥

एवं प्रकारेण सरवार और सर्यूपारी ब्राह्मणों की उत्पत्ति है, जिनमें मुख्य और प्रतिष्ठित ये हैं:-

¹गर्गश्च ²गौतमश्चैव ³शाण्डिल्यश्चः ⁴पराशरः।
⁵सावर्ण्यः ⁶कश्यपोऽत्रिश्च ⁷भारद्वाजोऽथ ⁸गालवः ॥ १ ॥

तपस्वी इत्यादि के विषय में ॥

जवबन, अधिकरया, परगना, सिधुआ, जोबना और सूलेमपुर मझौली में साधु महात्मा भी बहुधा रहते थे। अब पवहारीजी नामक वैष्णव साधू प्रसिद्ध और सर्वसाधारण के विश्वासपात्र हैं। उनका व्योरा यों है। इनके प्रथम पुरुष लक्ष्मीनारायणदासजी महेंद गांव के पास के रहनेवाले सुपात्र ब्राह्मण थे। कुछ न्यूनाधिक सौ वर्ष हुए, बिवाह हो जाने पर एक दिन ये खेत की रखवारी कर रहे थे। सो जाने पर एक जंगली हाथी ने आकर सूंड से उठाकर इनको अपनी पीठ पर बैठा लिया। कुछ काल लिये फिरा, फिर उसी भांति उतार के रख दिया। तब इन्होंने अपने ऊपर ईश्वर की बड़ी कृपा समझकर घर छोड़ दिया। अयोध्या जाकर ये रामप्रसाद जी के अखाड़े में चेले हुए और गुरु की आज्ञा से फिर इसी देश स्थान पैकौली तहसील देवरिया में आकर रहने लगे। पैकौली में (जहां चैत्र की रामनवमी और भादों की कृष्णाष्टमी को उत्सव और मेला होता है) उत्तम स्थान बना हुआ है। वैकुंठपुर में (जहां अगहन की पंचमी को लीला सहित बहुत ही बड़ा मेला होता है) इनका रम्य स्थान है। और ऐसेही बड़हलगंज परगना चिल्लूपार में सर्यू तट पर (जहां भूतपूर्व पुरुषों की पादुकाएं रखी हैं और आषाढ़ में रथयात्रा का मेला होता है) परम

---

[१०]कौशिको [११]भार्गश्चैव [१२]वत्सो [१३]वात्सायनस्तथा।
[१४]अंगिरा [१५]च्यवनश्चैवः [१६]यमदग्निश्च षोडशः॥

इन गोत्रों के ब्राह्मण सर्यूपार में अनेकों स्थानों पर पाये जाते हैं जो अब उन स्थानों के नाम से प्रसिद्ध और पूजनीय माने जाते हैं क्योंकि पूर्व समय में उन स्थानों पर ऐसे २ सुविज्ञ तपस्वी वो पंडित लोग उत्पन्न हुए थे कि गोत्रों की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त उन लोगों के गुणानुसार उन स्थानों की प्रतिष्ठा अधिक चढ़ बढ़ गई। तब से उन स्थानों के बसनेवाले परम पवित्र वो श्रेष्ट समझे जाते हैं। वे स्थान ये हैं:-

ख्याता पयासी समदारि चौरा वृहदग्राम धर्मा खलु कांचनीया।
माला च पाला त्रिफला च पीड़ी इंटिया इटाढ़ी राढ्या वदन्ति॥१॥

अब इन ब्राह्मणों के दो भेद हो गए हैं। एक तो वे लोग जो ऊपर के बतलाए हुए १६ गोत्रों में विवाहादि का सम्बन्ध रखते हैं उन्हें पंक्ति अथवा यातिहा कहते हैं। दूसरे वे लोग जो द्रव्य के लालच से इन १६ घरानों के अतिरिक्त अपने लड़कों का व्याहादि करते हैं उन्हें त्रूटि अथवा टूटहा कहते हैं॥

मनोहर स्थान है। इनके संग सदा ५०० के लगभग साधू रहते थे। परन्तु अब ८०० के लगभग रहते हैं। निस्सन्देह यह कुल धर्मज्ञ और श्रीमान हैं। काशी, प्रयाग, अयोध्या और गया आदि तीर्थों में अनेक बार भंडारा किया है। सन् १८४६ ई० में बड़हलगंज में उक्त महाशय का सरयूलाभ हुआ। तब उनके चेले सियारामदास जी महन्त हुए। ये भी पूर्ववत् हुए। सन् १८७८ ईस्वी में उसी स्थान पर इनका भी सरयूलाभ हुआ। तब इनके चेले अवधकिशोरदासजी जो विद्वान और प्रशंसनीय हैं महन्थ हुए। ये महाशय अब तक वर्तमान हैं। ५ बरस के लगभग व्यतीत हुआ होगा कि इन्होंने एक ऐसा भारी यज्ञ किया जिसमें कई लाख आदमियों को भोजन दिया और हवन की सामग्री इतनी थी कि कुंड में ६ मास तक अग्नि वर्तमान थी। जल का संकीर्ण रहा, महाराज ने सरयू माता को निमंत्रण दिया कि हे माता मेरी रक्षा और सहायता करो। इसको सरयू माता ने अंगीकार किया और कुटी के समीप एक सोता पानी का बहा दिया जिससे लोग परिपूर्ण जल खाने पीने और स्नान करने के वास्ते पागए। परगना सलेमपुर मझौली के पास ही पूर्व मैरवा ज़िला सारन में नदी झरही के तटपर द्विवेदी हरीराम नामक प्रसिद्ध ब्रह्म का स्थान है। यहां देश देश के लोग भूत प्रेतादि शान्ति कराने के लिये आते हैं और उनका मनोरथ भक्ति श्रद्धानुसार फलीभूत होता है। ये ब्रह्म पहले एक भैंस के चरवाहा थे जिसको वे बहुत प्यार करते थे। किसी बाबू ने भैंस उनसे छीन ली जिसके वास्ते उन्होंने अपना प्राण दे दिया।

तीर्थस्थान और मेले के विषय में।

१ सोहनाग, यहां वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया को परशुरामजी के दर्शन का बड़ा मेला होता है। यहां एक पोखरा है जिसमें स्नान करने से किसी राजा का कुष्ट रोग छूट गया था अब भी लोग उसमें एतवार मंगल को खजुली निवारण होने के वास्ते स्नान करते हैं और जिनकी जैसी श्रद्धा भक्ति रहती है वैसा फल मिलता है। यहां दूर दूर की दूकानें अनेक प्रकार की वस्तुओं की आती हैं। पन्द्रह दिन तक मेला रहता है।

२ वैकुंठपुर, यहां अगहन शुक्ल पंचमी को धनुषयज्ञ का बड़ा भारी मेला होता है, देश देश की वस्तुएं बिकने को आती हैं और १५ दिन तक रहता है।

इन प्रधान मेलों के सिवाय और भी बहुत से मेले हैं जिनमें पैकौली, रुद्रपुर और बरपार प्रसिद्ध और गणनीय हैं।

कूएं आदि के विषय में।

पक्के कूएं के बनाने में १५०) और कच्चे कूएं की तैयारी में ८) व्यय होता है। और एक कूए से दिनभर में ५½ बीघा बलुआ मिट्टी और १ बीघा मटियार दोरस सींची जाती है। पर झीलों से अधिक सींची जाती है।

रंग आदि के विषय में।

कुसुम, तून, हारसिंगार, और गेंदा आदि से इस ज़िले में कपड़ा रंगा जाता था जिसकी प्रणाली अबतक है परन्तु अब नए ढंग के रंगों से कपड़ा रंगा जाता है।

पुल और बाँध के विषय में।

कौड़ीराम के निकट आमी नदी पर मिस्टर टकर साहब कलक्टर ने २ मील लम्बा एक अपूर्व बांध बनवाया है उसमें ७ पुल हैं। शहर गोरखपुर में रीड साहिब ने एक धर्मशाला ज़मीदारों के चन्दे से बनवाई है उसमें ज़मीदार लोग रहते हैं।

वृत्ति के विषय में।

जब कोई ज़मीदार अपना गांव आबाद किया चाहता था किसी साहु या असामी से कुछ रुपया भेंट लेकर उस गांव को उसे सौंप दिया करता था और उस गांव का नाम वृत्ति और लेनेवाला वृत्तिहा कहलाता था। और यह भी दोनो तरफ़ से प्रतिज्ञा होती थी कि जितना रुपया इस गांव से लाभ होगा उसका पञ्चमांश वृत्तिहा पावेगा और शेष भाग ज़मीदार लेगा और जब कभी ज़मीदार को किसी बात की आवश्यकता होगी वृत्तिहा उसकी सहायता करेगा। असामियों पर भी ज़मीदार का अधिकार रहता था पर सन् १८३५ से सन् १८३८ तक जो बन्दोबस्त हुआ उसमें वृत्तिही से ज़मी-

दार को ८०) रुपया सैकड़ा पाने की प्रतिज्ञा होगई उस समय से असामियों पर ज़मीदार का अधिकार उठ गया और रुपया सर्कार के कोष से पाने लगे अब इस समय उन लोगों को १०) ही रुपया सैकड़ा मिलता है।

मड़ही के विषय में।

मड़ही एक प्रकार का बन्धक है और परगने सलेमपुर मझौली में यह रीति प्रचलित है। जैसे किसीने १००) रुपया क़र्ज़ लिया और उसके व्याज के लिये कुछ खेत जिसकी आमदनी मालगुज़ारी देकर उसके व्याज पैठ के बराबर हो उसको लिख दिया तो वह खेत मड़ही कहलाता है।

माड़ीदारी के विषय में।

एक प्रकार की ज़मीदारी केवल भौआपार में है अर्थात् राजा भौआपार अपने सेवकों को कम लगान का खेत देता था वे उसका लगान देकर जो लाभ होता था आप खाते थे बन्दोबस्त में वह धरती उन्हीं सेवकों के नाम लिख गई अब ज़मीदार से कुछ सम्बन्ध नहीं रहा।

आराज़ीदार के विषय में।

आराज़ीदार उसको कहते हैं कि कुछ आराज़ी (खेत) किसी ज़मीदार से ख़रीदे या कोई ज़मीदार आप से उसको देदे और उस खेत का पोत आराज़ीदार प्रधान मालगुज़ार को देता रहे। कोई कोई आराज़ीदार सरकार में भी लगान दाख़िल करता है।

मरवट के विषय में।

जब कोई सेवक अपने स्वामी के लिये युद्ध में प्राण देता और उसके लड़कों के लिये स्वामी की ओर से खेत मिलता उसे मरवट कहते हैं।

मुक़द्दमी के विषय में।

मुक़द्दमी ज़मीदारी केवल परगने हवेली गोरखपुर में है। और यह रीति नैपाल की लड़ाई के अवसान में प्रचलित हुई अर्थात् थारुओं ने तप्पा लहड़ा में जंगल काट कर खेत बनाया और वह खेत उनके नाम पर बन्दोबस्त हुआ और वही मुक़द्दमी कहलाया।

ज़िले का संक्षेप वृत्तान्त परगनानुसार।

परगना सलेमपुर मझौली।

यह परगना अनुमान से पूर्व और पश्चिम ३६ मील लम्बा और उत्तर और दक्षिण २१ मील चौड़ा है। इस परगने की भूमि बहुधा सम धरातल है केवल गिनती के स्थानों में कुछ ऊंचाई निचाई पाई जाती है। जल वायु उत्तम है, समय अच्छा होता है, गर्मी और जाड़ा सामान्य पड़ते हैं। वर्षा बन कट जाने से बहुधा कम होती है।

इस परगने में नीचे लिखे हुए बड़े बाज़ार और क़सबे हैं,-

कपरवार, बरहज, पैना, भागलपुर, लार, मझौली गौरा, राजपुर, मिगारी और भाटपार। इनमें भी कोई बड़े गांव और कोई बाज़ार हैं। पर एक तो बरहज बहुत प्रसिद्ध बाज़ार है। परगने भर में ऐसी बड़ी और सुन्दर कोई बस्ती नहीं है। यहां दूर दूर के महाजनों की कोठियां और दूकाने हैं। चीनी के कारख़ानों और गोलों की अधिकता के कारण यह एकही बाज़ार है। दिन रात नावों, गाड़ियों और रेलगाड़ियों की रेल पेल रहती है। राज्य मझौली की ओर से पक्की सड़कें भी बनवादी गई हैं। यह क़सबा रापती के ठीक तट पर है और इसके पासहीं रापती और सरयू का संगम है। जान पड़ता है कि इस क़सबे का नाम बरहना पीर के नामानुसार (जिस की समाधि भी यहीं वर्तमान है) रक्खा गया होगा। यहां एक कोट का चिन्ह भी है जिसका वर्णन किसी स्थान पर किया जायगा॥

२ लार, यह यद्यपि किसी बात में बरहज के बराबर नहीं पर यहां के मुसलमान महाजन इराकी (जिन्हें रांकी कहते हैं) बहुधा धनाढ्य हैं और नयपाल और कलकत्ते का व्योपार अधिक करते हैं।

३ भागलपुर इनसे घटा हुआ है। यह स्थान ठीक सरयू के तट पर है। यहां पर एक स्तम्भ है जिसके अक्षरों को प्रिंसिप साहिब ने बनारस में पढ़ा था। इसके सिवाय यहांके पुराने विद्वानों से सुना गया है कि पूर्व काल में इसका नाम भार्गवपुर वा

भार्गवक्षेत्र था। और यह एक प्रसिद्ध तीर्थ था जिसके पंचक्रोश में सोहनाग आदि स्थान भी थे। दो चार प्रमाणों से पाया जाता है कि यह अवश्य प्रसिद्ध स्थान था। ठीक भागलपुर के सामने सरयू पार स्थान खैराडीह (जिसका प्राचीन नाम खड्गक्षेत्र सुना जाता है) अति पुराना स्थान वर्तमान है। इसके पासही सहिया ग्राम में भी एक पुराने मन्दिर में बुद्ध की मूर्ति वर्तमान है। सहिया और भागलपुर के पासही देवकली गावँ में (जिसे अब देवकुली कहते हैं) सन् १८८४ ईस्वी के शारदीय नवरात्र में एक देवी की सुन्दर मूर्ति पृथ्वी से निकली है। इस मूर्त्ति का सौंदर्य्य देखनेही योग्य है। कुछ आश्चर्य नहीं जो इस देवकुमारी (देवकन्या) का नाम (जिसकी अवस्था थोड़ी जान पड़ती है) देवकली अर्थात् देवताओं की कली रहा हो। और उसीके अनुसार गावँ का नाम भी देवकली पड़ा हो। यद्यपि नदी सरयू इस परगने में दूर तक है पर कार्तिक पूर्णिमा और ग्रहणादि पर्वों पर यहीं विशेष भीड़भाड़ होती है और दूर दूर के मृतकों को लोग यहां लाकर दग्ध करते हैं। इससे पाया जाता है कि पूर्व काल से लोगों का विश्वास है कि भागलपुर तीर्थ स्थल है।

४ मझौली में भी गोला और बाज़ार है। पर बस्ती पुरानी होने के कारण अच्छी नहीं। पुराने काग़ज़ों और लोगों के कहने से प्रसिद्ध है कि जब श्रीमयूरभट्ट के पुत्र विश्वसेन ने (जिनके वंशवाले विश्वेन वा विसेन क्षत्रिय कहलाते हैं) भरों को मारकर इस देश में अपना अधिकार जमाया उस समय अपने पूज्य पिता के आज्ञानुसार मझौली में छोटी गंडक के तट पर (जिसे अब राजघाट कहते हैं) राजभवन बनवाया और इस गांवँ का नाम मध्य पल्लि वा मध्यावली रक्खा जिसका अपभ्रंश अब मझौली हो गया है। सिवाय इन बाज़ारों के और कोई बाज़ार वा क़सबा ऐसा नहीं है जो लिखा जाय। पर कई एक स्थान इस परगने में ऐसे हैं जो पुरानी ऐतिहासिक बातों से सम्बन्ध रखते हैं। इनके नाम नीचे विवरण सहित लिखता हूं,—

कहांव गांवँ में, जो मझौली से अनुमान ७ वा ८ मील पश्चिम

है एक २४ फ़ीट की ऊंची पत्थर की लाट है, जिस पर पुराने अक्षरों में तीन श्लोक खुदे हैं ॥ मूल श्लोक ये हैं,—

यस्योपस्थानभूमिर्नृपतिशतशिरः पातवातावधूता,
गुप्तानां वंशपस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः।
राज्येशक्रोपमेऽस्य क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्ते,
वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरशतकमितेज्येष्ठमासि प्रपन्ने ॥ १ ॥
ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्ने ककुभरतिजनैस्साधुसंसर्गयुक्ते,
पुत्रोयस्सोमिलस्य प्रचुरगणनिधेर्भट्टिसोमो महार्थः।
तत्सूनू रुद्रसोमः प्रथुलमतियशा व्याघ्ररत्यन्यसंज्ञो,
मद्रस्तस्यात्मजोभूद्द्विजगुरुयतिषुप्रायशः प्रीतिमान्यः॥२॥
पुण्यस्कंधं स चक्रे जगदिदमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो,
श्रेयोऽर्थं भूतभूत्यै पथिनियमवतामर्हतामादिकर्त्तॄ।
पंचेन्द्रांस्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखातस्ततोयान्,
शैलस्तम्भः सुचारुगिरिवरशिखराग्रोपमः कीर्तिकर्ता॥३॥

भाषाऽनुवाद—राजा स्कन्दगुप्त (जिसके प्रस्थान के समय सैकड़ों राजाओं के मुकुट उसके चरणों पर झुकते थे) बड़ा यशस्वी और प्रचुर रत्न से युक्त था। उसके स्वर्गवास करने से ३२५ वर्ष पीछे ज्येष्ठ मास में राजा सोमिल का पुत्र भट्टिसोम, उसका पुत्र रुद्रसोम, उसका पुत्र व्याघ्ररति, उसका पुत्र भद्रसोम (जिसकी भक्ति ब्राह्मण, गुरु और सन्यासियों में विशेष थी) दिन दिन जगत का नाश देखकर बहुत डरा। निदान उसने अपनी और प्रजा की रक्षा के लिये ककुम्भरति में (जिसे अब कहावँ कहते हैं और जहां साधुजन अधिक बसते थे) एक यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांच इन्द्र पहाड़ों के बराबर अर्थात् पांच स्तम्भों पर इन्द्र की मूर्ति स्थापित की। इनमें १ कहावं २ भागलपुर ३ ज़िला सारन ४ राज्य बेतिया और पांचवां स्तम्भ तराई में वर्तमान है। इनके सिवाय एक स्तम्भ और स्थापित किया जिसका स्थान कहीं नहीं लिखा है।

उस २४ फीट ऊंची पत्थर की लाट के कलश पर एक मूर्ति स्थापित है। "गोरखपुरदर्पण" में लिखा है कि यह बुध की मूर्ति है पर श्लोक से इन्द्र की मूर्ति जानी जाती है।

२ **सोहनाग**-यह स्थान भागलपुर से ६ मील उत्तर और मझौली से ४ मील नैऋत्य कोन पर है। यह बहुत पुराना स्थान है। यहां एक बहुत बड़ा कच्चा पोखरा है जिसके पश्चिम किनारे पर बहुत बड़ा टीला और कुछ बन है। उस टीले से पाया जाता है कि यहां कोई बड़ा कोट वा अनेक मन्दिरों का समूह रहा होगा। इस टीले पर ईंटों और पत्थरों के टुकड़ों के सिवाय कभी २ पुराने रुपये पैसे भी मिल जाते हैं। इस टीले के पश्चिम भाग में श्रीपरशुरामजी का मन्दिर है। यहां वैशाख शुक्ल अक्षयतृतीया को (जो परशुरामजी का जन्मदिन है) बड़ा मेला होता है। कहीं लिखा है कि परशुरामजी ने आगरे में जन्म लिया था पर इस में सन्देह नहीं कि सोहनाग में अवश्य कुछ दिन तक तपस्या का होगी। इस स्थान में पहुंचने पर यात्री लोग पोखरे में स्नान करते हैं और पुन: दर्शन करते हैं। दर्शन करने के उपरान्त यथाशक्ति पुजारियों को भेंट देते हैं। यह मेला १५ दिन के लगभग रहता है। परशुरामजी के मन्दिर से पूर्व एक और छोटासा मन्दिर है। लोग कहते हैं कि यह परशुरामजी के पिता यमदग्निजी की यह मूर्ति है। यह मूर्ति बहुत पुरानी है। देखने से ज्ञात होता है कि यह मूर्ति और देवकली की मूर्ति एकही कारीगर की बनाई हुई हैं "गोरखपुरदर्पण" में लिखा है कि इस पोखरे में स्नान करने से किसी राजा का कुष्टरोग छूटा था।

३ खुखुन्दो-कहते हैं कि इसका नाम किष्किन्दापुर है। यह स्थान मझौली से अनुमान १० मील अर्थात् मझौली और देवरिया के मध्य में है। नोनखार स्टेशन से भी पासही है। यहां मढ़ी में एक तीन फ़ीट लम्बी जैन मत की मूर्ति है। इस मत वाले पूजा, दर्शन और लड़कों के मुंडन कराने के लिये दूर दूर से यहां आते हैं। और इसके आस पास के टीलों से अब तक कभी कभी

जैन और वैदिक मूर्ति और रुपये पैसे मिलते हैं जिससे पाया जाता है कि यह बस्ती उस समय की है जब भरतखंड में बुध और जैनधर्म का अधिक प्रचार था। और कुशिनगर वा कसया में बड़ा कोट था॥

सोहनपुर—यह वह स्थान है जहां सन् १८५७ ईस्वी के उपद्रव में सर्कारी सेना (गोरे और पर्वतियों) के साथ जगदीशपुर के बाबू कुंवरसिंह का सेनापति हरकिशुनसिंह बहुत से बागियों को लेकर लड़ा था। यह गाँव राज्य मझौली में मझौली से ६ मील पूर्व है। बहुतेरे लोग कहते हैं कि यही "शोणितपुर" है जहां बाणासुर (जिसकी बेटी ऊषा श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से व्याही गई थी) रहता था। इस बात के लिये निम्नलिखित प्रमाण हैं। एक तो पूर्वकाल से अब तक इस गाँव में यह रीति चली आती है कि जब खेत कट जाते हैं तब बाणासुर के नाम कुछ अन्न देवांश निकालते हैं, जिस देवांश को यहां वाले अंगऊ कहते हैं। दूसरे सोहनपुर के पास ही कोठा गाँव में जो एक ऊंचा टीला है उसे अब तक "ऊषा का धरहरा" कहते हैं। सम्भव है कि यही ऊषा के रहने का भवन (जिसमें पहिले गुप्त भाव से अनिरुद्ध रहे) रहा हो। यह भी भागवत से जाना जाता है कि बाणासुर ने कैलास से लाकर शिवलिंग स्थापित किया था। सो लोग कहते हैं कि वही मूर्ति सोहगरा ज़िला सारन में सोहनपुर से २ मील दक्षिण है जिसे हंसनाथ कहते हैं। इनके सिवाय यहां बांसों के बन में अनेक शिवलिंग और पोखरों के चिन्ह मिलते हैं। कहते हैं कि एकही समय के यह सब हैं। अब के राजाओं में यह सामर्थ कहां जो एक साथ इतनी स्थापना करें और इतने पोखरे खुदावें? यहां फाल्गुन की शिवरात्रि को अब भी बड़ा मेला होता है। इसके सिवाय सोहनपुर में भी एक अति प्राचीन शिवस्थान है। सोहनपुर की भांति दीन गाँव ज़िला सारन में (जो इस परगने के पड़ोस और राज्य मझौली ही में) द्रोणाचार्य के नाम देवांश निकालते हैं। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि भृगुबंश के ऋषि मुनियों में बहुतों ने बहुधा इस परगने वा इसके आस पास निवास किया है।

मझौली में भी गांव और कोट से पूर्व एक पुराना टीला है। जहां एक टूटे से पुराने मन्दिर में दीर्घेश्वरनाथ शिव की मूर्त्ति है। कोई ठीक नहीं बता सक्ता कि किसने कब यह मूर्त्ति स्थापित की है इस? टीले पर बहुत सी ईंटे और पत्थर के टुकड़े पड़े हैं। कभी कभी कोई गोल पैसा भी पाया जाता है जिस पर अर्बी अक्षरों में "सुलतान महमूद खलीफ़ तुलमोमिनीन" लिखा होता है। निस्सन्देह यह प्राचीन स्थान है। यहां नाम मात्र थोड़ा बन भी है उसी बन में मन्दिर से उत्तर एक कच्चा पोखरा भी है। इस स्थान के सिवाय जहां पहले बन था वहां कई एक पक्के कुएं और मन्दिरों के चिन्ह भी (जिनमें पुरानी मूर्तियां भी मिली हैं) पाए जाते हैं। लोग कहते हैं कि किसी काल में यहां बनजारे बस्ते थे। सन् १८२० ईस्वी में जब राजा मझौली का वर्तमान राजभवन बना था मझौली नदी में से पत्थर की कई एक चौकियां चौकठ और दो अर्घा समेत एक सुन्दर और बड़ा शिवलिंग निकला था जो कोट के उत्तर स्थापित किया गया।

मझौली के पासही उत्तर नदी पार बनकटा गावँ में एक कुंड का चिन्ह है जिसका क्षेत्रफल १ बीघा ६ बिस्वा है। कहते हैं कि पिंडी के तिवारी विश्वेन कुल के पुरोहितों में किसी पंडित को एक दंडी ने शाप दिया, जिसके भय से राजा ने पाराशरीय पांडे को पुरोहित मान कर तिवारी बंश को छोड़ दिया। उस समय अपनी जीविकाहरण विचार तिवारी ने बनकटा में (जहां अब दीक्षित बस्ते हैं) राजा की सहायता से "दीक्षायज्ञ" किया। यज्ञ के अन्तिम दिवस नीलकंठमणि दीक्षित ने अपनी कन्या का विवाह लोकनाथ मिश्र पयासी के साथ कर दिया। जिसके वंश वर्तमान पयासी वाले मिश्र हैं। इस बात को दो सौ बर्ष से कम न हुए होंगे। उसी यज्ञ के कुंड का यह चिन्ह है॥

इस परगने में सर्कारी और एडेड बहुत सी पाठशालाएं हैं और एक अंग्रेज़ी स्कूल तहसील देवरिया में और दूसरा मझौली ख़ास में है। यहां मिडिल क्लास तक पढ़ाई होती है। मझौली में कुमा-

रियों के लिये पाठशाला भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ओर से नियत है। संस्कृत पाठशाला इस परगने में नहीं है।

परगना सिधुआयोबना-इसमें २२ तप्पा और १२८३ गांव हैं। क्षेत्रफल ५२०४०४ एकड़ है। इसकी लम्बाई उत्तर दक्षिण ३८ मील और चौड़ाई पूर्व पश्चिम १९ मील है। इसमें बड़ा गांव निबुआ, पड़रौना और कसया है। बाज़ार तिवारी पट्टी गंडक के किनारे पर बसा है। इस परगने में दो बड़े तालुक़ेदार हैं, एक राजा तमकुही, दूसरे राजा पड़रौना। ४५ गांव वृत्ति और १७७ गांव में वृतिहे हिस्सेदार हैं। गंडक के तट पर बांसीघाट में एक बड़ा मेला कार्तिक की पूर्णिमा को लगता है। पड़रौने से १२ मील नैऋत्य कोन को पुरइनी में एक देवी का मन्दिर है। उस स्थान पर कुआर की बिजया दशमी के दिन ४००० मनुष्य इकट्ठे होते हैं। पड़रौने से पाव कोस नवाब की छावनी के निकट एक बुद्ध की मूर्ति है। उसे लोग हठी कहते हैं और तेल सेन्दुर से उसको पूजते हैं। कसया से पाव कोस पश्चिम दो देहगोप अर्थात् बौद्ध महंतों की समाधि ५० फ़ीट ऊंची सीधी गुम्बज की तरह चली गई है। इसके पास एक लम्बे लदायूं मन्दिर में बुध की पत्थर की मूर्ति अनुमान से १२ फ़ीट लम्बी पत्थर की शय्या पर दाहिने करवट लेटी हुई बनी है। सिवाय इसके एक और भी मूर्ति यहां पर है। इन दोनो मूर्तियों को लोग मायाकुंवर और बुद्धकुंवर कहते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसको बने १३०० वर्ष के लगभग हुआ होगा। यहां के मूर्ख लोग देवी का स्थान समझ कर इसकी पूजा करते हैं पर इसमें बौद्ध महन्तों की हड्डी और राख गड़ी है। मूर्ति के बारे में यहां वाले कहते हैं कि एक राजकुमार किसी मुसल्मान बादशाह से लड़ाई में हार कर कूएं में कूद पड़ा और उसमें पत्थर हो गया। पर इसका वृत्तान्त ठीक ठीक जानना कठिन है। आश्चर्य्य नहीं कि शाक्यमुनि बुद्ध ने, जो कपिलवस्तु वर्तमान कसया के राजा शुद्धोदन का लड़का था, यहां समाधि ली हो। क्योंकि मृतकुमार शब्द का अर्थ मरा हुआ राजा का लड़का हो सकता है। बस उसीका अपभ्रंश मांयाकुंवर है। और यह भी अनुमित होता है कि इस सारे ज़िले

और सारन आदि मंडलों में बौद्धमत फैला था और राजा बाबू लोग उस मत के आधीन थे, सो उन्हीं लोगों ने मूर्तियों को बनवाया होगा।

यहां सर्कारी और इमदादी बहुत से स्कूल हैं और तहसीली स्कूल पड़रौने में जारी है।

परगना शाहजहांपुर इस परगने में ९ तप्पा और २५० गाँव हैं। ८८०८७ एकड़ सम्पूर्ण परगने का क्षेत्रफल है। उत्तर से दक्षिण १४ मील लम्बा और पूर्व से पश्चिम १० मील चौड़ा है। इसमें बड़ा गाँव हाटा है। मदिरापाली में जो बेलवा से तीन मील है एक टूटा फूटा पुराना मन्दिर चौकोनी चोटी का है और उसमें २ मूर्ति बौद्धमत सम्बन्धी पड़ी है। हेतिमपुर में एक पुरानी मढ़ी है उसको वहां के लोग बावनमुर्चा कहते हैं। उसमें एक देवी की मूर्ति है जिसको बौद्धमत के किसी गुरू ने स्थापन किया था। रामपुर गड़ही में ४०० के लगभग चीनी के कारख़ाने हैं। साल में कईलाख की चीनी बनती और बिकती है। हल्केबन्दी पाठशालाएं २० के लगभग हैं।

परगना सिलहट--इसमें १७ तप्पा और ४६३ गाँव हैं। १७६०३५ एकड़ सम्पूर्ण क्षेत्रफल है। बड़ागाँव रुद्रपुर, पथरहट, और सिरजम हैं। इस परगने से उर्द पटने को भेजा जाता है। रुद्रपुर के उत्तर पाव कोस पर एक महादेव की मूर्ति, जिसका नाम दूधनाथ कहते हैं, वर्तमान है। शिवरात्रि को वहां बहुत बड़ा मेला लगता है। उस समय सहस्रों कांवर गंगाजल महादेव पर चढ़ता है और २०,००० मनुष्य इकट्ठे होते हैं। उस मन्दिर के ख़र्च के लिये सर्कार से कुछ कृष्णार्पण मिला है और उस मन्दिर के बाहर पीपल के वृक्ष के नीचे एक मूर्ति बौद्धमत की पड़ी है। जिसे बने १३०० वर्ष हुआ होगा। उसके पासहीं सहनकोट नामी गढ़ है जिसे मयूरभट्ट मुनि (जिसके वंश में मिश्र पयासी हैं) ने बनवाया था और इन्हीं का बनवाया शिवलिंग भी है। इसके लिये प्रमाण यह है,—

१ मझौली के राजा मयूरभट्ट मुनि के वंश में हैं जिनके प्रथम पुरुष विश्वसेन थे, जो मुनि महाराज के द्वितीय पुत्र हैं।

मयूरभट्टजी ने इन्हीं के लिये यह कोट बनवाया जो विश्वसेन की पदवी के अनुसार सेनकोट कहलाया और इसी का अपभ्रंश होते होते सहनकोट हो गया ।

२ पश्चिमोत्तरदेशीय राजाओं के अंगरेज़ी इतिहास में लिखा है कि श्रीनेत क्षत्रिय मझौली के सम्बन्ध से इस देश में आए और मझौली राज्य से उनको भी राज्य मिला ।

३ जनश्रुति भी है कि मझौली से सत्तासी कोस वर्गात्मक राज दिया गया, जिससे उस राज्य का नाम सतासी हुआ । मुझे जो कुछ वृद्ध लोगों से ज्ञात हुआ लिख दिया है । ईश्वर जाने क्या सत्य है और क्या असत्य है ।

सिवाय शिवलिंग दूधनाथ के श्रीमयूरभट्ट मुनि ने एक लाख लिंगस्थापन किए जो अब तक इधर उधर खेतों में वर्तमान हैं । "गोरखपुरदर्पण" में लिखा है कि इस सहनकोट को काशि-राज ब्रह्मा ने बनवाया था । रुद्रपुर के लोग इसे हंसतीर्थ कहते हैं । रुद्रपुर से १ मील अग्निकोण को १ मंदिर है उसमें एक चतुर्भुज मूर्ति बहुत सुन्दर स्थापित है जिसे गोरखों ने बनवाया था ।

परगना तिलपुर—यह परगना तराई के निकट है । इसके उत्तर नैपाल है । इसमें ८ तप्पा और २९६ गांवँ और १८७०३३ एकड़ क्षेत्रफल है । बाज़ार अठवारे में एक बार निचललव, कोठी-भार, मिठवरा, वलभीवार, नेतवाचक, वरही और पुरवा में लगता है । यह परगना प्रथम थारुओं से आबाद था । तिलराय सेन ने बंजारों से मिलकर वहां से थारुओं को निकाल दिया और उस को तिलपुर नाम से प्रसिद्ध किया । पर अन्त में नव्वाब क़ासिम अली ख़ां ने उसको भी परगने से निकाल दिया और कुछ दिन के अनन्तर यह परगना सर्कार अंगरेज़ को नैपालियों ने दिया । कुर्मी इस परगने में अधिक बसते हैं । ११ हल्काबन्दी पाठशालाएं हैं ।

परगना विनायकपुर पूर्वीय-इसमें ३ तप्पा, ७१ गांव और ३०९१४ एकड़ क्षेत्रफल है । यह सारा परगना प्रथम राजा बुटवल की ज़मीदारी था और थारू लोग अधिक बसते थे । पर अब यह परगना सर्कार अंग्रेज़ी के अधिकार में है । वर्षा के दिनों में

नदियों से इस परगने में इतना पानी भर जाता है कि इस परगने के गांवँ नाओं की तरह पानी पर तैरते हुए ज्ञान पड़ते हैं। यहां १२ हल्केबन्दी पाठशालाएं हैं।

परगना हवेली—इस परगने में २५ तप्पा १६७४ गांवँ हैं सम्पूर्ण क्षेत्रफल ९२०१६० एकड़ है। इसके दक्षिण और पूर्व दिशा के आदि से एक बड़ी बन की पांती प्रारम्भ होती है और नयपाल के राज्य तक चली जाती है। कप्तानगंज और पिपराइच मुख्य और प्रसिद्ध बाज़ार हैं। "शहर गोरखपुर"—भी इसी परगने में है। ज़िले की अदालत कमिश्नरी, कलक्टरी, जजी इसी जगह पर हैं शहर का इन्तज़ाम म्यूनिसपलटी के अधिकार में है जो शहर के रहनेवालों से चन्दा लेकर उनके सुख की वस्तुएं उन्हें देती हैं। सफाई पर अधिक ध्यान है। अस्पताल यानी सर्कारी औषधालय अति उत्तम बना हुआ है। यहां पर एक कालेज जिसमें एफ० ए० तक की पढ़ाई होती है और एक हाईस्कूल और दो मिडिल स्कूल हैं। बंगाल नार्थवेस्टर्न रेलवे का मुख्य स्थान (सदर मुक़ाम) यहीं है। स्टेशन बहुत उमदा और सुन्दर बना हुआ है। उर्दू बाज़ार में अनेक प्रकार की वस्तुओं की अनेक दूकानें हैं। साहबगंज अन्न की मंडी है। अलीनगर में धनाढ्य और लक्ष्मीपात्र लोगों का निवास है। ७४ गांवँ माफ़ी और १३० वृत्ति हैं। गोरखपुर से उत्तर और पूर्व १४ मील इटइया नाम एक जगह जंगल में है उस जगह को अबदुलक़ादिरहमान दस्तगीर की मठी बताते हैं। उसकी क़ब्र बग़दाद में है और यह भी कहते हैं कि उसने ४० दिन तक उस जंगल में चिल्ला खींचा था। ६ मन्दिर हिन्दुओं के इस बन में पाए गए हैं और कई जगह मन्दिरों के चिन्ह मिलते हैं। प्रजा यहां की जब अपने खेतों को बन काट कर जोतती है तब उसमें कभी कभी टूटी फूटी और अच्छी मूरतें निकलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि भूतकाल में यहां लोगों का निवास था॥ रापती और रोहिन के संगम पर डोमिनगढ़ में एक बंगला रीड साहब ने बनवाया है उसमें जो अंग्रेज़ शहर के जलवायु से रोग ग्रसित होजाते हैं नीरोग होने के लिये कुछ काल तक वहां निवास करते हैं। इस शहर के प्राचीन निवासी बंजारों

की लूट से बचने के लिये कई एक गढ़ बनवाए थे। उनमें से पांच का नाम लिखा जाता है,-१ रामगढ़, २ डोमिनगढ़, ३ भेड़ियागढ़, ४ बैतालगढ़ ५ और सुमेरगढ़। इस परगने में कई एक तहसीली पाठशाला और ४० हल्केबन्दी स्कूल हैं। गोरखपुर से दक्षिण और पूर्व १४ मील पर राजधानी नाम एक स्थान है जिसको गोरखपुर-दर्पण के अनुसार काशीराज' ब्रह्मा ने बसाया था। और अन्य लोग ऐसा भी कहते हैं कि सकरवारों ने बसाया था। पर देखने से विदित होता है कि इसको उसी पुरुष ने (मयूरभट्ट मुनि ने) बसाया होगा जिसने रुद्रपुर का सहनकोट बनवाया था।

परगना भौआपार-रापती नदी के किनारे एक लम्बा परगना भौआपार कहलाता है। इस परगने की धर्ती नीची है, वर्षा में जल से भर जाती है। जब जल सूखता है तब खेती होती है। कभी पानी मिट्टी छोड़ जाता है और कभी बालू। इसमें ७ तप्पा और ४३३ गाँव हैं और सम्पूर्ण क्षेत्रफल ८९१८१ एकड़ है। इस परगने में बड़ा गाँव भौआपार है और बाज़ार भौआपार, गजपुर, कोठा, और पिपरौली मुख्य और प्रसिद्ध हैं। १४४ गाँव वृत्ति है। हल्काबन्दी और तहसीली पाठशालाएं सर्कार की ओर से नियत हैं।

परगना उनवल-परगने उनवल में ३ तप्पा और ४०१ गांव हैं और सम्पूर्ण क्षेत्रफल ७७५९९ एकड़ है। बड़ा गांव शाहपुर है। १७२ गांव वृत्ति है। ब्राह्मण और राजपूत अधिक बसते हैं। हल्का-बन्दी पाठशालाएं १५ के लगभग हैं।

परगना धुरियापार-इसमें २४ तप्पा, १२२४ गांव और सम्पूर्ण क्षेत्रफल १९६१५४ एकड़ है। ज़मीन इस परगने की उपजाऊ है और चैती बहुतायत से होती है। बाज़ार इसमें मोला, ढखवा और सिकरीगंज हैं। नदी कुआनय, तरैना और घाघरा हैं। कासुत नामक ताल इसी परगने में है। ब्राह्मण और राजपूत अधिक बसते हैं और मुसल्मान कम हैं।

परगना चिल्लूपार-गोरखपुर से दक्षिण और घाघरा के किनारे परगना चिल्लूपार है, इसके दक्षिण घाघरा, पूर्व रापती, उत्तर और पश्चिम परगने धुरिया पार है। इसमें ५ तप्पा, २११ गांव हैं

सम्पूर्ण क्षेत्रफल ११३५८९ एकड़ है। बड़ा गावँ बरहलगंज और नरहरपुर है। नदी कुआनय, तरयना और घाघरा बहती हैं। भेड़ी ताल जिसमें एक प्रकार का धान जिसको बोरो कहते हैं बहुतायत से होता है, इसी परगने में है। यहां की मिट्टी दोरस और मटियार है इसलिये अत्यन्त उपजाऊ है। रबी की फसल अधिक बोई जाती है और ब्राम्हण अधिक बसते हैं। बरहलगंज सरयू नदी के किनारे पर बसा है। यहां श्रीठाकुरजी का मन्दिर अति सुन्दर और रमणीय बना हुआ है। यहां आषाढ़ के महीने में रथयात्रा का भारी मेला होता है और कार्तिक की पूर्णिमा को तथा ग्रहणादि पर्वों में यहां बहुत यात्री इकट्ठे होते हैं। यहां श्रीपवहारी महाराज की एक कुटी है जिसमें पूर्व के महन्तों की चरणपादुकाएं रक्खी हैं।

तहसीलों के नाम-देवरिया, हाटा पड़रौना, महाराजगंज, गोरखपुर और बांसगावँ।

मुंसफियों के नाम-देवरिया, बांसगावँ और गोरखपुर।

कसया में असिस्टेंन्ट मजिस्ट्रेट कचहरी करते हैं।

परगना सलेमपुर मझौली।

नाम तप्पे का-	गांव की संख्या-	क्षेत्रफल-
बलिया	११७	३५९६०
डोड़	३९	९३११
सलेमपुर	७१	९९५०
मैल	१३३	२५३८३
राजपुर	१५९	४५९८१
कपरवार	२७	७७७९
समोगरि	१७	५११६
नदकचवार	८३	२१८१८
बयरवना	३६	६९५७
खुखुन्दू	२६	४५६७
पुरयना	४९	५८२०

बसींपार	८०	१६५९४
भटनी	४२	९२७१
हवेली	१२८	३५३२०
गौतमा	३९	८७९९
सोहनपुर	६०	१००११
बलवन	८९	१७३८७
घांटी	६०	२४०६६
सठियांव	१८	४१८८
कचवार	१०२	२९९५५
गोबराई	१९	४०६४
सुखली	५७	१२०८
देवरिया	८	४२३८
	१४४१	३६२३४९

परगना सिलहट ।

सिहपुर	२८	१३२४६
बखिरा	१०	३५९७
कटीरा	१५	४३७७
बंचरा	३८	१५१५२
बिनायकपुर	१०	३१३९
नरानपुर	२३	६७२१
पहाड़पुर	६	२२१७
चडियांवँ	१८	७०२९
दूदराकपुर	६	१७७९
डाड़	१०	२१३१
श्रीजम	२०	६०७९
गौर	५	१८९७
बरनई	१३	३२३६
धनुरा	३३	१२३५२
मदनपुर	३८	६४५४
इन्द्रपुर	३६	१५०२५

नगावाटीकर	१५४	७१६१४
	४६३	१७६०३५

परगना शाहजहांपुर ।

भिटनी	१३	५१३०
नैली	४२	१३३९
बसागव	२१	८०५०
भैंकदेई	१८	९५१६
चक्रौवा	८	१९६१
मगवा	५९	१९९०७
नदियापार	१५	४७०९
नटना	४१	११६०१
पतरखुलवा	४०	१४१८०
	२५७	८८०८३

परगना सिधुआयोबना ।

बटसरा	१५७	१०१६१३
बांसीचरिगोरा	१०६	३३४९८
बड़गांव	३३	४५८६९
रामपुर	३१	१३३९१
रामठाव	१४	१७५४२
पृथीपुर	९	६७५९
धुरिया बिजयपुर	४०	१८९३५
बांकयोगनी	६५	३३१८३
हवेली	११९	४१४८४
सपरी कोचया	३९	१०२५२
मदराबन पट्टी	४७	१६९८३
मलसीर सरयनी	७८	२७५६१
खान	५४	१६२४३
तघेलबन गांवटीकर	४३	१३३५२
मयनपुर सावनखीर	५३	८७५२५

झललुवा	५४	१४००५
लान्डी	३९	१५६७१
पकड़ीगंगरानी	३१	९४९९
डंडूपुर	६४	१५१८४
पपौर	६९	४१३१३
परवर पार	८०	४३८३२
नवगांव	३४	१८९६४
	१२८२	५२०४०४

परगना तिलपुर।

नैकरही	४८	१७९७१
पुरानीकरी	३३	३१३१६
भारतखंड	४५	१४८९८
डोमाखंड	१४	७१२५
खास	८९	३५०४४
सुकरही	३२	१०८१४
सोनाड़ी	४५	१८७८५
	२९६	१२२३३०

परगना बिनायकपुर पूर्वी।

मिरचवार	४८	२०५४९
सियर	२०	१०३६५
नगवर	३	०
	७१	३०९१४

परगना हवेली।

मटक्कोपा	५०	२८५५८
बिरैचा	५८	३१७७७
परवरमार	५८	३६६३०
ढेढूपार	४९	१७६५१
मरमड़	४०	१९७३८
लखिमा	७	३८२८

उटी	२८	१४२८४
परखोड़ी	२४	९१८८
अगरोपा	१५	४८६६
बिदवार	४२	१४२५१
पतरा	९६	३४५९८
केवटली	८७	४६४४४
रसूलपुर	४१	१८७९८
राजधानी	९४	५८८३७
हवेली	८२	४२०३९
खुटहन	८०	३११६१
कसवा	३१	१६२७०
गैरा	६५	१४८३१
पचवार	१०४	३०८९६
मराचीचन्द्रौद	११	२०८०९
भारीभसा	३१	५२६३८
रिक्रवली	८७	२९१९८
शकरा	१८	३६६३
शुम्हाखार	२९	२३९०७
लहड़ा	२३३	१५२०२६
अन्धया	१४	४५२८
बाक्री	४०	४५५२४
कचरा	१७०	१२७२४०
	१६७४	९२०१६७

परगना चिल्लूपार।

हवेली	८९	१२६२०
सिकन्दरपुर	७७	३४३६१
शेमरा	३७	५९८९५
कशनिया	४	५२९

मझवलिया	१४	६२८४
	२११	११३६८९

परगना धुरियापार ।

बेलघाट	३१६	६४४६४
भदाय	५४	६५७१
बम्हनौली	३७	४२३६
बनकटा	३०	१९०४
बरहज	३२	४४२०
चान्दपार	१४९	२४५२
चोडर	१८	३९३५
डांडा	७	११६१
गौरा	२५	७०९६
हवेली कौहरा	५३	२९०३
कौहरा	१८	३५७०
कुरमौट	६४	९४७२
मजूरी	३२	५७६२
नकौड़ी	२७	३०९७
नरै	७१	१२०६८
खुटहन	५६	७२३४
उसरी	३५	३९६५
पाली	४१	७६०८
परसी	२९	२३०९
रतनपुर	२४	0
अठईसी	२५	४९२१
शाहपुर	२९	२७१८
तीअर	३९	७२०७
ठाटी	२२	२४५४
	१२४४	१९९६१५४

गांव बलवे में सर्कार के पक्ष पर रहने से अब मिले हैं। वर्तमान मियां इन्हीं के शिष्य हैं॥

सबज़पोश गोरखपुर-ज़ात का सैयद है। कहते हैं कि इनके पुरुषे मदीने से दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी के समय में हिन्दुस्तान में आए और अवध में कुछ गांव मुआफ़ि पाकर सीता की रसोई के निकट मसजिद बनवाई। तदनन्तर इस ज़िले में भी मुआफ़ी मिली जिसके कारण यहां आकर बसे। अब शाह अबदुल्लाह के वंश अपने घर के प्रधान हैं। सर्वदा सब्ज़ वस्त्र पहने रहते हैं।

राजा बढ़यापार-जाति के श्रीनेत राजपूत हैं। रियासत बहुतही छोटी है। राजा वसंतसिंह के पुत्र रघुसिंह के वंश में हैं।

पंडित लखिमा-इनके आधीन एक संस्कृत पाठशाला है। जिसके विद्यार्थियों के भोजनार्थ लखिमा गांव अवध के नवाब से मुआफ़ी मिला था। सर्कारी ओर से भी माफ़ है।

इन लोगों के सिवाय बहुत से रईस इस ज़िले में हैं जिनके नाम,-

बाबू बैकुंठपुर, बाबू भरहेचौरा, बाबू परवरपार, बाबू साखोपार, बाबू गढ़ेरामपुर, बाबू टेकुआटार, दुबे बड़कागांव, सूर्यनारायन पांडे मलांव, चौबे चौमुखा, जानकीप्रसाद रायसरयां।

राजा पड़रौना-इनके आदि पुरुष मझौली के राजा के सेवक थे। उन्होंने राज्य की सेवकाई करके बहुत सी ज़मीदारी प्राप्त करली। उन्हीं के बंश में ईश्वरीप्रतापराय बहुत सज्जन, हरिभक्त और बुद्धिमान हुए हैं। प्रथमही से सन् १८९८ ईस्वी तक ये लोग राय कह करके पुकारे जाते थे, परन्तु सन् १८९९ में गवर्नमेन्ट का सरक्यूलर हो गया कि जो कोई इन्हें राय कहेगा ५) रुपया दंड देगा। तब से ये राजा कहलाते हैं।

राज्य मझौली के विषय में।

सबसे प्रथम यह बात जाननी अत्यावश्यक है कि यह प्रसिद्ध राज्य किसके वंश में है, कि जिसने अपने राज्य से कितनों को राजा बना कर स्वयं कुछ अवनति को नहीं प्राप्त हुआ। इस राज्य के आदि

पुरुष विश्वसेन थे। गोरखपुरदर्पण में इस राज्य का प्रथम पुरुष चेत-मल्ल लिखा है, परन्तु इस कुल में आज तक कोई चेतमल्ल नाम का राजाही नहीं हुआ। अब यह प्रगट कर देना अवश्य है कि विश्वसेन किसके लड़के थे और इनके बाप कैसे थे? विश्वसेन राजा के पिता मयूरभट्टमुनि थे। यह महाशय उस ऋषिकुल में थे जिस ब्रह्मवंश में ब्रह्मा के पश्चात भृगु, बत्स्य, च्यवन और और्व आदि के पीछे यमदग्नि के पुत्र श्रीपरशुरामजी ने अवतार ग्रहण किया। और फिर द्रोणाचार्य्य भीष्माचार्य्य और रामाचार्य्य आदि के अनन्तर श्रीमयूरभट्टजी हुए। इन्हीं के समय में शंकराचार्य्य भी हुए थे। इन्होंने तीन विवाह किए थे। प्रथम विवाह अयोध्या के राजा के गुरु की पुत्री से, जिसका नाम नागसेनी था, किया। इसके बाद दूसरा विवाह अयोध्या के राजा की लड़की सूर्यप्रभा से किया तृतीय विवाह गाधिकुल के चन्द्रवंशी राजा की कन्या हयकुमारी से किया। प्रथम स्त्री नागसेनी से नागेशभट्ट वा नागेश्वर मिश्र उत्पन्न हुए जो मिश्र पयासी के प्रथम पुरुष थे। दूसरी स्त्री, सूर्यप्रभा से विश्वसेन हुए जो बिश्वेन कुल के प्रथम पुरुष थे। तीसरी स्त्री हय-कुमारी से बक्रमसाहि वा बाघम्बरसाहि हुए, जो वगोछिया भूमि-हार के प्रथम पुरुष थे। इन मुनि महाराज की प्रथम स्त्री के साथ एक कुर्मिन दासी आई थी जिसके वंशवाले भी अपने को इसी कुल में बताते हैं, और कहीं कहीं ऐसा लिखा भी है। परन्तु इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है। उपर्युक्त लेखानुसार यह सिद्ध हुआ कि यह राज-कुल अति पुराना है। जब सर्कार अंगरेज़ के अधिकार में यह ज़िला हुआ उस समय राजा तेजमल्ल राज्य करते थे। वर्तमान राजा का नाम कोशलकिशोरप्रसाद मल्लबहादुर है, अब राज्य इन्हीं के अधिकार में है। इनके पितामह महाराजा उदयनारायण मल्ल के समय में सारा राज्य सर्कार को ८००००० आठ लाख रुपये के बदले में जो इनको क़र्ज़ था पटौहा था, परन्तु सन् १९०१ ई० के जुलाई महीने से राज्य उक्त महाराज के अधिकार में है। यह अंगरेज़ी विद्या में चतुर हैं। जिमनास्टिक में बंगाली और अंगरेज़ों से बराबरी का दावा रखते हैं। इनके पिता का नाम लाल खड्गबहादुर मल्ल

परगना उनवल

हवेली	१६१	२६४०६
मनकटा	६४	१३३५२
महमीन	१७६	३०९४१
	४४१	७०६९९

परगना धौत्र्यापार

रेट	७५	२२११९
हवेली	८५	१८९९९
कुसवासी	६२	१६६०८
पचीसी	३२	४९५८
गुरनरहा	६२	११२१४
खरटहा	३४	६२६६
गगहा	८३	९०२९
	४३३	८९१८१

इस ज़िले के राजात्र्यों त्र्यौर प्रसिद्ध पुरुषों के विषय में।

राजा गोपालपुर–इनका वृत्तान्त यह है कि राजा चन्द्रप्रकाश के दो लड़के थे, जिनमें एक का नाम राजा भोज त्र्यौर दूसरे का नाम इन्द्रदमन था। भोज धारानगरी का त्र्यौर इन्द्रदमन ग़ाज़ीपुर का राजा हुत्र्या। राजा बिश्वनाथ ग़ाज़ीपुर के राजा का लड़का जौनपुर के राजा के साथ युद्ध में मारा गया। राजा बिश्वनाथ का बेटा ध्रुवचन्द्र जब ग़ाज़ीपुर से निकाला गया, तब ज़िले गोरखपुर में त्र्या बसा त्र्यौर उस काल में परगने शेरपुर में जो भर राज्य करते थे, उन्हें मार कर उसे त्र्यपनी राजधानी बनाई त्र्यौर उसका नाम धुरियापार रक्खा। उसीका वंश त्र्यब तक चला त्र्याता है। सन् १८५७ के उपद्रव में सर्कार के पक्ष पर रहने से नरहरपुर का राज्य त्र्यौर पारितोषिक (ख़िलत) भी मिला।

तमकुही के राजा–जाति के भूमिहार ब्राह्मण हैं। पूर्व्व काल में इस कुल का फतेहसिंह होशियारपुर ज़िले सारन का राजा था। घर के झगड़े में इसने त्र्यपने छोटे भाई को मारडाला इस कारण

सर्कार के भय से भागकर तमकुही में, जो उस समय नवाब अवध के अधिकार में थी आकर अपना राज्य स्थापन किया। उसकी चौथी पुश्त निर्वंश मरी। उसके उपरान्त वह राज्य खड़गबहादुर साही को मिला। वर्तमान राजा इन्हीं के वंश में हैं। वर्तमान समय में नए राजा, जो अभी कुमार अवस्था के हैं और उनके चचा में राज्य के वास्ते सर्कार अंगरेज़ के यहां लड़ाई होती है, अभी इसी साल वर्तमान राजा का यज्ञोपवीत और उनकी बड़ी २ बहिनों का बिवाह राजा टिकारी ज़िले गया के यहां हुआ है। पूर्व काल में इस राज्य को मझौली से विरोध था॥

उनवल का राजा–पूर्व काल में राजा भगवन्तसिंह ने उनवल और भौआपार जगधीरसिंह को दिया उन्हीं के वंश में वर्तमान राजा हैं।

रुद्रपुर का राजा–जाति का श्रीनेत क्षत्रिय है। और महाराजा मझौली की ओर से इसके पुरुषों को ८७ कोस का राज्य मिला, इस कारण से यह राज्य सतासी कहलाता है।

सिकरी गंज का नवाब–यह अमानुल्लाह और शमशेरखां पिंडारा के वंश में हैं। इनके प्रथम पुरुष करीमखां को पिंडारियों की लड़ाई के समाप्त होने के पश्चात इस ज़िले में जागीर मिली। पश्चात इनके कुलवालों ने इस ज़िले में धीरे धीरे बहुत सी ज़मींदारी और धन प्राप्त किया। यहां तक कि अब ये लोग नवाब कहे जाते हैं।

मियां गोरखपुर खास–इनका आदि पुरुष बुख़ारे से आकर धुरियापार में रहने लगा और इनके नाना का घर दाउदचक में था जिसको काजी का महल्ला कहते हैं। उक्त पुरुष बालापन से अपने नाना के गृह में रहते थे। परन्तु कुछ काल पश्चात अपना गृह पृथक बनवाया। इनकी चाल चलन ऐसी अच्छी निकली कि नवाब आसिफुद्दौला इनका दर्शन करने आया और एक इमामबाड़ा, जिस में १००००) व्यय हुआ, सोने रूपे के ताज़ियों समेत बनवा दिया और बहुत से गांव मुआफ़ कर दिए। उक्त शाह ने अहमदअली शाह को गोद लिया, यह भी फ़क़ीरों की चाल पर चलते हैं। कुछ

था। ये बड़े विद्वान और कवि थे। इन्होंने हिन्दी भाषा में गद्यपद्य मय बहुत से ग्रंथ, अनेक हिन्दी नाटक, विश्वेनवंशवाटिका नामक अपने वंश का इतिहास और बहुत कुछ लिखा है। इनके ग्रंथ खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर में छपे और मिलते हैं। सन् १८५७ के उपद्रव में सर्कार की ओर रहने से पयना आदि ग्राम पारितोषिक में इस राज्य को मिला है।

॥ इति ॥

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

आठवां भाग ।

सम्पादक

श्यामसुन्दर दास बी० ए०

काशी नागरीप्रचारिणी सभा
द्वारा प्रकाशित ।

BENARES
Printed at the Madical Hall Press,

1904.

सूचीपत्र ।

(७) पत्रिका के साथ नोटिसों की बँटाई अब से ५) रु० ली जायगी।

(८) बाबू ज्ञानदास सभा के असाधारण सभासद चुने गए हैं।

(९) बनारस के डिस्ट्रिक्टबोर्ड ने २५०) रु० सभा के पुस्तकालय के लिये दिया है।

(१०) सभा का ११वां वार्षिक अधिवेशन आगामी १६ जुलाई को होगा।

नवीन अधिकार प्राप्त सभासद।

२६ सितम्बर १९०३ (१) ठाकुर चेतराम सिंह, चंदौसी। (२) बाबू जगदीश प्रसाद अरोड़ा, काशी।

३१ अक्तुबर १९०३–पं० मातादीन शुक्ल, शाहाबाद।

२८ नवम्बर १९०३–(१)बाबू हेमचन्द्रसेन, शाहाबाद।

३० जनवरी १९०४-(१) पं० शिवनारायण शंखधर, काशी।

२६ मार्च १९०४-(१) पं० आत्मानन्दसरस्वती, कलकत्ता। (२) पं० नवरत्न गिरिधर शर्म्मा, झालरापाटन। (३) पं० रामस्वरूप शर्म्मा, मुरादाबाद। (४) बाबू रघुनन्दन लाल, आगरा। (५) पं० जीवराम शर्म्मा, मुरादाबाद। (६) पं० उमाधर पाठक, फ़ैज़ाबाद। (७) पं० महाबीर प्रसाद मिश्र, ज़ि० रायबरेली। (८) पं० रामचन्द्र शुक्ल, मिर्ज़ापुर। (९) पं० रामाधार तिवारी, मिर्ज़ापुर। (१०) चौधरी रघुबीर नारायण सिंह, ज़ि० मेरट। (११) पं० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, प्रयाग। (१२) बाबू रामचन्द्र एम० ए०, मैनपुरी। (१३) पं० विश्वनाथ प्रसाद बाजपेई, बनारस। (१४) पं० विष्णुदत्त

शुक्ल बी० ए०, सिहोरा रोड़ा। (१५)पण्डित कालीचरण त्रिपाठी, बदायूं। (१६)ठाकुर गन्धर्व सिंह,ज़ि० फ़र्रुख़ाबाद।(१७)ठा० गणपत सिंह वर्म्मा, ज़ि० रायपुर। (१८) बाबू बोधराज, ज़ि० झेलम(१९) कुं० छत्तर सिंह वर्म्मा, अलीगढ़। (२०) बाबू गुरुप्रसाद धवन, फैजाबाद। (२१) बाबू शिवप्रसाद वर्म्मा, काशी। (२२) बाबू गंगा प्रसाद वर्म्मा, काशी। (२३) बाबू लक्ष्मण दास, काशी। (२४) पं० गौरीशंकर मिश्र, काशी। (२५) बाबू सखाराम भंडारी, काशी। (२६) पं० देवदत्त मिश्र, काशी। (२७) बाबू कालीदास, काशी। (२८) पं० विनायक शास्त्री मनेजर, काशी। (२९) पं० आद्याप्रसाद मिश्र, काशी। (३०) मिसेज़स एनी बेसेण्ट, काशी। (३१) बाबू विश्वेश्वर प्रसाद वर्म्मा, काशी। (३२) बाबू मगन लाल, काशी। (३३) ठाकुर जैमंगल सिंह, काशी। (३४)बाबू गोकुल दास अग्रवाल, काशी। (३५) मिस्टर ज्योर्ज एस० एरण्डेल, काशी। (३६) मिस फ्रन्सीसिया एरण्डेल, काशी। (३७)बाबू लाल बिहारी सिंह, काशी। (३८) पं० छबीले लाल गोस्वामी, काशी। (३९) बाबू कन्हैया लाल खन्ना, काशी।

२९ मई १९०४-(१)बाबूनागेश्वर प्रसाद टंडन अकबरपुर।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक—श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

सहकारी सम्पादक—किशोरी लाल गोस्वामी

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सून। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल
विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न

हरिश्चन्द्र।

भाग ६ } सितम्बर सन् १९०४ ई० { संख्या १

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)
वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस
मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 24th August, 1904.

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

नवां भाग ।

धम्मपद ।

(ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा लिखित ।)

परिचय ।

जो बौद्ध धर्म एक दिन सारे भारतवर्ष में व्याप्त हो रहा था आज वही कराल काल की गति से इस देश से प्रायः बिलकुल लुप्त हो गया है । यह धर्म ही इस देश से लुप्त नहीं हुआ वरन् इस धर्म के तत्व भी अब बहुत ही कम लोगों को ज्ञात हैं । जो पाली भाषा एक दिन इस देश की राष्ट्र भाषा समझी जाती थी और जिसमें बौद्ध धर्म के तत्व लिखे हुए हैं आज शायद ही किसी व्यक्ति को उसका ज्ञान हो । जिस भाषा में इस धर्म के धर्मग्रंथ हैं जब वही भाषा प्रायः नष्ट हो गई है तो उसमें लिखे ग्रंथों का नष्ट हो जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है । इस देश से निकल कर इस धर्म ने चीन, जापान, स्याम, ब्रह्मा इत्यादि देशों में अपना प्रभुत्व जमाया ; जहाँ अब भी उसका विकृत स्वरूप दिखाई देता है । यूरोपीय विद्वानों को धन्य है कि जो बड़े परिश्रम और खोज के बाद इस मृत भाषा का अभ्यास, उसके धर्म-नीति ग्रंथो का संग्रह और अनुवाद करके सर्व साधारण में उनका प्रचार कर रहे हैं । यह इन्हीं महानुभावों के अनुग्रह का फल है कि जिसके द्वारा आज हम भी बौद्ध धर्म के तत्व पाठकों को बताने में समर्थ हुए । भारतवर्ष में बहुत ही कम लोगों को बौद्ध धर्म के तत्व प्रगट हैं, इसी कारण हम आज आपको कुछ थोड़ा सा उस धर्म का परिचय देना चाहते हैं ।

यह बात तो अधिकांश लोगों को ज्ञात है कि इस धर्म का प्रवर्तक गौतम नामी एक क्षत्रिय राजा का पुत्र था। उसके जीवन चरित बताने की हमें इस समय कुछ आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि इसी पत्रिका के गत किसी भाग में बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० द्वारा लिखित उस महात्मा की जीवनी प्रकाशित हो चुकी है जिसके देखने से उक्त महात्मा के जीवन का बहुत कुछ हाल प्रगट हो सकता है। परन्तु हम इस समय यहां केवल यह बताना ही ठीक समझते हैं कि इस प्राचीन धर्म के मुख्य मूल तत्त्व क्या हैं जिस से पाठकों को उसके धर्म की असलियत प्रगट हो जाय। बौद्धों का सुगत देव बुद्ध भगवान पूजनीय देव और जगत क्षणभंगुर, आर्य पुरुष और आर्या स्त्री तथा तत्वों की आख्या संज्ञादि ये चार प्रसिद्ध तत्व बौद्धों में मंतव्य पदार्थ हैं। बौद्ध लोगों का मुख्य सिद्धान्त यह है कि "बुद्ध्या निर्वतते स बौद्धः" अर्थात जो बुद्धि से सिद्ध हो उसीको माने और जो बुद्धि में न आवे उसको न माने। परन्तु काल की गति से महात्मा गौतम के बाद बौद्ध धर्म की चार शाखायें हो गईं अर्थात माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। माध्यमिक लोग सर्व शून्य मानते हैं, अर्थात जितने पदार्थ हैं वे सब शून्य अर्थात आदि में नहीं होते, अन्त में नहीं रहते, मध्यम में जो प्रतीत होते हैं वे भी प्रतीत समय में रहते हैं पश्चात शून्य हो जाते हैं इस लिये शून्य ही एक तत्त्व है। 'योगाचार' लोग बाह्य शून्य मानते हैं अर्थात पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं बाहर नहीं, घटज्ञान आत्मा में है तभी मनुष्य कहता है कि यह घट है, जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता कि यह घट है या क्या वस्तु है। 'सौत्रांतिक' लोग बाहर अर्थ का अनुमान मानते हैं क्योंकि बाहर कोई पदार्थ साङ्गोपाङ्ग प्रत्यक्ष नहीं होता, किन्तु एक देश प्रत्यक्ष होने से शेष में अनुमान किया जाता है। 'वैभाषिक' लोगों का मत है कि बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे, 'नील घट' इस प्रतीति में नील युक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है। यह चार शाखायें चार शिष्यों में भिन्न भिन्न मत होने के कारण हो गईं, यद्यपि इनका गुरु एक ही गौतम था। सारे मनुष्यों की बुद्धि एक सरीखी नहीं होती, आपस में एक दूसरे से कुछ न कुछ भेद भाव अवश्य होता है, इसी कारण से

हर एक मत में कई एक शाखायें अवश्यमेव हो जाती हैं। आज कल संसार में जितने मत प्रचलित हैं उन सबों में भी शाखान्तर देखने में आते हैं।

जिस प्रकार वैद्य या डाक्टर रोगी को देख कर पहिले पहिल रोग का निदान करता है पश्चात औषधि इत्यादि का प्रयोग कराता है उसी प्रकार बौद्ध धर्म में द्वादश निदान लिखे हैं। वे निदान ये हैं, [१] अविद्या [२] संस्कार [३] विज्ञान [४] नामरूप [५] षड यत्न [६] स्पर्श [७] वेदना [८] तृष्णा [९] भव (१०] उपादान [११] जाति [१२] जरामरण।

इसके पश्चात चार महा सत्य माने हैं। उन चार महा सत्यों के नाम ये हैं-(१) दुःख (२) दुःख की उत्पत्ति (३) दुःख का नाश (४) और दुःख नाश का उपाय। तदनन्तर दुःखनिवृत्ति के आठ आर्य मार्ग बतलाए हैं। वे अष्टाङ्ग मार्ग ये हैं,-

[१] सम्यक् दृष्टि [२] सम्यक् संकल्प [३] सम्यक् वाक्य [४] सम्यक् कर्मान्त [५] सम्यक् जीव [६] सम्यग् व्यायाम [७] सम्यक् स्मृति और [८] सम्यक् समाधि।

अब यदि यहां पर इन हर एक बातों की अलग अलग व्याख्या की जाय तो यह भूमिका ही स्वतः एक स्वतंत्र पुस्तक हो जायगी। इस कारण यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र दिया जाता है। यदि ईश्वर ने सहायता की और मुझे अवकाश मिला तो मैं "बौद्ध धर्म और उसका रहस्य" नामक एक स्वतंत्र पुस्तक लिखकर उसमें बौद्ध धर्म की पूरी पूरी व्याख्या और समालोचना करके उसे किसी समय पाठकों की भेंट कर सकूंगा। इस समय केवल इतनाही परिचय देकर पाठकों को सन्तुष्ट करना चाहता हूं। बौद्ध धर्म में हर एक गृहस्थ के लिये पांच अनुशासन प्रतिपालन करने की आज्ञा है। वे पाँच अनुशासन इस प्रकार हैं,-[१] हिंसा न करना [२] चोरी न करना [३] व्यभिचार न करना [४] मिथ्या न बोलना और [५] सुरापान न करना।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट विदित होता है कि ये पाँच आज्ञायें बौद्धधर्मानुयायी गृहस्थों को ही प्रति-

पालन न करनी चाहिएं वरन संसार के सारे गृहस्थों के लिये ये आज्ञायें शिरोधार्य होनी चाहिएं क्योंकि जितने बुरे व्यसन और यावत् पाप हैं वे सब इन्ही पाँच आज्ञायों के उल्लघन करने से उत्पन्न होते हैं। सारे पापों की जड़ हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य-भाषण और मद्यपान हैं। जो गृहस्थ इन कुव्यसनों को परित्याग कर दे वह अवश्यमेव सुखी रह सकता है, चाहे वह गृहस्थ बौद्ध, आर्य, मुसलमान और ईसाई कोई क्यों न हो।

बहुत से लोगों का सिद्धान्त है कि बौद्धधर्मानुयायी या बौद्धधर्म के आचार्य महात्मा गौतम ईश्वर अथवा आत्मा को नहीं मानते; वे केवल शून्यवादी हैं। यथार्थ में बौद्ध दार्शनिक शून्य वादी अवश्य हैं परन्तु शून्यवाद का तात्पर्य समझने में बहुत से लोग भूल करते हैं। जिन्होंने उत्तम प्रकार से शून्यवाद निरूपण किया है उन्होंने [१] ईश्वर है या नहीं [२] आत्मा नित्य है या अनित्य इत्यादि प्रश्नों को ही नहीं उठाया और न इस विषय पर उन्होंने अपना विचार या मत स्पष्ट रूप से प्रगट किया है। तब हम कैसे कह सकते हैं कि वे ईश्वरवादी हैं या नहीं, आत्मा नित्य है या अनित्य इसको मानते हैं या नहीं। बौद्ध दार्शनिक लोगों का मत है कि अविद्या और अस्मद् येही दोनों उत्पत्ति के कारण हैं। अविद्या से अहं और संसार और इन्हीं दोनों से जन्म होता है। अविद्या के नाश से अहं और संसार दोनों का नाश हो जाता है। अब यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि अहं और संसार के उच्छेद हो जाने से बाक़ी क्या रहा? अहं और संसार के उच्छेद हो जाने से जो बाक़ी रहा वही 'है' और 'नहीं' दोनों ही अतीत। यही 'अस्ति' और 'नास्ति' अतीतपदार्थ, निर्वाण और शून्यता है। यही पदार्थ भाव (Positive) भी नहीं और अभाव (Negative) भी नहीं है। भाव और अभाव दोनों अनित्य हैं। इसी कारण बौद्ध लोग निर्वाण अथवा शून्यता को भावाभाव अतिरिक्त वर्णन करते हैं। उन लोगों का ऐसा विश्वास है कि उस निर्वाणावस्था में न सुख है, न दुःख, न प्रकाश है न अंधकार और न वह अवस्था परिवर्तनशील है। उन लोगों का

कथन है कि यह निवार्णशून्यता क्या पदार्थ है इसको हम वाक्य द्वारा नहीं बतला सकते। पाठक महोदयगण! अब हमने बौद्ध धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्त आपके सम्मुख निवेदन कर दिए। अब हम आपकी सेवा में धम्मपद पुस्तक के विषय में जो बौद्धधर्म के उपदेशों का एक मुख्य ग्रंथ है और जिसका अनुवाद आगे के पृष्ठों में आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जाता है, निवेदन करना चाहते हैं। महात्मा गौतम के मरने के पश्चात बौद्धधर्मानुयायियों की एक वृहत् सभा ईसा से ४७७ वर्ष पूर्व (अथवा ४८५ वर्ष पूर्व, कारण कि समयनिर्णय में लोगों का मतभेद है) हुई। इस सभा के मुख्याधिकारी तीन महापुरुष—काश्यप, आनन्द और उपाली थे। इन महात्माओं में से महात्मा कश्यप ने 'बुद्धसूत्र' लिखकर उसका नाम 'धम्मपद' रक्खा।

धम्मपद इस शब्द के अर्थ 'धर्ममार्ग' धर्मसूत्र, सदाचार की राह इत्यादि अनेक हो सकते हैं। पाली भाषा में धर्म को धम्म कहते हैं और सूत्र को पद। प्राचीन काल में इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद संस्कृत, चीनी, जापानी, तिब्बती, बर्म्मी और मंगोली इत्यादि अनेक भाषाओं में हुए। परन्तु आजकल पश्चिमी विद्वानों की कृपा से इस बौद्धधर्म ग्रन्थ के अनुवाद लेटिन, ग्रीक, अँग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और डेंस इत्यादि अनेक भाषाओं में हुए और हो रहे हैं। जब इस ग्रन्थ का आदर संसार में इस प्रकार हो रहा है तब हमने भी अपने हिन्दी रसिक पाठकों के लिये इसका अनुवाद करना निश्चय किया। यह मूल ग्रन्थ पाली भाषा में है। प्रोफेसर मोक्ष-मूलर ने इसका अनुवाद अँग्रेज़ी भाषा में किया है और उसका मराठी अनुवाद यादवशंकर वावीकर ने करके ग्रन्थमाला नामक मासिक पुस्तक में प्रकाशित कराया। उसी अनुवाद के आधार पर से हमने भी यह अनुवाद किया है। मूल भाषा पाली न जानने और मोक्षमूलर कृत अँगरेज़ी अनुवाद बहुत कुछ खोज करने पर भी यहाँ न मिल सकने से केवल इसी पुस्तक के आधार से यह लेख लिखना पड़ा। इस ग्रन्थ में ४२२ श्लोक अर्थात् पद हैं। कई भाषाओं के अनुवादान्तर यह अनुवाद हुआ है अर्थात् मोक्षमूलर ने किसी

दूसरी पुस्तक पर से अनुवाद किया होगा और उस पर से मराठी में और मराठी से हमने किया। सम्भव है कि इसके शब्दविन्यास और शब्दयोजना में मूल ग्रंथ से कुछ भेद पड़ गया हो परन्तु हमारे विचार से ऐसा होने पर भी इसके उपदेश हर एक बालक, युवा, वृद्ध नर नारी सबके जानने और मनन करने योग्य हैं। अब मैं इस भूमिका को यहीं समाप्त करके 'धम्मपद' अर्थात बौद्ध धर्म उपदेश रत्नमाला, पाठकों के सादर भेंट करता हूं। पाठक गण! यदि इसमें कहीं किसी प्रकार की त्रुटि हो तो वह कृपा करके सुधार लीजिए या मुझे सूचना मिलने पर मैं उसे उचित संशोधन करके दूसरे संस्करण में सुधार दूंगा, क्योंकि मनुष्य से अल्पज्ञ होने के कारण भूल हो जाना सम्भव है।

धम्म पद

अर्थात्

बौद्ध-धर्म-उपदेश-रत्न-माला ।

१-यम वर्ग।

१-हमारी वर्तमान स्थिति हमारे पूर्व विचारों के अनुसार है, उसका अवलम्बन हमारे मन पर है, उसका आरम्भ हमारे मन से होता है। जिस प्रकार रथ के पहिये बैलों के पीछे पीछे चलते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य कुबुद्धि से बोलता या काम करता है उसके पीछे पीछे दुःख चलता है।

२-हमारी वर्तमान स्थिति हमारे ही पूर्व विचारों का फल है। उसका अवलम्बन हमारे मन पर हैं, उसका आरम्भ हमारे मन से होता है। मन में शुभ आशय अथवा सुविचार होने से मनुष्य उसी के अनुसार बोलता और करता है और समय के अनुसार सुख सदैव उसके पीछे साथ साथ चलता है।

३ इसने हमारा अपमान किया, इसने हमें मारा, इसने हमको विजय किया, इसने हमारा नाश किया-ऐसे विचार जिसके मन में आते हैं उसका उस मनुष्य से वैर कभी नहीं जाता।

४-इसने हमारा अपमान किया, इसने हमें मारा, इसने हमको हरा दिया, इसने हमारा नाश किया-ऐसे विचार जिसके मन में नहीं आते उसका उस मनुष्य से वैर कभी नहीं होता।

५-कारण वैर से वैर कभी नहीं जाता, वह प्रेम से नष्ट होता है, ऐसा प्राचीन सिद्धान्त है।

६-हम यहीं मरेंगे, यह बात साधारण लोगों के मन में नहीं आती, परन्तु जिनके मन में यह विचार आता है उनका लड़ना झगड़ना तुरन्त मिट जाता है।

७ जो सुख की ही चाहना करता है, जो इन्द्रियसंयम नहीं करता, जो मितभोजी नहीं होता, जो आलसी और दुर्बलेन्द्रिय है उसको कामदेव इस प्रकार पटक देता है जिस प्रकार आँधी कम ज़ोर पेड़ को पृथ्वी पर जड़ से उखाड़ देती है।

८–जिस तरह पहाड़ को पानी बहा नहीं सकता उसी तरह जो सुख की ही चाहना नहीं करते, जिन्होंने इन्द्रियों को अपने आधीन कर लिया है, जो मितभोजी है, जो श्रद्धावान और गम्भीर हैं उनको काम देव कभी नहीं हरा सकता।

९–पापों का मल बिना धोये हुए जो पीले वस्त्र पहिरने की इच्छा करता है, वह इन्द्रियनिग्रह से दूर होने के कारण पीले वस्त्र पहिरने के बिलकुल अयोग्य है।

१०–परन्तु अन्तःकरण का मल जिसने धोडाला है, सद्गुण जिसके शरीर में पूर्ण रूप से विराजमान है, जिसने इन्द्रिय निग्रह कर लिया है, वह पीले वस्त्र पहरने के योग्य है।

११–जिनको असार सार सा मालूम देता है और सार असार सा प्रतीत होता है, उनमें असत्य वासनायें भरी होने के कारण उनको सार कभी नहीं प्राप्त होगा।

१२–जिनको सार सार ही मालूम देता है और असार असार ही प्रतीत होता है, उनमें सत्य विचार होने के कारण उनको सार की प्राप्ति होती हैं।

१३–जिस प्रकार कच्चे मकान में पानी आता है उसी प्रकार अविवेकी मन में विकार आते है।

१४–जिस प्रकार पक्के मकान में पानी नहीं आता उसी प्रकार विवेकी मन में विकार नहीं आने पाते।

१५–पापी मनुष्य इस लोक में भी क्लेश पाता है और परलोक में भी क्लेश पाता है; दोनों लोकों में क्लेश पाता है। अपने कर्म देख कर उसको दुःख होता है, उसे (पीछे) शोक होता है।

१६-सदाचारी मनुष्य को इस लोक में आनन्द प्राप्त होता है और परलोक में भी आनन्द मिलता है, दोनों लोक में उसे सुख

प्राप्त होता है। अपने शुद्ध कर्मों को देखकर उसको सन्तोष और आनन्द मालूम होता है।

१७–दुराचारी मनुष्य इस लोक में कष्ट पाता है और परलोक में भी कष्ट पाता है, दोनों लोकों में कष्ट पाता है। अपने किए हुए दुराचरणों को देखकर उसको दुःख होता है, और दुराचारण में प्रवृत्ति होते समय उसको अधिक दुःख होता है।

१८–सदाचारी मनुष्य इस लोक में सुख पाता है और परलोक में भी उसे सुख मिलता है; उसे दोनों लोक में सुख प्राप्त होता है। अपना सदाचार देखकर उसको आनन्द होता है और जब वह सन्मार्ग में प्रवृत्त होता है तब उसको और भी अधिक आनन्द मिलता है।

१९–प्रमत्त मनुष्य बौद्ध (धर्म)शास्त्र को अधिक पढ़ा हो परन्तु उसके अनुकूल आचरण न करता हो तो जिस प्रकार दूसरे की गौओं को गिननेवाले ग्वाले को वे गौएं प्राप्त नहीं होतीं उसी तरह उस को श्रवणपना (आचार्यत्व) नहीं प्राप्त होता।

२०–जिसने विषय वासना, वैर और मोह को त्याग दिया, जिस को सत्य ज्ञान और मनःशान्ति प्राप्त हो गई, जो इस लोक और परलोक सम्बन्धी किसी विषय की चिन्ता नहीं करता–ऐसे शास्त्राज्ञानुसार चलनेवाला मनुष्य यदि शास्त्र को थोड़ा भी पढ़ा हो तो उसको श्रवणत्व (आचार्यत्व) प्राप्त होता है।

यमवर्ग समाप्त।

२–अप्रमाद वर्ग।

२१–अप्रमाद अर्थात् सावधानता यह निर्वाण (अमरत्व) का मार्ग है। प्रमाद अर्थात् असावधानता यह मृत्यु का मार्ग है। जो सावधान रहते हैं वे कभी नहीं मरते; जो असावधान रहते हैं उनको मृत्यु आ दबाती है।

२२–जो अच्छी तरह सावधान रहकर उसके रहस्य को जानते

हैं वे उसीमें रत रहकर श्रेष्ठ लोगों के तुल्य ज्ञान प्राप्त करके आनन्द पाते हैं।

२३–जो ज्ञानी नित्य ध्यान करते हैं और श्रेष्ठ मार्ग पर नित्य आलस्य रहित चलते हैं उनको सर्वोत्तम सुख –निर्वाण– प्राप्त होता है।

२४–जो मनुष्य सदैव सावधान रहते हैं, जिनके आचरण शुद्ध, जो विचारपूर्वक काम करते हैं, और इन्द्रियसंयम करके धर्माज्ञानुकूल चलते हैं, ऐसे पुरुषों की यशवृद्धि होती है।

२५–उद्योगनिरतता, मनोयोग और इन्द्रियसंयम इनके सहारे से जो बुद्धिमान पुरुष अपने लिए द्वीप तय्यार करता है वह द्वीप जल प्रलय होने पर भी नहीं डूबता।

२६–मूर्ख लोग अहंकार करते हैं, अविद्वानों के दास बनते हैं। बुद्धिमान मनुष्य उद्योगरूपी मूल्यवान रत्न को अपने पास रखते हैं। वे लोग अहंकार नहीं करते। माया और विषय सुख में नहीं फँसते। जो उद्योगी और विचारशील हैं उनको अधिक सुख प्राप्त होता है।

२७–२८ जब ज्ञानी मनुष्य उद्योग के सहारे से आलस्य को परित्याग करता है तब वह ज्ञानरूपी क़िले की सब से ऊंची चोटी पर जाकर असानारूढ होता है। जिस प्रकार पहाड़ पर बैठा हुआ मनुष्य नीचेवालों को देखता है उसी प्रकार (ज्ञानी मनुष्य) स्थिर चित्त हो कर मूढ़जन समूह को देखता है।

२९–आलसी मनुष्यों में आलस्य रहित, निद्रित मनुष्यों में जाग्रत–ऐसे बुद्धिमान–मनुष्य इस प्रकार हैं जिस प्रकार कोई उत्तम घोड़ा टट्टी को शर्त बांधने पर गिराकर सब से पहिले उसे फांद जाता है। तात्पर्य यह है कि वह मनुष्य आलसी और निद्रित मनुष्यों को पीछे छोड़ जाता है और अपने आप उस उत्तम घोड़े की तरह आगे बढ़कर बाज़ी जीत लेता है।

३० उद्योग के सहारे से मघवा (इन्द्र) सब देवताओं का राजा हुआ। लोग उद्योगी की स्तुति करते हैं और आलसी निरुद्योगी की सदैव निन्दा करते हैं।

३१-जो सन्यासी उद्योगरत रहकर आलस्य से डरता है वह अग्निवत् अपने सारे संचित कर्मों को भस्म कर डालता है।

३२-जो सन्यासी उद्योगरत रहकर आलस्य से डरता हैं वह अपनी पूर्व स्थिति से च्युत नहीं होता, वह निर्वाण पद के समीप पहुंच जाता है।

अप्रमाद वर्ग समाप्त।

३-चित्त वर्ग।

३३-जिस प्रकार लुहार भालों को सीधा करता है उसी प्रकार पण्डित अस्थिर, चंचल, और चपल-जिसको स्वाधीन रखना अति कठिन है-ऐसे अपने चित्त को स्थिर करते हैं।

३४ यदि मछली को पानी से निकालकर बाहर ज़मीन पर डाल दें तो वह बहुत तड़फड़ाती है उसी प्रकार अपना चित्त काम देव के संकट से छूटने को तड़फड़ाता है।

३५-स्वाधीन रखना, कठिन, चंचल और वेगगामी ऐसे मन को वश में करना उत्तम है। वश होने पर मन से सुख प्राप्ति होती है।

३६-चंचल, वेगगामी और जिसका वश में रहना अति कठिन है ऐसे मन को बुद्धिमान अपने आधीन रखते हैं। मन वश होने पर सुख प्राप्ति होती है।

३७-वायुरूप, वेगगामी, इधर उधर घूमनेवाले और अन्तःकरणरूपी गुफा में रहनेवाले-ऐसे मन को जो पुरुष अपने वश में रखता है वह मोहपाश से मुक्त हो जाता है।

३८-जिनका मन अस्थिर, जिनको सत् शास्त्र का ज्ञान नहीं, जिनका मन अशान्त है, उनको पूर्ण ज्ञान कभी नहीं प्राप्त होता।

३९-जिनका मन स्थिर, विषय रहित, पाप पुण्य रहित (?) और सावधान है उनको किसी का भय नहीं है।

४०-घड़े के तुल्य यह शरीर क्षणभंगुर है तो भी क़िले की

तरह मन को दृढ़ करके ज्ञानरूपी शास्त्र द्वारा इस पर धावा करना चाहिए। इसमें किसी प्रकार की भूल न होने देनी चाहिए।

४१—हाय हाय ! थोड़े ही समय में यह शरीर निरुपयोगी काष्टवत् अचेतन होकर पृथ्वी पर पड़ा रह जायगा।

४२—वैरी वैरी की अर्थात् शत्रु शत्रु की जितनी हानि करता है उसकी अपेक्षा कुमार्ग में लगा हुआ मन अधिक हानि पहुंचाता है।

४३—सन्मार्ग में लगा हुआ मन जितना भला करता है उतना भला मां बाप या अन्य सम्बन्धी लोग नहीं कर सकते।

चित्त वर्ग समाप्त।

४—पुष्प वर्ग।

४४—इस पृथ्वी को देवता और राक्षसों में से कौन जीतता है ? जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम पुष्पों को ढूंढ़ लाता है उसी प्रकार सदाचरण का सरल और दृढ़ मार्ग कौन ढूंढ़ निकालता है ?

४५—इस पृथ्वी को देवता और राक्षसों में जो साधक अर्थात् क्रियावान हैं वे ही जीतते हैं। जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम पुष्पों को तलाश कर लेता है उसी प्रकार साधक, उद्योगी, पुरुष सदाचरण का सरल परन्तु दृढ़ मार्ग ढूंढ़ निकालता है।

४६—जो ऐसा जानता है कि यह शरीर पानी के बुलबुले के समान है और मृगतृष्णावत् असत्य है, वह कामदेव के बाणों से छेदा नहीं जासकता और न उसे यम का द्वार देखना पड़ता है।

४७—जिस प्रकार निद्रित गांव को नदी की बाढ़ बहा ले जाती है उसी प्रकार सांसारिक सौन्दर्य में लिप्त मनुष्य को मृत्यु आकर बहा ले जाती है।

४८—सांसारिक सुख सौन्दर्य मे व्यग्र मनुष्य पर उसकी वासना पूरी होने से पहिले मृत्यु आकर अपना अधिकार जमा लेती है।

४९—जिस प्रकार भौंरा फूलों को बिना तोड़े, बिना उसके रंग

रूप सुगंध को नष्ट किए उससे पराग इकट्ठा करता है, उसी प्रकार साधू को अपने घर में रहना चाहिए।

५०–दूसरे का दोष अथवा पाप देखने की अपेक्षा साधू को अपने बुरे कर्म और आलस्य की ओर देखना चाहिए।

५१–जिस तरह सुन्दर तरह तरह के फूलों में यदि सुगंधि न हो तो वे व्यर्थ हैं उसी तरह जो जैसा बोलता है और वैसा करता नहीं उसके शब्द मधुर भी हों तो भी निष्फल होते हैं।

५२–परन्तु जिस प्रकार उत्तम भांति भांति के सुन्दर और सुगंधित फूल अच्छे लगते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य जैसा बोलता और उसीके अनुसार आचरण करता है उसके शब्द मधुर, अच्छे और सुफल होते हैं।

५३–जिस प्रकार फूलों के ढेर में से फूल लेकर अनेक प्रकार की माला माली तय्यार करते हैं उसी प्रकार एक बेर मनुष्य जन्म पाया तो उसको अधिक सत्कर्म में लगाना चाहिए।

५४–फूलों की सुगंधि वायु के प्रतिकूल नहीं जाती। चन्दन, तगर, बेला, चमेली इनकी भी सुगंधि जिस ओर वायु नहीं चलती उस ओर नहीं जाती। परन्तु जो लोग सज्जन हैं उनकी कीर्ति रूपी सुगंधि वायु के प्रतिकूल भी चलती है। मनुष्य के सदाचरणों का सब ओर संचार होता है।

५५–चन्दन अथवा तगर, कमल अथवा खस इन सब की अपेक्षा सद्गुणी पुरुष की सुगंधि अपूर्व होती है।

५६–चन्दन अथवा तगर की सुगंधि हलकी होती है, परन्तु जो सद्गुणी हैं उनकी सुगंधि अधिक और मधुर होती है, जो देवताओं पर भी अपना असर डालती है।

५७–जो सद्गुणी और विचारशील हैं, सत्य ज्ञान द्वारा जो मुक्त हुए हैं, ऐसों के मार्ग में कामदेव आकर विघ्न नहीं डालता।

५८–५९—एक छोटे से ताल में यदि कमल पैदा हुआ तो भी वह मधुर सुगंधि देनेवाला और सब को लुभानेवाला होता है। तद्वत एक छोटे ताल के तुल्य नीच और अज्ञान में फँसे हुए घराने में स्वप्रकाशित बुद्ध का शिष्य अपने ज्ञान द्वारा शोभा पाता है।

पुष्प वर्ग समाप्त

५—बाल वर्ग ।

६०—जो जागता है उसको रात अधिक है, जो थका है उसको कोस बड़े हैं; जिसको सत्यधर्म नहीं मालूम है, ऐसे मूर्ख को संसार भयंकर मालूम होता है ।

६१—प्रवासी को अपने से अच्छा अथवा अपने तुल्य प्रवासी न मिले तो उसको धैर्य के साथ अकेलेही राह चलना चाहिए परन्तु मूर्ख के साथ चलना अच्छा नहीं है ।

६२— ये पुत्र मेरे हैं, यह धन मेरा है, ऐसे विचार मूर्खों के मन में आते हैं—वह स्वतः अपनाही नहीं हैं, तो फिर लड़के और सम्पत्ति उसकी कैसे होगी?

६३—मूर्ख को अपना मूर्खपना मालूम होने पर वह अन्त में होशियार होजाता है, परन्तु जो मूर्ख अपने को होशियार समझता है वह यथार्थ में मूर्ख है ।

६४—जिस प्रकार चमचे को वस्तु का स्वाद नहीं जान पड़ता, उसी प्रकार यदि मूर्ख जन्म पर्यन्त किसी ज्ञानी के साथ रहे तो भी सत्य उसके ध्यान में कभी नहीं आवेगा ।

६५—जिस प्रकार जीभ को वस्तु का स्वाद आता है, उसी प्रकार यदि बुद्धिमान पुरुष का ज्ञानी के साथ कुछ थोड़ा बहुत भी समागम रहे तो भी सत्य उसके ध्यान में आजाता है ।

६६—जिसको बुद्धि नहीं हैं वह मूर्ख अपनाही शत्रु है क्योंकि वह जो बुरे कर्म करता है उसके बुरे फल वह जल्दी पाता है ।

६७—जिससे भविष्यत में पश्चात्ताप हो, जिसका फल रो रोकर भोगना पड़े, ऐसा काम करना अच्छा नहीं है ।

६८—परन्तु, जिस कर्म के करने से पीछे पछताना न पड़े और जिसका फल आनन्द और सन्तोषदायक हो, ऐसा काम करना अच्छा है ।

६९–बुरे कर्मों का फल जब तक नहीं मिलता तब तक मूर्ख को वह मधु सरीखा मीठा प्रतीत होता है परन्तु जब उसे उसका फल मिलता है तब उस फल से उसे दुःख प्राप्त होता है।

७०–किसी मूर्ख ने यती के तुल्य कई मास तक बराबर पत्तों पर भोजन किया और किसी अन्य पुरुष ने अच्छे प्रकार शास्त्र मनन किया। तो पहिला इस दूसरे के सामने पासँग भी नहीं है।

७१–जिस प्रकार तुरन्त का दुहा हुआ दूध तुरन्तही नहीं फट जाता, उसी प्रकार बुरे कर्मों का बुरा फल तुरन्तही नहीं मिलता। बुरे कर्मों की बुराई तुरन्तही समझ में नहीं आती। परन्तु राख में दबी आग के तुल्य वह मूर्ख का पीछा नहीं छोड़ती।

७२–बुरे कर्म प्रगट हो जाने पर मूर्ख को दुःख होता है उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती, इतनाही नहीं वरन् वे उसके भाग्य को भी दूषित करदेते हैं।

७३–सन्यासियों में अग्रगण्य होने, मठ अथवा देवालयों में मुख्याधिकारी होने और लोगों से अपने पुजाने की वृथा अभिलाषा इत्यादि कीर्तियों की चाहना मूर्ख लोग करते हैं।

७४–यह मैंने किया, वह मैंने किया, ऐसा ग्रहस्थ और सन्यासियों को मालूम होता है। जो कोई कुछ करता धरता हो वह मेरे कहने के अनुसार करे ऐसा मूर्ख चाहता है। इस कारण उसकी तृष्णा और अहंकार नित्य प्रति बढ़ता जाता है।

७५–सम्पति मिलने का एक अलग मार्ग है और निर्वाणप्राप्ति का दूसरा मार्ग है। जो सन्यासी बुद्ध का शिष्य है उसे सांसारिक विषय वासनाओं का परित्याग करना चाहिए और उनसे बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

बाल वर्ग समाप्त।

६–पण्डित वर्ग।

७६–सत्य का ख़ज़ाना कहां मिलता है यह मैं तुम से कहता हूं, किस का त्याग किसका ग्रहण करना चाहिए यह भी मैं तुमको

बतलाता हूं। यदि कोई ऐसा बुद्धिमान पुरुष तुमको मिले जो तुम्हें सावधान कर सके तो तुम उसकी बात को अवश्य ध्यान देकर सुनो। जो कोई उसकी बात सुनेगा उससे उसका भला ही होगा उससे उसका बुरा कभी न होगा।

७७–उसे सावधान कर दो, उसे उपदेश दो, जो ठीक नहीं है उसका निषेध करो, ऐसा करने से सज्जन को अच्छा लगेगा परन्तु दुर्जन उसका तिरस्कार करेंगे।

७८–दुष्ट लोगों से मित्रता न करो, नीच लोगों का साथ मत दो, सज्जनों से मित्रता करो, जो सत्पुरुष हैं उनका साथ दो।

७९–जो लोग धर्म का सेवन करते हैं वे आनन्दित और शान्त रहते हैं। आर्य (श्रेष्ठ) पुरुषों के धर्मोपदेश द्वारा सिद्ध पुरुषों को निरन्तर आनन्द मिलता है।

८०–नल लगानेवाले अथवा नाली खोदनेवाले लोग पानी को जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। तीर बनानेवाले लोग जिस ओर चाहें उसे घुमा सकते हैं; बढ़ई लकड़ी को काट छांटकर सीधी, टेढ़ी, जैसी चाहे कर सकता है परन्तु जो पण्डित हैं वे स्वयं अपने आकार अथवा स्वरूप को भी बदल सकते हैं।

८१–जिस प्रकार ऊसर पर वर्षा होने से उसकी कुछ लाभ हानि नहीं होती उसी प्रकार पण्डित को अपनी निन्दा अथवा स्तुति से कुछ लाभ हानि नहीं पहुंचती है।

८२–जो पण्डित हैं वे गहरे और शान्त सागर के तुल्य शान्त चित्त हो जाते हैं।

८३–कुछ भी हो परन्तु सज्जन अपना क्रम नहीं परित्याग करते, वे बकवाद नहीं करते और न सुख की इच्छा करते हैं। सुख प्राप्त भी हुआ तो वे उसे पाकर घमंड नहीं करते और न जल्द इतरा उठते हैं और यदि दुःख हुआ तो वे खिन्न चित्त नहीं होते।

८४–जो कोई अपने लिये अथवा दूसरे के लिये पुत्र, सम्पत्ति अथवा स्वामित्व की इच्छा नहीं करता, या अयोग्य रीति से अपने उत्कर्ष की चाहना नहीं करता, वह सज्जन, ज्ञानी और सद्गुणी है।

८५-संसार सागर से पार उतरनेवाला (निर्वाण पद पानेवाला) कोई विरलाही माई का लाल जन्मता है, बाक़ी किनारे पर इधर उधर ही घूमने वाले (संसारी लोग) बहुत हैं ।

८६-जो कोई धर्म का पूर्ण उपदेश पाने पर उसी के अनुसार आचारण करता है, वह मृत्यु के अति दुस्तर राज्य का भी उल्लङ्घन कर जाता है (अर्थात् निर्वाण पद पाजाता है) ।

८७-८८-पण्डित को बुरी स्थिति छोड़कर अच्छी स्थित में आना चाहिए। घर छोड़ने पर उतना सुख नहीं जितना सुख एकान्त वास में है । सुख को परित्याग कर बुद्धिमान पुरुष यह तेरा यह मेरा न कहकर सर्वसांसिक बाधाओं से अपना छुटकारा करे ।

८९-जिनके ध्यान में ज्ञान का तत्व पूरा पूरा आजाता है, जो किसी में आसक्त नहीं होते, मुक्तावस्था में जिनको आनन्द प्रतीत होता है, जिनकी आशाओं (Desires) का नाश हो गया है और जो तेजोमय हैं वे लोग जीवनमुक्त हैं ।

पण्डित वर्ग समाप्त ।

७-अर्हत वर्ग ।

९०-जिसने अपनी यात्रा पूरी कर ली है, जिसने दुःखों का त्याग कर दिया है, जिसने अपने संसारी बंधनों को तोड़कर उनसे अपने आपको मुक्त किया है उसको भोक्तृत्व प्राप्त होता है ।

९१-जिनको घर में सुख नहीं मालूम होता और जो पूर्ण विचार कर घर छोड़ते हैं वे सरोवर छोड़कर गएहुए हंसो के तुल्य घर छोड़ते हैं।

९२-जिसके पास धन सम्पति नहीं है, जो मितभोजी है, (परन्तु) जिसने अप्रतिबद्ध और शून्यमय निर्वाण जान लिया है, उसका मार्ग आकाश में विचरनेवाले पक्षियों के मार्गतुल्य जानना अति दुस्तर है ।

९३-जिसकी तृष्णा शान्त हो गई है। जो संभोग में तल्लीन नहीं है । जिसमें अहं (अभिमान) नहीं है और जिसकी वासनाओं

का नाश होगया है उसका मार्ग आकाश में विचरनेवाले पक्षियों के तुल्य जानना अति कठिन है।

९४–चिन्ह्यांकित घोड़े के तुल्य जिसने अपनी इन्द्रियों को अंकित किया है, जिसमें अहं भाव नहीं रहा और जिसकी वासनाओं का नाश हो गया है, ऐसे पुरुषों की देवता भी स्पर्धा करते हैं।

९५–जो कर्तव्य कर्म करता है, जो पृथ्वी अथवा बज्र के तुल्य सहनशील है वह अथाह सरोवर के तुल्य है, जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त है।

९६–सत्यज्ञान की सहायता से जिसे मुक्ति प्राप्त हुई है और उसीके सहारे से जो स्थिरचित्त हुआ है उसके विचार, शब्द और कर्म, ये तीनों द्वार शान्त हो जाते हैं।

९७–जो भोला नहीं है, जो 'अनिमित' ऐसा जानता है, जिसने सारे बन्धनों को तोड़ डाला है, जिसने मोह का नाश कर दिया है और जिसने सारी आशायें परित्याग कर दी हैं, वह सारे मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

९८–पर्णकुटि अथवा वन में गुफ़ा अथवा गुहा में जहाँ परम पूज्य (अर्हत) लोग रहते हैं वह स्थान आनन्दमय होता है।

९९–वन आनन्दमय होता है, जहाँ संसारी लोगों को आनन्द नहीं मिलता वहां विरक्त पुरुषों को आनन्द प्राप्त होता है; क्योंकि वे सुखोपभोग की चाहना नहीं करते।

अर्हत वर्ग समाप्त।

८–सहस्र वर्ग।

१००–बोध रहित सहस्र शब्द सुनने की अपेक्षा बोधयुक्त एक शब्द सुनना अच्छा है; (क्योंकि) इसके सुनने से मनुष्य की आत्मा को शान्ति होती है।

१०१–निरर्थक हज़ार शब्दों की कविता (गाथा) सुनने की अपेक्षा जिस शब्द के कान में पड़तेही शान्ति मिले ऐसे एक शब्द का सुनना भी अच्छा है।

१०२–निरर्थक सो शब्द की कविता पढ़ने की अपेक्षा धर्म का एकही शब्द पढ़ना उत्तम है क्योंकि उसके पढ़ने से मनुष्य का शान्ति मिलती है।

१०३-जो मनुष्य सहस्र वार सहस्रों लोगों को युद्ध में जीतता है उसकी अपेक्षा जो अपने आपको जीतता है वह सारे विजयी लोगों में श्रेष्ठ माना जाता है।

१०४–१०५–अन्य लोगों को जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीतना अच्छा है। जिसने अपने आपको जीत लिया है, जो सदैव इन्द्रियों को संयम में रखता है उसके यश में देव, गन्धर्व और काम-देव कालिमा नहीं लगा सकते।

१०६–जिसने महीनों सहस्र आहुतियों से बराबर सो वर्ष पर्यन्त यज्ञ किया और जिसके अन्तःकरण में अनुभव द्वारा सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसे महात्मा की क्षण भर भी सेवा करना उस सो वर्ष के यज्ञ की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

१०७–जिसने वन में रहकर अग्नि की सेवा सो वर्ष तक की और जिसके अन्तःकरण में अनुभव द्वारा सत्यज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसे महा पुरुष की क्षण भर सेवा उस यज्ञ की अपेक्षा अधिक श्रेय-स्कर है।

१०८–पुण्य प्राप्ति होने के लिये इस लोक में कैसीही आहुति अथवा बलिदान दिया जावे तो उन सबों का मूल्य एक कौड़ी बरा-बर भी नहीं है। जो सत्यशील हैं उनके ऊपर श्रद्धा रखकर उनका सत्कार करना यह उसकी अपेक्षा अधिक उत्तम है।

१०९–जो बूढ़ों को सदैव नमस्कार करता है और उन पर सदैव पूज्यभाव रखता है उसकी आयुष्य, सौंदर्य, सुख और बल की अधिक वृद्धि होती है।

११०–दुर्गुण और विषय वासनाओं में लुब्ध होकर जो सो वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो सदाचारी और विवेकशील है उसका एक दिन का भी जीना अधिक उत्तम है।

१११–ज्ञान शून्य, इन्द्रियाधीन रहकर जो सो वर्ष तक जीता

है उसकी अपेक्षा जो बुद्धिमान और विवेकशील है उसका एक दिन का जीना भी अधिक उत्तम है।

११२–आलसी और दुर्बल रहकर जो सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जिसने पूर्ण बल प्राप्त किया है उसका एक दिन का भी जीना उत्तम है।

११३–आदि और अन्त का विचार न करके जो सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो आदि और अन्त क्या है इसको जानता है उसका एक दिन का भी जीना अति उत्तम है।

११४–जो शाश्वत पद (निर्वाण) को न जानकर सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो शाश्वत पद (निर्वाण) को जानता है उसका एक दिन का भी जीना अति उत्तम है।

११५ जो सर्वोत्तम धर्म को न जानकर सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो सर्वोत्तम धर्म जानता है उसका एक दिन का भी जीना अतिही उत्तम है।

सहस्र वर्ग समाप्त।

९–पाप वर्ग।

११६–यदि किसी को अपने हाथ से जल्दी किसी उत्तम कर्म करने की इच्छा हो तो उसको चाहिए कि बुरी बातों से अपने विचारों को दूर रक्खे। जो कोई आलस्य से भी अच्छा काम करे तो उसके मन में तुरन्तही अच्छा बुरा भासने लगता है।

११७–यदि किसी ने दुराचरण किया, तो फिर उसको वह फिर कभी न करना चाहिए; दुराचरण से कभी सुख पाने की आशा न करनी चाहिए। दुराचरण का फल दुःख है।

११८–यदि किसी ने पुण्याचरण किया, तो फिर उसको करना चाहिए; उसीमें आनन्द मनाना चाहिए। पुण्याचरण का फल सुख है।

११९–जब तक बुरे कर्मों का फल नहीं प्राप्त होता तब तक बुरे कर्म करनेवाले को उसमें सन्तोष प्रतीत होता है परन्तु जभी उस

को बुरे कर्मों का फल प्राप्त हुआ तभी उसे वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है।

१२०–जब तक अच्छे कर्मों का फल नहीं मिलता सज्जन को बुरे दिन काटने पड़ते हैं, परन्तु अच्छे कर्मों का फल आने पर पीछे उसके सुदिन आते हैं।

१२१–अपना उससे मेल न होगा, ऐसा मन में विचार कर, किसी पाप कर्म की ओर लक्ष्य न देना चाहिए। जिस प्रकार धीरे धीरे पानी बरसने पर भी घड़ा भर जाता है; उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा पाप करने पर भी मूर्ख पूर्ण पापी बन जाता है।

१२२–उससे अपना कुछ भी उपयोग न होगा, ऐसा मन में विचार कर, किसी पुण्य की ओर भी लक्ष्य न देना चाहिए। थोड़ा थोड़ा भी पानी बरसने पर घड़ा भर जाता है। थोड़ा थोड़ा पुण्य संचय करके ज्ञानी पुरुष पूर्ण पुण्य शील बनता है।

१२३–जिस प्रकार प्रवास में व्यापारी जिसके पास अधिक धन हो और साथ में साथी कम हों, धोखों की राह से भागता या बचता है अथवा जिसको अपना जीवन प्यारा है वह विष से बचता है; उसी प्रकार मनुष्य को पापाचरण से बचना चाहिए।

१२४–जिसके हाथ में घाव नहीं है उसे विष स्पर्श करने से डर नहीं लगता क्योंकि उसे घाव न होने के कारण विष से हानि नहीं पहुंचती; जो पापाचरण नहीं करते, उनको पाप नहीं लगता।

१२५–जिस प्रकार हवा में धूल उड़ाने से वह उड़ानेवाले के मुंह परही आकर पड़ती है; उसी प्रकार जो मूर्ख मनुष्य निरपराध शुद्ध और सात्विकी मनुष्यों को दुःख देते हैं उनको पाप लगता है।

१२६–कितनेही लोक पुनर्जन्म पाते हैं, पापी नरक में जाते हैं, जो पुण्यशील हैं उनको स्वर्ग प्राप्त होता है। जो सांसारिक बंधनों से मुक्त हैं वे निर्वाण पद पाते हैं।

१२७–जहां मनुष्य बुरे कर्मों से मुक्त हों ऐसा स्थान अन्तरिक्ष समुद्र, गिरि कंदरा अर्थात् सारे जगत में कहीं नहीं है।

१२८-जहां प्राणी को मृत्यु का भय न हो ऐसा स्थान अन्तरिक्ष, समुद्र गिरि कन्दरा अर्थात् सारे जगत में कहीं नहीं है।

पाप वर्ग समाप्त।

१०-दण्ड वर्ग।

१२९-सारे मनुष्य दण्ड पाने से भय खाते हैं, सारे मनुष्य मौत से डरते हैं, तुम भी उसी प्रकार हो। यह ध्यान में रखकर हिंसा कभी मत करो और न किसी का विनाश करो।

१३०-सारे मनुष्य दण्ड पाने से डरते हैं, सारे मनुष्य प्राणी मात्र पर प्रीति करते हैं, तुम भी उसी प्रकार हो। यह ध्यान रख कर किसी का बध मत करो और न किसी को दुःख पहुंचाओ।

१३१-जो अपने सुख की इच्छा करता है और सुख के लिये हिंसा करता है उसको मरने के बाद सुख नहीं प्राप्त होता।

१३२-जो अपने सुख की इच्छा करता है परन्तु प्राणियों को अपने सुख के लिये नहीं मारता अथवा उनको दुःख नहीं पहुँचाता उसको मरने के बाद सुख प्राप्त होता है।

१३३-किसी से कठोर शब्द मत कहो। तुम जिससे जैसा कहोगे वह तुम को वैसाही उत्तर देगा। क्रोध से बोलना बुरा है। मरने का परिणाम शरीर के ऊपर होता है।

१३४-फूटे घड़े के तुल्य (अर्थात नाक से भिनभिनाकर) मत बोलो क्योंकि तुम निर्वाण पद पाओगे। कलह तुमको कभी न करनी चाहिए।

१३५-जिस प्रकार ग्वाला गायों की हेड़ को लकड़ी से हांकता है उसी प्रकार बुढ़ापा और मौत मनुष्य के जीव को हांकते है।

१३६-जब मूर्ख बुरे कर्म करता है तब तो उसको मालूम नहीं होता; परन्तु आग पर रोटी पकाने के तुल्य वह अपने बुरे कर्मों को पकाता है।

१३७-जो निरपराधी और ग़रीब मनुष्य को दुःख देता है उस को इन दस दशाओं में से एक आधी अवश्य प्राप्त होगी।

१३८-उसको अति दारुण दुःख होगा, हानि होगी, शारीरिक पीड़ा होगी या मनःक्षोभ होगा।

१३९-अथवा राजदण्ड होगा, कोई भयंकर अपवाद लगेगा, नातेदारों रिश्तेदारों का नाश होगा अथवा उसके धन की हानि होगी।

१४०-अथवा उसके घर में आग लगेगी और नाज इत्यादि आवश्यक सामिग्री सब जल जायगी और शरीर नष्ट होने पर वह मूर्ख नरक को जायगा।

१४१-जब तक वासनाओं का दमन न होगा तब तक कभी मनुष्य के मन की शुद्धी न होगी। चाहे वह नंगा रहे, चाहे वह जटा बढ़ावे और मैले कुचैले कपड़े पहने। अथवा उपवास करे अर्थात् भूखा रहे या ज़मीन पर सोवे, अङ्ग में राख लगावे या अचेतन बैठा रहे।

१४२-अच्छे वस्त्र पहन कर जो शान्त रहता, जो स्थिर, जितेन्द्रिय, विचारशील और पवित्राचरणी है और जो दूसरे के दोषों की ओर नहीं देखता अथवा उसका नाम नहीं धरता वही सच्चा ब्राह्मण श्रमण अथवा सन्यासी है।

१४३-जिस प्रकार अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक की ओर ध्यान नहीं रखता है उसी प्रकार जो शब्द प्रहार की ओर ध्यान नहीं देता ऐसा नम्र मनुष्य क्या कोई संसार में है?

१४४-अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक लगतेही अधिक तेज़ और चौकन्ना होजाता है उसी प्रकार श्रद्धा, सदाचरण, उत्साह, ध्यान और धर्म परिशीलता की सहायता से तुम इस (शब्दप्रहार) महान दुःख वेग को सहन करो। (ऐसा करने से) तुम ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण होगे।

१४५-नल अथवा नाली बनानेवाले लोग पानी को जिस ओर चाहें ले जाते हैं। तीर बनानेवाले लोग चाहें जिस ओर उसे घुमा सकते हैं। बढ़ई लकड़ी को काट छाँट कर टेढ़ा मेढ़ा कर सकता है परन्तु जो पण्डित हैं वे अपने आपको भी बदल सकते हैं। (तात्पर्य यह है कि नल अथवा नाली बनानेवाले, या तीर बनानेवाले पुरुष

केवल तीर, नाली या लकड़ी को ही बना बिगाड़ सकते हैं, अपने आप को नहीं, परन्तु पण्डित अपने आपको भी बना बिगाड़ सकता है)।

दण्ड वर्ग समाप्त।

११-जरा वर्ग।

१४६-यह संसार सदैव दुःखाग्नि में जला करता है इसमें सुख और आनन्द कहाँ? तुम यह जानकर भी अन्धकार में पड़े हुए, प्रकाश की तलाश क्यों नहीं करते?

१४७-फोड़ा होने से विकल, अनेक प्रकार की निद्रा, निर्बलता और व्याधिग्रस्त; ऐसे कपड़ा डाले हुए मनुष्य की ओर देखो!

१४८-दुर्बल, व्याधिग्रस्त और क्षणभंगुर ऐसा शरीर-बुराइयों की खान-नाश होगा। मृत्यु के योग से जीव नष्ट होगा (?)।

१४९-बरसात में झोपड़ा तुल्य फेंके हुए ये सफेद हाड़, इन के देखने में क्या सुख है?

१५०-हाड़ों का क़िला बनाने पर वह रक्त और मांस से ढाँका जाता है; फिर उसमें बुढ़ापा और मौत, अभिमान और कपट ये वास करते हैं।

१५१-राजा का सुन्दर रथ समय आने पर टूटता है; समय आने पर शरीर भी नाश होता है। परन्तु जो सदाचारी है उसके सद्गुणों का नाश कभी नहीं होता ऐसा सज्जन सज्जनों से कहते हैं।

१५२-जिस मनुष्य ने थोड़ा अध्ययन किया है वह बैल के तुल्य बुड्ढा है। उसकी उमर बढ़ी है परन्तु उसका ज्ञान नहीं बढ़ा।

१५३-१५४-इस झोपड़ा (शरीर) बनानेवाले का पता लगाते लगाते उसके मालूम होने तक अनेक जन्म बीत जाते हैं। बार बार जन्म पाना बड़ा दुःख है परन्तु इस झोपड़े (शरीर) के कर्ता का दर्शन होजाने पर तुमको फिर यह झोपड़ी न बनानी चाहिए। तेरे झोपड़े (शरीर) के सब खम्भे टूट गए हैं, छत के

टुकड़े टुकड़े होगए हैं । मन आधीन होजाने के कारण निर्वाणपद के समीप पहुंचने से तेरी सारी तृष्णा लुप्त होगई है।

१५५–जो उत्तम शिक्षा पर नहीं चलते और जिन्होंने युवा अवस्था में संचय नहीं किया वे–ताल सूखने पर मछलियों के मरजाने पश्चात–बगुलों के तुल्य मरते हैं।

१५६–जो उत्तम शिक्षा पर नहीं चलते और न जिन्होंने युवा-वस्था में संचय किया है वे टूटे धनुष के तुल्य बीते हुए समय का सोच करते हैं।

जरा वर्ग समाप्त ।

१२–आत्म वर्ग ।

१५७–जो कोई मनुष्य अपने ऊपर अधिक प्रीति करता है उस को चाहिए कि वह अपना स्वतः निरीक्षण करता रहे । तीन अव-स्थाओं में से बुद्धिमान को एक अवस्था में अवश्य जागृत होना चाहिए। *

१५८–जो ठीक है वह पहिले मनुष्य को स्वतः करना चाहिये और पीछे लोगों को उपदेश देना चाहिए; ऐसा करने से बुद्धि-मान मनुष्य को क्लेश नहीं होता ।

१५९–जिस प्रकार मनुष्य दूसरों को करने का उपदेश देता है उसी प्रकार स्वयं उसे करना चाहिए । पहिले अपने आप ठीक हो जाने पर पीछे दूसरों को समझाने में कठिनता नहीं पड़ती । स्वयं ठीक ठीक करना अति कठिन है ।

१६०–जो स्वयं अपना मालिक है, उसका दूसरा मालिक कौन होगा? इन्द्रिय दमन करने पर मनुष्य को ऐसा धन प्राप्त होता है जैसा दूसरों को क्वचितही प्राप्त होगा ।

१६१–जिस प्रकार हीरा मूल्यवान पत्थर के टुकड़े टुकड़े कर डालता है उसी प्रकार स्वयं किया हुआ पापाचरण, स्वयं पैदा किया

---

* तीन अवस्थाएं–बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था ।

और बढ़ाया हुआ पाप, मूढ़ पुरुष को चूर चूर (अर्थात् नाश) कर डालता है।

१६२-जिस प्रकार पेड़ से फूटकर फैलनेवाली बेल, पेड़ को ही झुका देती है; उसी प्रकार जो अति मूढ़ है वह अपने आपको जिस दशा में वह है उस दशा से शत्रु इच्छित दशा में-हीन दशा में-पहुंचा देता है।

१६३-बुरे कर्म और अपने आपको अनहितकारी, कालिमा लानेवाले काम करना तो सहज है; परन्तु हितकारी और अच्छे काम करना अति कठिन है।

१६४-जो मूर्ख, पूज्य (अर्हत), श्रेष्ठ (आर्य) और सदाचारी लोगों की आज्ञा का तिरस्कार करते और असत्य मत का अवलम्बन करते हैं वे कत्यक वृक्ष के कत्यक* फलवत अपनाही नाश कर डालते हैं।

१६५-मनुष्य स्वतः पाप करता है और उसका फल भी स्वतः ही भोगता है। वह अपने आपही पाप को त्यागता और अपने आपही शुद्ध होता है। शुद्ध अथवा अशुद्ध होना अपने हाथ में है। कोई किसीको शुद्ध अथवा अशुद्ध नहीं कर सकता।

१६६-दूसरे का काम कितनाही अधिक हो परन्तु उसके लिये अपने काम को नहीं भुलाना चाहिए। अपना कर्तव्य क्या है यह मनुष्य को विचारना और फिर उसे ध्यानपूर्वक करना चाहिए।

आत्म वर्ग समाप्त।

१३-लोग वर्ग।

१६७-बुरे धर्म का आचरण मत करो! अविचार से मत चलो! असत्य उपदेश पर मत चलो! संसार के मित्र मत बनो।†

१६८-जागते रहो। आलसी मत बनो। नीति पर चलो।

---

* कत्यक शब्द का अर्थ कई एक संस्कृत कोषों में तलाश किया गया परन्तु पता नहीं चला सम्भवतः इस का तात्पर्य बेंत अथवा नरकुल से है। फल आने बाद यह वृक्ष या तो अपने आप ही सूख जाता है या उसमें दुबारा फल आने के लिए उस को छांट देते हैं। लेखक।

† तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि सांसारिक लोगों और पदार्थों में लिप्त मत हो।

जो लोग नीतिमान हैं वे इस लोक और परलोक दोनो में आनन्द पाते हैं।

१६९–पुण्याचरण के नियमानुसार चलो। पापाचरण के नियमों पर कभी मत चलो। जो लोग पुण्याचरण करते हैं वे लोग इस लोक और परलोक दोनो में आनन्द पाते हैं।

१७०–संसार को पानी के बुलबुले तुल्य अथवा मृगतृष्णावत् समझो। जो इस प्रकार जग को तुच्छ समझता है उसकी ओर यमराज आँख उठाकर भी नहीं देखते।

१७१–राजा के रथ तुल्य चकाचौंध लाने वाले संसार को देखो! मूर्ख इसमें निमग्न हो जाते हैं और बुद्धिमान अलिप्त रहते हैं।

१७२–पहिले की धुंध खोकर पीछे जो सावधान होता–सत्यता पर आता है; वह मेघमंडल से मुक्त हुए चन्द्रमा तुल्य अपना प्रकाश जग में डालता है।

१७३–जिन लोगों के पूर्व कर्म पाप पुण्य से ढके हैं वे प्रगट होने पर चन्द्रमा के तुल्य जग में प्रकाशित हो जाते हैं।

१७४–संसार अन्धकारमय है। इसमें थोड़ासा ही दिखलाई पड़ता है। पिंजड़े में से छुटे हुए पक्षी के तुल्य यहाँ से थोड़े ही लोग स्वर्ग को जाते हैं।

१७५–हंस सूर्य के मार्ग से जाता है, वह अपने अद्भुत सामर्थ्य की योग्यता से आकाश में उड़ता है। जो बुद्धिमान हैं वे कामदेव और उसके साथ नवयौवना रमणी को जीत कर इस लोक से मुक्त होते हैं।

१७६–जिसने एक धर्म के नियमों का उल्लङ्घन किया, जो असत्य बोलने लगा और परलोक के विषय में हँसी दिल्लगी करने लगा; तो फिर कोई पाप नहीं जिसको वह करने से चूक जाय।

१७७–जो लोग कृपण हैं वे देवलोक में कभी नहीं जासकते। जो लोग मूर्ख हैं वे कभी उदार पुरुष की स्तुति नहीं करते। परन्तु जो ज्ञानी हैं उनको उदारता के बदले अधिक आनन्द मिलता है और इसकी सहायता से उनको परलोक में सुख प्राप्त होता है।

१७८–पृथ्वी पर राज्य करने की अपेक्षा अथवा स्वर्ग लोक

पाने की अपेक्षा अथवा सारे लोकों का स्वामित्व प्राप्त होने की अपेक्षा 'स्रोतआपन्न' नामक निर्वाण की पहिली सीढ़ी पर पहुंचना अधिक श्रेष्ठ है।

लोक वर्ग समाप्त।

१४–बुद्ध वर्ग।

१७९–जिसके विजय का कभी पराजय नहीं होता, जिसके विजय के सामने अन्य विजय को लेते नहीं बनता; ऐसे उस बुद्ध को, त्रिकालज्ञ को, अगम्य को, तुम किसी राह से संसार में वापस ला सकते हो?

१८०–वासनाओं के बंधन, अथवा लोभ लालच जिसके ऊपर अधिकार नहीं जमा सकते और न वे उस को कुमार्ग में ले जासकते हैं, ऐसे उस बुद्ध को, त्रिकालज्ञ को, अगम्य को, तुम किसी रीति से संसार में लौटाकर ला सकोगे?

१८१-जो बुद्ध (पूर्णज्ञानी) हैं, भूल में नहीं पड़े हुए हैं, चिन्तन में सदैव निमग्न, ज्ञानी और सर्व संग परित्याग करके शान्त दशा में आनन्द युक्त हैं ऐसों की देवता लोग भी स्पर्धा करते हैं।

१८२–मनुष्य के प्राणों की कल्पना करना दुर्लभ है, मनुष्य का सदैव जीवित रहना दुर्लभ है; सद्धर्म का सुनना और बुद्ध का जन्म लेना दुर्लभ है।

१८३—पाप मत करो, पुण्य करो। अपना चित्त शुद्ध करो। ये बुद्ध के उपदेश हैं।

१८४–शान्ति यह सब तपों से बड़ा तप है। दृढ़ता और सहनशीलता इसीसे निर्वाण प्राप्त होता है। क्योंकि जो दूसरों को मारता है वह प्रव्रजित (यति) नहीं है, जो दूसरों को दुःख देता है वह श्रमण (साधु) नहीं है–ऐसा बुद्ध का कथन है।

१८५–दूसरों के विषय में बुरा मत बोलो, दूसरों के ऊपर प्रहार मत करो। धर्मानुसार चलो, मित भोजी बनो। एकान्त में बैठो और सोओ। सदैव उच्च विचारों में निमग्न रहो–ये बुद्ध के आदेश हैं।

१८६–यदि सोने की वर्षा हो तो भी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। तृष्णा की मिठास थोड़ी होने पर भी वह दुःख दाई होती है; जो ऐसा जानता है वही बुद्धिमान है।

१८७–जिसको स्वर्ग के सुख में भी सन्तोष नहीं है, जिसके नेत्र पूर्ण रूप से खुले हैं;ऐसे सच्छिष्य तृष्णा का संहार करने में निमग्न होते हैं।

१८८–भयभीत हुए लोग गिरि, कन्दरा अथवा जंगल, उपवन और पवित्र पेड़ इत्यादि के नीचे अनेक स्थानों का आश्रय लेते हैं। (शायद पवित्र पेड़ से तात्पर्य उस बोधी वृक्ष से होगा जिसके नीचे बैठकर महात्मा गौतम ने निर्वाण पद पाया था)।

१८९--परन्तु जो आश्रय सर्वोत्तम नहीं है वह सुरक्षित भी नहीं होता; क्योंकि उसका आश्रय लेने से मनुष्य सारे दुःखों से नहीं छूटता।

१९०--जो मनुष्य बुद्ध, धर्म और संघ इन तीनों का आश्रय लेता है और (नीचे लिखे हुए) चार वचनों को जानता है,

१९१--दुःख, दुःख का मूल, दुःख का अन्त और दुःख शान्ति के आठ उपाय;–सत्य दृष्टि, सत्य संकल्प, सत्य वचन, सत्य कर्म, सत्य जीवन, सत्य व्यायाम, सत्य स्मृति और सत्य समाधि।

१९२-जो सर्वोत्तम आश्रय है वही सर्वोपरि आश्रय है; उसका आश्रय लेने पर मनुष्य सारे दुःखों से छूट जाता है।

१९३--अलौकिक पुरुष मिलना दुर्लभ है, वह सब कहीं जन्म नहीं लेता। जहाँ ऐसा सत्पुरुष जन्म लेता है वह वंश धन्य है।

१९४--बुद्ध का उपदेश सुखकारक, सद्धर्म का उपदेश सुखकारक और संघ से प्राप्त शान्ति सुखकारक; जो शान्तिमय है उस की मुक्ति सुखकारक होती है।

१९५–१९६ जिसने पाप समूह को जीत लिया मानो उसने दुःख के प्रवाह की राह बन्द करदी। जिसने संग रहित होकर जय को त्याग दिया है ऐसे सेवा करने योग्य बुद्ध और उसके शिष्य की जो सेवा करते हैं उनके पुण्य की गणना कौन कर सकता है।

बुद्ध वर्ग समाप्त।

१५-सुख वर्ग ।

१९७- जो तुम से द्वेष करते हैं (तुम) उनसे द्वेष करना छोड़ कर आनन्द पूर्वक रहो! जो तुम से द्वेष करते है उनसे वैर कभी मत करो।

१९८--व्याधिग्रस्त लोगों में व्याधि से मुक्त होकर तुम आनन्द से रहो! तुम उन लोगों में जो व्याधिग्रस्त हैं व्याधि से मुक्त होकर रहो!

१९९--लोभी लोगों में निर्लोभी होकर आनन्द पूर्वक रहो! तुम उन लोगों में जो लोभी हैं निर्लोभी हो कर रहो।

२००-अपना कुछ नहीं है ऐसा विचार कर आनन्द पूर्वक रहो! तुम देवता तुल्य आनन्द से रहो!

२०१--जय होने से वैर उत्पन्न होता है क्योंकि जित दुखी रहता है। जिसने जय पराजय छोड़ दिया है वही शान्त और सुखी है।

२००--मनक्षोभ तुल्य अग्नि नहीं है; द्वेष के तुल्य अन्य कोई बखेड़ा नहीं है; इस देह की यातना तुल्य कोई दूसरी यातना नहीं है। शान्ति सरीखा सुख नही है!

२०३-सब रोगों में क्षुधा महा रोग है! (जिसकी सहायता से बार बार जन्म मरण होता है) संस्कार छूटना बड़ा कठिन है! यथार्थ जानना यही निर्वाण, यही परम सुख है।

२०४-आरोग्यताही उत्तम पुरस्कार और समाधानही श्रेष्ठ धन है! निश्चयही अति उत्तम भाई बन्द और निर्वाणही सर्वोत्तम-श्रेष्ठ सुख है!

२०५-जिसने शास्त्रामृत पान किया है, एकान्त और शान्ति की मधुरता का अनुभव लिया है; वह भय और पाप से मुक्त हो जाता है!

२०६-आर्यों का दर्शन शुभ है, उनका समागम आनन्द देने वाला है। जिस मनुष्य ने मूर्ख का दर्शन नहीं किया वह यथार्थ में सुखी होगा।

२०७–मूर्ख के साथ थोड़ी देर भी रहने से दुःख होता है। शत्रु मिलन तुल्य मूर्ख का मिलना भी बिलकुल दुःखदाई होता है। इष्ट मित्रों के मिलने से जैसा आनन्द होता है ज्ञानी के मिलने से वैसाही आनन्द होता है।

२०८–जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों के आगे चलता है; उसी प्रकार जो बुद्धिमान, ज्ञानी, बहुश्रुत, सहनशील, कार्यदक्ष, सत्पुरुष हैं उनके पीछे चलो!

सुख वर्ग समाप्त।

१६–प्रिय वर्ग।

२०९–जो अपना कर्तव्य कर्म भुला कर प्रिय वस्तु के लिये दौड़ता है, अभिमान करता है और ध्यान करना छोड़ देता है; वह अन्त में उसकी जो ध्यान में सदैव निमग्न रहता है स्पर्धा करता है।

२१०–यह अच्छा यह बुरा–इसकी ओर मनुष्य को अधिक ध्यान न देना चाहिए। अत्यन्त प्रिय वस्तु न देखने से मनुष्य को दुःख होता है और उसे देखने पर सुख होता है।

२११–मनुष्य को किसी वस्तु की कामना न करनी चाहिए। प्रिय वस्तु का नाश दुःख का मूल है। जो किसी वस्तु की कामना नहीं करता अथवा किसी वस्तु का तिरस्कार नहीं करता; वह बन्धन से मुक्त होता है।

२१२–प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है; जो प्रेम बन्धन से मुक्त हैं, उनको शोक नहीं होता और न उन को भय होता है।

२१३–ममता से शोक उत्पन्न होता है, ममता से भय उत्पन्न होता है; जो ममता से अलग रहते हैं, उन्हें शोक नहीं होता और न उन्हें भय मालूम होता है।

२१४–आसक्त होने से शोक होता है, आसक्त होने से भय होता है; जो आसक्त नहीं होते, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१५–काम से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है; जो काम से छूट जाते हैं, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१६–तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है; जो तृष्णा से छूट जाते हैं, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१७–जो सद्गुणी, ज्ञानी, न्यायी, सत्यवक्ता और स्वकर्तव्य-रत हैं, उनके ऊपर लोग प्रीति करते हैं।

२१८–अकथनीय जो निर्वाण अवस्था है उसकी प्रीति विषयक जिसको पूर्ण इच्छा उत्पन्न हुई, जो मन से तृप्त होकर काम में आसक्त नहीं हुआ; उसको "उर्ध्वश्रोत" (उन्नति दशा में पहुँचने वाला) कहते हैं।

२१९–अधिक दूर की यात्रा करके, बहुत दिनों बाद, जो मनुष्य अच्छी तरह घर लौट आया; उसको देखकर, इष्ट, मित्र, स्नेही, और भाई बन्द सब लोग नमस्कार करते हैं।

२२०–जिस प्रकार इष्ट, मित्र अपने मित्र के लौट आने पर आदर सत्कार करते हैं, उसी प्रकार जिसने अच्छे कर्म किए हैं वह मनुष्य इस लोक से परलोक जाने बाद उसके अच्छे कर्म उसका (दोनों लोक में) आदर सत्कार कराते हैं।

प्रिय वर्ग समाप्त।

१७–क्रोध वर्ग।

२२१–मनुष्य को क्रोध त्यागना चाहिए, अभिमान छोड़ना चाहिए; सारे बन्धनों से मुक्त होना चाहिए। जो विरक्त हैं और रूप रंग में आसक्त नहीं हैं उनको दुःख नहीं होता।

२२२–दौड़ते हुए रथ के तुल्य जल्द उत्पन्न होनेवाले क्रोध को जो रोकता है वही सच्चा सारथी है। दूसरे लोग जो सारथी हुए भी, तो वे केवल बाग साधनेवाले हैं।

२२३–राग का पराजय प्रेम की सहायता से करो। अच्छे

कर्म करो, बुरों की ओर ध्यान भी मत दो। लालची को दान से और असत्य बोलनेवाले को सत्य से जीतो।

२२४-सत्य बोलो, क्रोध कभी मत करो। किसी ने कुछ माँगा तो वह उसे दो। इन तीनों साधनों से तुम देव के पास पहुँचोगे।

२२५-जो हिंसा नहीं करते और इन्द्रिय दमन करते हैं, वे सत्पुरुष ऐसे अचल स्थान में (निर्वाण) जहाँ बिलकुल दुःख नहीं है पहुँच जाते हैं।

२२६-जो सदैव सावधान रहता है, रात दिन अध्ययन करता है और निर्वाण प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है उसकी तृष्णा क्षय हो जाती है।

२२७-जो मौन रहता है उसको लोग बुरा कहते हैं, जो बहुत बोलता है उसको भी लोग बुरा कहते हैं; और जो थोड़ा बोलता है उसे भी लोग बुरा कहते हैं। इस प्रकार जगत में कोई नहीं जिसको लोग बुरा न कहते हों। हे अतुला * ! यह कहावत आजकल की नहीं बल्कि बहुत पुरानी है।

२२८-जिसकी सदैव निन्दा अथवा स्तुति होती है ऐसे मनुष्य इस संसार में न हुए हैं, न होंगे और न अब हैं!

२२९-२३०-जिसके आचरण दोष रहित, जो बुद्धिमान, ज्ञानी और सद्गुणी है और जिसकी सदा स्तुति होती है ऐसे पुरुष को जम्बू नदी से निकाले हुए सोने की नाल तुल्य (?) दोष देनेवाला कौन होगा?

२३१-क्रोध के आधीन मत हो, शरीर का निग्रह करो। कायिक दोषों का त्याग करके शरीर से सदाचरण करो।

२३२-क्रोध आने पर जिह्वा को अपने वश में रक्खो। जिह्वा का निग्रह करो। वाचिक दोषों का त्याग करके वचन द्वारा पुण्याचरण करो।

२३३-मनःक्षोभ मत करो, मन का निग्रह करो। मानसिकी पापों को छोड़ कर मन द्वारा पुण्याचरण करो।

---

* अतुला गौतम बुद्ध के एक शिष्य का नाम है।

२३४-जिन्होंने काया, वाचा और मन का निग्रह किया है वे ही सच्चे त्यागी, ज्ञानी और महात्मा हैं।

क्रोध वर्ग समाप्त।

१८—मल वर्ग।

२३५-अब तुम पके पात तुल्य हो गए हो, यमदूत तुम्हारे पास आनाही चाहते हैं, मौत के दरवाज़े पर तुम खड़े हो; परन्तु इस यात्रा के लिये तुम्हारे पास कुछ सामान नहीं है।

२३६-तुम अपनी रक्षा के लिये क़िला तय्यार करो; बहुत परिश्रम करो और बुद्धिमान बनो। जब तुम्हारे भीतर का मैल धुल जायगा और तुम पापों से मुक्त होगे तब तुम दिव्य लोक में श्रेष्ठ लोगों की तरह जा सकोगे।

२३७-तुम्हारी उमर अधिक हो गई और अब तुम मौत के बिलकुल समीप आगए हो, तुम्हारे लिये न तो अब कोई रक्षित स्थान है और न तुम्हारे पास यात्रा के लिये पूरा पूरा सामान है!

२३८-अपनी रक्षा के लिये द्वीप तय्यार करो और अधिक परिश्रम करके बुद्धिमान बनो; जिससे तुम्हारे अन्तःकरण का मैल धुल जाय और तुम दोष रहित हो; इससे तुम को जन्म और जरा अवस्था प्राप्त न होगी।

२३९-जिस प्रकार सुनार सोने या चाँदी का मैल दूर करता है उसी प्रकार तुम ज्ञान द्वारा अपने अन्तःकरण का मैल धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा पल पल पर निकाल कर फेंकते जाओ।

२४०-लोहे से पैदा होनेवाला जंग यदि एक बार वस्तु पर जम जाता है तो वह उसे खा जाता है; इसी प्रकार जो सन्मार्ग का उल्लंघन करता है उसके कर्म उसको दुर्गति में ले जाते हैं।

२४१-ध्यान का मल अनभ्यास है, घर का मल अव्यवस्था है, शरीर का मल आलस्य है और पहरेवाले का मल असावधानता है।

२४२–स्त्रियों का कलंक बुरा व्यवहार है और लोभ, दानी का कलंक है। दुराचरण इस लोक और परलोक दोनों में कलंकित करता है।

२४३–परन्तु इन सब मलों में एक बहुतही बुरा मल है अर्थात् अविद्या अथवा अज्ञान। सन्यासियो! तुम इस मल को दूर करके निर्मल बनो।

२४४–जो केवल कव्वा–दूसरों का घातक, अपमान कारक, चाण्डाल और निर्लज्ज है ऐसे मनुष्यों का जीवन सहज है।

२४५–जो विनय, शील, और पवित्रता की ओर ध्यान देने वाला; निष्काम, शान्त, निष्कलंक और होशियार है ऐसे मनुष्यों का जीवन कठिन होता है।

२४६–जो हिंसा करते, असत्य बोलते, दूसरों की वस्तु का अपहरण करते हैं, पर दारा के पास जाते हैं वे–

२४७–और जो मद्य पीने में सदैव निमग्न रहते हैं वे इस लोक में अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं।

२४८–हे मनुष्यो! जिन लोगों की वासनाएं बुरी हैं उनकी दशा शोचनीय है। हे मन! लोभ और दुराचरण तुझे दुःख से नहीं निकाल सकते, इस बात का विचार कर!

२४९–लोग, अपनी इच्छा और श्रद्धानुसार धर्म करते हैं; जो लोग दूसरों के अभ्युदय को देख कर जलते हैं उनको रात दिन शान्ति नहीं मिलती!

२५०–जो उपरोक्त भाव का नाश कर देते हैं (अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर नहीं जलते हैं) उनको रात दिन शान्ति रहती है।

२५१–विषय वासना के तुल्य अग्नि नहीं है, द्वेष के तुल्य मगर (ग्राह) नहीं है, माया के तुल्य बन्धन नहीं है और तृष्णा के तुल्य नगर नहीं है।

२५२-दूसरों के दोष सहजही में दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु अपने दोष देखना अति कठिन है; मनुष्य दूसरों के दोष भूसी के

तुल्य फटक कर निकाल लेता है परन्तु जिस प्रकार झूठा बदमाश आदमी अपना जाल दूसरों पर फैलाकर छिपाता है उसी प्रकार मनुष्य अपने दोषों को संसार से छिपाते हैं।

२५३-जो मनुष्य दूसरों के दोष देखता और सदैव क्रोध करता है, उसके मनोविकार सदैव बढ़ते जाते हैं और फिर उनसे उसका छुटकारा नहीं होता।

२५४-वायु में रास्ता नहीं है। बाहरी कर्मों से मनुष्य 'शमन' नहीं होता। मनुष्य को प्रपञ्च में आनन्द मिलता है, जो तथागत (बुद्ध) हैं वे प्रपञ्चों से मुक्त रहते हैं।

२५५-वायु में रास्ता नहीं है। बाहरी कर्मों से मनुष्य 'शमन' नहीं होता। प्राणी नित्य शान्त नहीं हैं परन्तु जो बुद्ध हैं उनके संस्कार नहीं हैं।

मल वर्ग समाप्त।

१९-धर्मशील वर्ग।

२५६-२५७-जो ज़बरदस्ती किसी बात का पता लगाता है वह धर्मशील नहीं है; जो सत्य द्वारा छान बीन करता है, जो विद्वान होकर बलात्कार नहीं, वरन् धर्म द्वारा लोगों का अगुआ बनता है; जो धर्म रक्षक और बुद्धिमान है, उसको धर्मशील कहते हैं।

२५८-अधिक बोलने से कोई पण्डित नहीं होता, जो सहनशील, भय और द्वेष से रहित है; उसीको पण्डित कहते हैं।

२५९-थोड़ा बोलने से मनुष्य धर्मशील नहीं होता, जिसने धर्म का अध्ययन थोड़ा भी किया हो परन्तु जो धर्माचरण करता हो और धर्म का कभी अनादर न करे, वही सच्चा धर्मशील है।

२६०-बाल सफ़ेद हो जाने से मनुष्य वृद्ध नहीं होता। उस की आयु बहुत होगई है, वह विचारा व्यर्थ बूढ़ा हुआ ऐसा कहते हैं।

२६१-जो सत्य धर्म, सद्गुण, प्रेम, संयत इत्यादि गुणों से भूषित और दोष रहित, ज्ञानी है उसको वृद्ध कहते हैं।

२६२-जो परसंतापी, लोभी और अविश्वासी है, वह यदि

अधिक बातें करे अथवा वह गोरापीरा हो तो भी वह श्रेष्ठ और सर्वमान्य नहीं हो सकता।

२६३—जिसमें उपरोक्त दूषण नहीं हैं या जिसके उपरोक्त दोषों का नाश हो गया है, उसे द्वेष रहित और ज्ञानी होने पर लोग श्रेष्ठ और सर्वमान्य कहते हैं।

२६४—जो अशिक्षित और असत्य बोलने वाला है, यदि उसने सिर मुंडवा लिया तो भी वह 'शमन' नहीं होसकता। तृष्णा और लोभ के बन्धन में जब तक बद्ध है तब तक क्या वह 'शमन' हो सकेगा?

२६५—पाप छोटा हो अथवा बड़ा उसको जो दमन करता है उसे शान्तचित्त कहते हैं; क्योंकि उसने सारे पापों को दमन कर लिया है।

२६६—जो दूसरे से भिक्षा मांगता है वह भिक्षुक (सन्यासी) नहीं होता; जो केवल भीखही माँगता है वह भिक्षुक (सन्यासी) नहीं है। जो सम्पूर्ण धर्माचरण करता है वही सन्यासी है।

२६७—जो पाप पुण्य से रहित अथवा गुणातीत है, जो शुद्ध है, और इसी लोक में, ज्ञान से, काल को जीत लेता है; उसीको सच्चा सन्यासी कहते हैं।

२६८—२६९-जो मूढ़ और अविद्वान है, यदि वह मौन भी रहे तो भी वह मुनि नहीं होता। जो ज्ञानी तराज़ू लेकर अच्छा एक पलड़े में रख लेता और बुरा दूसरे पलड़े में रखकर फेंक देता है उसीको मुनि कहते हैं। इस प्रकार के जो मुनि होते हैं वे तराज़ू के दोनों पलड़ों पर ध्यान रखते हैं और वेही सच्चे मुनि कहलाते हैं।

२७०—जो मनुष्य प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य (श्रेष्ठ) नहीं है। जो सारे प्राणियों पर दया भाव रखता है उसही को यह 'आर्य' पद प्राप्त होता है।

२७१—२७२-शिक्षा, व्रत, बहुत सुनने, और समाधी लगाने से जो सुख प्राप्त नहीं होता; और जो सांसारिक विषयों में फँसे हुए लोगों को कदापि अनुभव नहीं होता, वह सुख मुझे मिले ऐसी वृथा कल्पना, हे सन्यासियो! जबतक तुम वासनाओं का नाश न करलो कभी मत करो।

धर्मशील वर्ग समाप्त।

२०—मार्ग वर्ग ।

२७३—सारे मार्गों में अष्टाँग मार्ग श्रेष्ठ, सत्य में चार वाक्य श्रेष्ठ, * सद्गुणों में वैराग्य श्रेष्ठ और मनुष्य में नेत्र श्रेष्ठ है।

२७४—बुद्धि शुद्ध करने का यही (उपरोक्त वर्णित) मार्ग है, इसके सिवाय कोई दूसरा मार्ग नहीं। इसी मार्ग का अवलम्बन करो। इसी की सहायता से कामदेव पराजित होगा।

२७५—इस मार्ग पर जाने से तुम्हारे दुःखों का नाश होगा। शोक किस प्रकार दूर हो सकेगा, यह समझने के बाद, मैंने इस मार्ग का ज्ञान पाया है।

२७६—तुम को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। तथागत (बुद्ध) केवल उपदेशक होते हैं। जो विचारवान पुरुष इस मार्ग का सहारा लेता है वह कामदेव के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

२७७—"सारी बनावटी चीजों का नाश होता है" यह जो जानता है और मन में विचारता है वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है। यही निर्मल होने का मार्ग है।

२७८—"सारा चराचर जगत दुःख और शोकमय है," जो यह जानता और मन में विचारता है, वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है। यही निर्मल होने का मार्ग है।

२७९—"सारे धर्म (मत) असत्य हैं," जो यह जानता है और मन में विचारता है वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है।

२८०—जो युवा निरोगी होकर सबेरे नहीं उठता, जो आलस्य में डूबा हुआ है, जिसके संकल्प और विचार निर्बल हैं; उस आलसी मनुष्य को ज्ञान मार्ग कभी नहीं मिलता।

२८१—मनुष्य को अपनी जिह्वा रोककर, मन को स्थिर करके, शरीर से बुरे आचरण न करना चाहिए। इन्हीं तीन मार्गों पर चलने से तुमको मुनि का उपदेश किया हुआ मार्ग सहजही प्राप्त हो जायगा।

२८२—विश्वाससे ज्ञान की वृद्धि और अविश्वास से उसका क्षय होता है। ज्ञान की वृद्धि और क्षय इन दोनों को जान लेने पर जिस मार्ग

---

* अष्टांग मार्ग और चार वाक्यों का विवरण बुद्ध वर्ग के पद १९१ में दिया हुआ है।

से ज्ञान की वृद्धि हो उसी मार्ग का मनुष्य को अवलम्बन करना चाहिए।

२८३–तृष्णारूपी वन में से एकही पेड़ न काटकर, सारे वन को ही काट डालो ! तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा रूपी वन को काट डालने पर हे सन्यासियो ! तुम मुक्त होगे।

२८४–जब तक पुरुष स्त्रियों में थोड़ा भी आसक्त रहते हैं तब तक उनका मन स्त्रियों के अधीन उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार दूध पीनेवाला बच्चा अपनी माँ के सहारे रहता है।

२८५–जिस प्रकार शरद ऋतु में कमल निकलता है उसी प्रकार तू अपना स्नेह अपने आप निकाल डाल ! शान्ति के मार्ग का अवलम्बन कर ! सुगत (बुद्ध) ने निर्वाण को प्रगट किया है।

२८६ "मैं वर्षा ऋतु में यहाँ रहूँगा, जाड़े और गर्मी में वहाँ रहूँगा "–ऐसा मूर्ख मनुष्य विचारते हैं; परन्तु वे अपने मरने का बिलकुल विचार नहीं करते।

२८७–जिस प्रकार रात में सोते हुए गाँव के लोगों को नदी बहा लेजाती है उसी प्रकार जो स्त्री, बालकों और गाय भैंसों की आशक्ति में प्रसिद्ध है और जिसका मन केवल उसीमें लगा है उस मनुष्य को मृत्यु आकर लेजाती है।

२८८ एक बार मृत्यु आने पर फिर मां बाप, पुत्र और इष्ट मित्र कोई नहीं सहाय होते।

२८९–जो बुद्धिमान सज्जन पुरुष इसका तात्पर्य समझते हैं वे निर्वाण का जो रास्ता है उसको शीघ्र सुधारलें।

मार्ग वर्ग समप्त।

२१–प्रकीर्ण वर्ग।

२९०–यदि थोड़ा सुख त्याग करने से अधिक सुख प्राप्त हो तो ज्ञानी उस अल्प सुख को छोड़कर अधिक सुख प्राप्ति की इच्छा करे।

२९१—जो दूसरों को दुःख देकर अपने सुख की इच्छा करता है वह द्वेष की शृङ्खला में बद्ध होने के कारण द्वेष से कभी नहीं छूटता।

२९२—जिसका करना उचित है उसको नहीं करता और जिस का करना अनुचित है उसको करता है; ऐसे अविचारी दुष्ट मनुष्य की वासनाएं सदैव बढ़ती जाती हैं।

२९३—परन्तु जो सदैव सावधान रहता है, अकर्तव्य कर्म नहीं करता और कर्तव्य की ओर ध्यान रखता है; ऐसे बुद्धिमान, चतुर मनुष्य की वासनाओं का नाश हो जाता है।

२९४—सच्चे ब्राह्मण ने यदि माता, पिता और दो बलवान राजाओं को मारडाला और राज्य की सारी प्रजा का नाश कर दिया है तो भी उसको उसके बदले में कुछ भी दण्ड नहीं!

२९५—किसी सच्चे ब्राह्मण ने यदि माता पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं और एक दो मनुष्यों को मारडाला तो उसको उसके बदले कुछ भी दण्ड नहीं!

२९६—गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त सदैव बुद्ध में लगे रहते हैं।

२९७—गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त रात दिन धर्म में लगे रहते हैं।

२९८—गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त रात दिन संघ के स्थान में लगे रहते हैं।

२९९—गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त सदैव रात दिन अपने शरीर के लिये लगे रहते हैं। (अर्थात् शरीर से सदाचरण हो दुराचरण न हो)।

३००—गौमत (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और वे रात दिन प्राणियों पर दया रखते हैं, इससे उनको आनन्द मिलता है।

३०१—गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और वे रात दिन ध्यान में मग्न रहते हैं, इससे उनको आनन्द प्राप्त होता है।

३०२–(साधु होने के लिये) संसार छोड़ना अति कठिन है, संसार में रहकर उपभोग करना कठिन है, मठ में रहना दुर्घट है, संसार में रहना भी दुर्घट है। जो अपने बराबर के हैं उनके साथ रहना दुःखदाई है, घूमनेवाला सन्यासी भी दुःख सागर में डूबता है। इस कारण कोई केवल भिक्षा के लिये भटकता न फिरे; ऐसा करने से उसे कभी दुःख न होगा।

३०३–जो श्रद्धायुक्त, सदाचारी, प्रतापी और परिपूर्ण है वह जहाँ जाता है वहीं उसका मान होता है।

३०४–बर्फ से घिरे हुए पर्वत के तुल्य साधु का प्रकाश दूर तक पड़ता है। परन्तु जो असाधु हैं वे रात में छोड़े हुए तीर के तुल्य किसी को नहीं दिखाई देते।

३०५–बन में रहने के तुल्य जो सदैव अकेला रहता है, अकेला ही सोता है और अपने आपको जीतता है; उसको आकांक्षा त्याग की उत्तमता प्राप्त होती है।

प्रकीर्ण वर्ग समाप्त।

२२–नरक वर्ग।

३०६–कुछ नहीं हुआ और जो कहता है कि हुआ वह नरक में जाता है। कोई काम किया और कहता है कि नहीं किया वह भी नरक को जाता है। उन दोनों की मरने के बाद पापी होने के कारण एक सी दशा होती है।

३०७–ऐसे आदमी जिन्होंने गेरुए वस्त्र पहर लिए हैं परन्तु दुराचारी और स्वेच्छचारी हैं; वे पापी लोग अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में जाते हैं।

३०८–दुराचारी मनुष्य को भिक्षा मांगकर पेट भरने की अपेक्षा खूब गरम, जलते हुए अंगार तुल्य, लोहे का गोला खा लेना अच्छा है।

३०९–जो अदूरदर्शी मनुष्य, पर स्त्री की अभिलाषा करता है उसको (१) अपकीर्ति (२) निद्रा नाश करनेवाली बेचैनी (३) दण्ड और पीछे (४) नरक यातना इस प्रकार चार फल मिलते हैं।

३१०–पर स्त्री पाने के लिये कभी बुरा विचार मन में न लाओ; क्योंकि इससे मनुष्य की अपकीर्ति होती है और वह कुमार्गी नरक में जाता है। जो भयभीत हैं उनको समागम में बहुतही थोड़ा सुख प्राप्त होता है और इसके अतिरिक्त राजा उनको दण्ड भी देता है।

३११–जिस प्रकार कुश को उल्टी ओर पकड़ने से अपने हाथ से अपनी अङ्गुली चिर जाती है उसी प्रकार सन्यास व्रत अच्छी तरह न पालने पर मनुष्य नरक में जाता है।

३१२–बिना बिचारे काम करना, व्रत तोड़ता और शिक्षानुकूल आचरण न करना, इससे फल प्राप्त नहीं होता।

३१३–जो काम करने योग्य है उसको करो और उत्साहपूर्वक उसके पीछे पड़ जाओ। बिना सोचे विचारे काम करनेवाला सन्यासी इच्छा रूपी धूल अधिक उड़ाता है।

३१४–बुरा काम न करना अच्छा है, क्योंकि उसके करने से मनुष्य को पीछे पश्चात्ताप होता है। भला काम करना अच्छा है, क्योंकि उसके करने से मनुष्य को पश्चात्ताप नहीं होता।

३१५–जिस प्रकार राज्य की हद के पास किले बनाकर और उनके रक्षणार्थ चारों ओर खाई खोद कर उन्हें दृढ़ करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य अपना संरक्षण करें। समय को वृथा न खोवे। जो लोग समय को वृथा खोते हैं वे नरक में जाकर दुःख पाते हैं।

३१६–जिस विषय में लज्जा करने का कोई कारण नहीं उसमें जो लज्जा करते हैं और जिस विषय में लज्जा है उसमें लज्जा नहीं करते हैं वे लोग असत्य तत्व का अवलम्बन करने से कुमार्ग में जाते हैं।

३१७–जिस बात के करने में भय का कोई कारण नहीं उससे जो भय खाते हैं और जिस बात से भय करना चाहिए उससे भय नहीं करते; ऐसे असत्य मत का अवलम्बन करने वाले लोगों की दुर्गति होती है।

३१८–जो निषिद्ध नहीं है उसका निषेध करते हैं और जिसका करना निषिद्ध है उसका निषेध नहीं करते; ऐसे असत्य मत को स्वीकार करने वाले लोगों की दुर्दशा होती है।

३१९–जो लोग ठीक ठीक यह जानते हैं कि अमुक का निषेध है और अमुक का निषेध नहीं है ; वे लोग सत्य मत को स्वीकार करने के कारण सद्गति को पाते हैं।

नरक वर्ग समाप्त।

२३–नाग (हाथी) वर्ग।

३२०–जिस प्रकार लड़ाई में हाथी धनुष के बाण सहन करता है उसी प्रकार मैं जाड़ों में निन्दा सहन करता हूं क्योंकि यह संसार दुष्ट स्वभाव का है।

३२१–पालतू हाथी लड़ाई पर जाते हैं, पालतू हाथी के ऊपर राजा चढ़ते हैं। जो शान्ति के साथ निन्दा का सहन करता है; जिसने इन्द्रिय दमन किया है वह मनुष्यों में उत्तम है।

३२२–सिंध के पालतू घोड़े उत्तम, मोटी सूंड़ के पालतू हाथी उत्तम, पालतू खच्चर उत्तम, परन्तु जो अपने आपको पालता है अर्थात् जिसने अपने आपका त्याग कर दिया है वह इन सबों की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

३२३–जहां यह प्राणी मनुष्य की सहायता से नहीं जा सकता वहां वह मनुष्य कामना रहित पुरुष की सहायता से जा सकता है।

३२४–जो मदोन्मत्त–मद मानो उसके कंठ से टपकता है–और जिसका पकड़ना अति कठिन है ऐसे 'धनपालक' नामी हाथी को यदि पकड़कर बांध लिया तो वह घास को नहीं खाता, वह अपने घने वन की चिन्ता करता रहता है।

३२५–यदि मनुष्य गवांर और मूर्ख हुआ और उसपर वह सुस्त और आलसी हुआ तो वह मूर्ख जूठा खानेवाले सुअर के तुल्य बार-बार जन्म पाता है।

३२६–यह मेरा मन इधर उधर जहां इसे अच्छा लगता है मारा मारा फिरता है परन्तु जिस प्रकार फ़ीलवान मतवाले हाथी को अंकुश द्वारा वश में रखता है उसी प्रकार मैं अब इस अपने मन को अच्छी तरह वश में रक्खूंगा।

३२७–चतुर मनुष्य अपने विचारों को छुपाकर रखता है। कीच में फंसा हुआ हाथी जिस प्रकार अपने आपका छुटकारा कर लेता है उसी प्रकार तुम अपने तईं कुमार्गों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करो।

३२८–यदि किसी मनुष्य की भेंट, संयमी, चतुर और सदाचारी पुरुष से हो गई तो वह सारे संकटों से छूट कर आनन्द पाता है। परन्तु (शर्त यह है कि) उसको भी नियम पर चलना और सदाचारी होना चाहिए।

३२९–जिस प्रकार जीता हुआ राज्य पीछे छोड़कर राजा अकेला आगे बढ़ता है, वन में हाथी अकेला चलता है, उसी प्रकार यदि किसी मनुष्य को नियम पर चलनेवाला, चतुर और जितेन्द्रिय पुरुष न मिले तो उसको अकेलेही चलना चाहिए।

३३०–अकेले रहना अच्छा है परन्तु मूर्ख से मित्रता करना अच्छा नहीं। जिस प्रकार जङ्गल में हाथी अकेला घूमता है उसी प्रकार मनुष्य को अकेले विचरना चाहिए। दुराचरण कभी न करना चाहिए। थोड़े में ही संतोषी रहना अच्छा है।

३३१–समय आने पर मित्र सुखकारी....मरते समय सत्कृत्य सुखकारी और सारे दुःखों का त्याग सुखकारी है।

३३२–संसार में माता का रहना सुखदाई, पिता का रहना सुखदाई, जो शान्त हैं उनका रहना सुखदाई और ब्राह्मणों का रहना सुखदाई है!

हाथी वर्ग समाप्त।

२४–तृष्णा वर्ग।

३३३–अविचारी मनुष्य की तृष्णा बेल के तुल्य बढ़ती जाती है। जंगल में फल ढूंढ़ने के लिये बन्दर जिस प्रकार इधर से उधर घूमता फिरता है उसी प्रकार अविचारी मनुष्य अनेक जन्म पाता है।

३३४–प्रबल और विषयुक्त तृष्णा को जो जीत लेता है उसका भोक्तृत्व खस नामक घास के तुल्य अधिक बढ़ता है।

३३५—इस भयंकर तृष्णा को जिसका जीतना इस लोक में अति कठिन है जो जीत लेता है उसके पास दुःख इस प्रकार नहीं ठहरते जिस प्रकार कमल के पत्त पर पानी नहीं ठहरता ।

३३६--मैं तुम्हारे हित की कहता हूं। जिसको उशिर * नामक सुगन्धित जड़ चाहिए वह जिस प्रकार खस घास को खोदकर निकालते हैं अथवा जिस प्रकार नदी का प्रवाह झाऊ के पेड़ों को दबा लेता है; उसी प्रकार कामदेव तुमको न दबाले। जो तुमने इकट्ठा किया है उन सब वासनाओं की जड़ को खोद कर फेंक दो।

३३७—जब तक वृक्ष की जड़ मज़बूत रहती है तब तक वह पेड़ सुरक्षित रहता है और उसमें से शाखाएं फूटतीं, वह बढ़ता, फलता और फूलता है; उसी तरह जब तक तृष्णा का मूल से नाश नहीं होता तब तक ऐहिक दुःख बार बार होते हैं।

३३८—जिसकी तृष्णा बलवती होकर छत्तीसों दिशाओं में सुखोपभोग की ओर दौड़ती है और जिसकी इच्छा विषय वासनाओं में फँसी है,ऐसे विषयाँध मनुष्य को वह लकड़ी के तुल्य (नदी में) बहा लेजाती है।

३३९—इस प्रवाह का पाट बहुत चौड़ा है और इसके किनारे विषय वासना रूपी वृक्ष का अङ्कुर ऊगता है और वह वृक्ष बढ़ता है; यदि ये बातें तुम्हारे ध्यान में आजावें तो तुम ज्ञान के सहारे से इसकी जड़ का नाश कर डालो।

३४०—प्राणियों के विषय सुख बहुत हैं और वह विलास से भरे हुए हैं। विषय भोग में मस्त होकर जिनको सुख की लालसा है वे लोग जन्म मृत्यु के भँवर में पड़कर चक्कर खाया करते हैं।

३४१—तृष्णा की बेड़ी पहने हुए लोग खरहे के तुल्य जाल में फँसे हुए इधर से उधर घूमते हैं। तृष्णा के बंधनों में बंधे हुए वे बारम्बार अति दुःख पाते हैं।

३४२—तृष्णा में फंसे हुए लोग खरहे के तुल्य जाल में फंसे हुए इधर उधर घूमते हैं। विरक्त होने के लिये सन्यासी संयम से तृष्णा का नाश करे।

* उशिर एक सुगंधित घास का नाम है। सम्भव है बालछड़ से तात्पर्य हो।

३४३–जो तृष्णा से मुक्त होकर फिर तृष्णा के आधीन होता है और जो तृष्णा से निकलकर फिर तृष्णा में जा कर फंसता है उस मनुष्य की ओर देखो! मुक्त होकर फिर वह बन्दी गृह में जाकर गिरता है।*

३४४–लोह, लकड़ी अथवा सूत की बेड़ियों को बुद्धिमान बन्धन नहीं मानते परन्तु जो बाल, बच्चे, स्त्री, रत्न, आभूषण इत्यादि में आसक्त हैं वे इन बेड़ियों का बन्धन अति कठिन मानते हैं।

३४५–दुर्गति में जाना तो सहज है परन्तु उससे निकलना अति कठिन है। ऐसे बंधन को ज्ञानी लोग दृढ बंधन कहते हैं। इस वासना रूपी बंधन को तोड़ कर सुखोपभोग का त्याग करके लोग विरक्त होते हैं और वे संसार से मोह छोड़ देते हैं।

३४६–अपने बनाए हुए जाले पर से मकड़ी जिस प्रकार नीचे उतरती है उसी प्रकार जो अपनी इच्छाओं का दास है वह इच्छा रूपी प्रवाह में बहकर अधोगति को पहुंचता है। इस बंधन को एक बार तोड़कर और सारे मोहों को छोड़ और विरक्त होकर ज्ञानी लोग इस संसार का त्याग करते हैं।

३४७–संसार सागर पार होने के लिये जो आगे है उसका त्याग करो, पीछे है उसका त्याग करो और जो कुछ बीच में है उसका भी त्याग करो। इस प्रकार तुम्हारा मन पूर्णमुक्त होने के कारण फिर जन्म मृत्यु के बंधन में नही पड़ेगा।

३४८–संशय आत्मा और वे जिनकी इच्छाएं प्रबल हैं, जो केवल सुख की ही इच्छा करते हैं; ऐसे मनुष्यों की तृष्णा अधिक बढ़ती जाती है और उनके बन्धन अधिक दृढ़ होते जाते हैं।

३४९–शंका का सामाधान होजाने पर जिनको संतोष मिलता है, यह सब दुःख मय है ऐसा जो देखता और विचार करता है वह अवश्यमेव कामदेव को जीत लेता है।

३५०–जो परिपूर्ण हो गया है, इच्छा और दोष से रहित हो गया है, जिसने संसार के बन्धनों को तोड़ डाला है, उसका यह अन्तिम जन्म है।

* वन शब्द के दो अर्थ (१) इच्छा और (२) अरण्य होने से इस पद का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है–जो अरण्य से छुटकारा पाकर फिर अरण्य में जाता है और उस अरण्य से निकल कर फिर अरण्यवासी होता है, उस पुरुष को ओर देखो! वह मुक्त होकर फिर बन्दी गृह में जाकर गिरता है।

३५१-जिसकी इच्छाओं का नाश हो गया है और जो निःसंग हो गया है, शब्दार्थ ज्ञान जिसको पूर्ण रूप से ज्ञात हो गया है जो अक्षरों के अनुक्रम को जानता है उसका यह अन्तिम जन्म है। उसको विद्वानपुरुष, महापुरुष कहते हैं।

३५२-मैंने सब जीत लिया है, मैं सर्वज्ञ हूं, आजन्म मैं निष्कलङ्क रहा हूं, मैंने सब त्याग कर दिया और इच्छाओं का नाश करके हैन के कारण मैं मुक्त हुआ हूं; मैंने सब अपने आप सीखा, इस कारण अब मैं दूसरों को कैसे सिखाऊं ?

३५३-सब दानों में धर्म दान उत्तम है, सारे रसों में धर्मरस अधिक मधुर है, सारे आनन्दों में धर्म से होनेवाला आनन्द श्रेष्ठ है, सब दुःखों का नाश करने की इच्छाओं का परित्याग अच्छा है।

३५४-यदि संसार सागर पार जाने के लिये दृढ़ संकल्प नहीं किया तो सुखोपभोग मनुष्य का नाश कर देता है ; सुखोपभोग की लालसा से मूर्ख मनुष्य अपने हाथों अपना नाश करता है और मानो वह अपने आप अपना बैरी है।

३५५-घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है; इस कारण जो तृष्णा रहित है उसके दिए हुए दान से अधिन फल प्राप्त होता है।

३५६-घास से खेत का नाश होता है, द्वेष ही मनुष्य का नाश होता है ; इस कारण जो द्वेष से रहित है उसके दिए हुए दान से अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५७-घास से खेत का नाश होता है, मोह से मनुष्य का नाश होता है, इस कारण जो मोह रहित हो जाता है उसके दिए हुए दान से अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५८-घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है; इस कारण जिसने तृष्णा का नाश कर दिया उसके दिए हुए दान से अधिक फल मिलता है।

तृष्णा वर्ग समाप्त।

२५-सन्यासी वर्ग ।

३५९–नेत्रों का संयम करना श्रेयस्कर, कानों का संयम करना श्रेयस्कर, घ्राणेन्द्रिय का संयम करना श्रेयस्कर और जिह्वा का संयम करना श्रेयस्कर है ।

३६०–देह का संयम करना श्रेष्ठ, वाचा का संयम करना श्रेष्ठ, चित्त का संयम करना श्रेष्ठ और सब प्रकार का संयम करना श्रेष्ठ है। जो सन्यासी संयमी हो गया वह दुःख से छूट जाता है ।

३६१–जो हाथ का संयम करता है, जो पाँव का संयम करता है, जो वचन का संयम करता है, जिसने सब प्रकार उत्तम संयम कर लिया है, जो संतोषी, स्थिरचित्त, एकान्तवासी और तृप्त है उसीको लोग सन्यासी कहते हैं ।

३६२–जिस सन्यासी ने मुख का संयम कर लिया है, जो शान्ति और विवेक पूर्वक बोलता है, जो धर्म और अर्थ का उपदेश करता है उसका भाषण मधुर होता है ।

३६३ जो धर्म की विवेचना करता है, धर्म से ही आनन्द पाता है, धर्म विषयक विचार करता है और धर्मानुकूल आचरण करता है वह सन्यासी सत्यधर्म से कभी पतित नहीं होता ।

३६४–अपने लाभ को कभी तुच्छ मत समझो और दूसरों के लाभ होने पर कभी सन्ताप मत करो । जो सन्यासी दूसरों के लाभ पर सन्ताप करता है उसके मन को कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती ।

३६५–थोड़ा लाभ होने पर भी जो संन्यासी उसको तुच्छ नहीं समझता ऐसे सदाचारी और उद्योग तत्पर संन्यासी की देवता भी स्तुति करते हैं ।

३६६–जो नाम और रूपवाली किसी वस्तु से प्रीति नहीं करता और न उसके नाश होने पर कभी शोक करता है, ऐसे को सन्यासी कहते हैं।

३६७–जो दयालू और बुद्ध के उपदेशों में प्रीति करता है, ऐसा सन्यासी इच्छाओं से छूट जाता है; उसको सुख मिलता है और वह शान्ति के स्थान, निर्वाण, को प्राप्त होता है ।

३६८–हे सन्यासियो! इस नैाका को तुम खाली करो। खाली होने पर यह बड़े वेग से चलेगी। तृष्णा और बैर भाव को त्यागकर तुम निर्वाण तक जा सकोगे।

३६९–पाँच (पाँच इन्द्रियों) का दमन करो, इन पाँचों को त्याग दो, इन पाँचों को अंकित करो। इन पाँच बन्धनों से जो संन्यासी छूट गया उसको 'ओघ तीर्ण' नगर से पार हुआ कहते हैं।

३७०–हे सन्यासियो! असावधान मत हो। तुम (नरक में) तप्त किए हुए लोहों के गोले से दागे न जाओ और न भागकर यह कहते फिरो कि 'हाय क्या हुआ'। ऐसी नौबत कभी मत आने दो। जिससे भोग-सुख प्राप्त होता है ऐसी बातों की ओर ध्यान भी मत दो।

३७१–ज्ञान बिना ध्यान नहीं और ध्यान बिना ज्ञान नहीं। जहां ज्ञान और ध्यान दोनों हैं वहां ही निर्वाणप्राप्ति की सम्भावना है।

३७२–जिसने शून्य ग्रह में प्रवेश किया है, जिसका चित्त स्थिर है, जिसको धर्म का अनुभव स्पष्ट होता है, ऐसे सन्यासी को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

३७३–'शाश्वत' ऐसा जो निर्वाण है इसके देखनेवाले को जो आनन्द और सुख मिलता है वैसा आनन्द और सुख शरीर की उत्पत्ति और नाश विषयक जिसको ज्ञान है उसको प्राप्त होता है।

३७४–इन्द्रियदमन, सन्तोष और धर्माचरण इत्यादि गुणों से भूषित होकर पवित्राचरण और निरालसी सज्जन से मित्रता करना यह बुद्धिमान सन्यासी का इस संसार में पहिला कर्तव्य है।

३७५–परोपकार और कर्तव्य कर्म में रत होने से जो आनन्द मिलेगा उससे उसके क्लेश का नाश हो जायगा।

३७६–हे सन्यासियो! जिस प्रकार वासिक नामक वृक्ष सूखे हुए फूलों को त्याग देता है उसी प्रकार मनुष्य को तृष्णा और वैर भाव त्याग देना चाहिए।

७

३७७–जो सन्यासी काया,वाचा, मनसा इन तीनों से शान्त हो गया है वही स्थिर चित्त है। संसार में जिसने आमिष का त्याग किया है उसको 'उपशान्त' कहते हैं।

३७८–हे सन्यासियो! तुम अपने अपने प्रयत्न में लगो। स्वतः अपनी परीक्षा करो। ऐसा करने से तुम स्वयं स्वरक्षित और दक्ष होकर आनन्द पूर्वक समय बिता सकोगे।

३७९–कारण, मनुष्य अपने आपही अपना मालिक है, अपने आपही अपने तरने का उपाय है; जिस प्रकार व्यापारी अच्छा घोड़ा अपने वश में रखता है उसी प्रकार तुम अपने आपको अपने वश में रक्खो।

३८०–जो सन्यासी आनन्द पूर्वक रहकर बुद्ध के उपदेशों पर निश्चल भक्ति रखता है उसके संस्कारों का नाश होजाता है। उसे सुख मिलता है और निर्वाण जो शान्ति का स्थान है उसे वह प्राप्त होता है।

३८१–जो तरुण सन्यासी बुद्ध के उपदेशामृत का रस पान करता है वह संसार में इस प्रकार प्रकाशित होता है जिस प्रकार चन्द्रमा मेघ मण्डल से निकलकर अपना प्रकाश संसार पर डालता है।

सन्यास वर्ग समाप्त।

२६–ब्राह्मण (अर्हत) वर्ग।

३८२–हे ब्राह्मणो! वीरता के साथ इच्छाओं का प्रवाह रोक दो। जो जो संस्कार हुए हैं उनका नाश करना यही समझना विलक्षण है, वही तुमको समझना चाहिए।

३८३–संयम और ध्यान इन दो गुणों द्वारा जो ब्राह्मण ज्ञानी हुआ है वह सब बंधनो से मुक्त हो जाता है।

३८४–जिसको यह किनारा नहीं, और वह भी किनारा नहीं दोनोंही किनारे नहीं, जो अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रिय से मुक्त होगया है, जो निर्भय और निर्बद्ध मनुष्य है, उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३८५-जो विवेकशील, निर्दोष, स्थिर, कर्तव्यतत्पर और निर्विकार होकर परमार्थ साधन का उद्योग करता है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

३८६-सूर्य दिन में अपना तेज प्रगट करता है, चन्द्रमा रात में अपना प्रकाश फैलाता है, क्षत्रिय कवच को पहरने पर वीर दिखाई पड़ता है, ब्राह्मण ध्यानस्थ होने पर तेजस्वी मालूम होता है परन्तु बुद्ध अपने ही तेज से रात दिन प्रकाशित रहता है।

३८७-जो पाप रहित है उसको ब्राह्मण कहते हैं, जिसका आचार सम है उसको 'श्रमन' कहते हैं। जिसने अपना मल दूर कर दिया उसको 'प्रव्रजित' सन्यासी कहते हैं।

३८८-किसी ब्राह्मण को मत मारो। यदि ब्राह्मण को कोई मारे तो ब्राह्मण को भी उस पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। जो ब्राह्मण को मारता है उसको धिक्कार है! परन्तु जो ब्राह्मण मार खाने पर मारनेवाले पर हाथ उठाता है उसको सहस्र बार धिक्कार है!

३८९-जो ब्राह्मण संसार में सुखोपभोग से अपने मन का संयम करता है वह उसको अधिक हितकारी होता है। दूसरों को दुःख पहुंचाने का विचार नाश हो जाने पर अपने दुःखों का नाश स्वतः हो जाता है।

३९०-जो मन, वचन और कर्म द्वारा क्रोध नहीं करता और जिसने इन तीनों कर्मेंद्रियों का दमन कर लिया है उसको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूं।

३९१-बुद्ध के चलाए हुए धर्म को यदि मनुष्य एक बार अच्छे प्रकार समझ ले तो जिस प्रकार ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है उसी प्रकार वह उस धर्म को अवश्य स्वीकार करेगा।

३९२-जटा बढ़ाने से, अच्छे कुल में पैदा होने से अथवा जन्म संस्कार से मनुष्य ब्राह्मण नहीं होता। जो सत्याचारी और सच्चा है वही सुखी-वही ब्राह्मण है।

३९३-हे मूर्ख! जटा बढ़ाने से क्या लाभ? मृगचर्म धारण करने से क्या लाभ? भीतर मलीन रहकर तू अपनी बाहरी शुद्धि करता है!

३९४–जो मलीन वस्त्र ओढ़ लेता है, जिसकी सारी नसें दिखाई पड़ती हैं, जो बहुतही दुबला होगया है और जो जंगल में एकान्त वास करके ध्यान में मग्न रहता है; उसीको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूं !

३९५–जन्म से अथवा अमुक माता के पेट से पैदा हुआ है, यह जानकर मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। वह यथार्थ में विद्याशून्य धनवान हो गया परन्तु जो ग़रीब, न्यायी है उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूं !

३९६–जो बंधनरहित, निर्भय, त्यागी और बंधन से मुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९७–जिसने बंधन, पाश और तत्सम्बन्धी सबका नाश कर दिया है और जो सावधान है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९८–निर्दोष होकर जो निन्दा, क़ैद और मार सहता है, क्षमाही जिसका बल और सहनशीलताही जिसकी सेना है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९९–जिसका क्रोध शान्त होगया, जो कर्तव्यरत, सदाचारी, तृष्णारहित और जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है उसका यह अन्तिम शरीर है। मैं ऐसेही पुरुष को ब्राह्मण कहता हूं।

४००–कमल के पत्ते पर पानी के बिन्दुवत् अथवा सुई के नकुए के तुल्य क्षणिक जो सुखभोग है उसके लिये जो लालच नहीं करता उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०१–जिसको यह प्रतीत हो गया कि इसी लोक में मेरे दुःखों का अन्त है, जिसने यह जानकर अपने दुःखों के भार को उतार डाला और जो बन्धनमुक्त हुआ उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०२–जिसका ज्ञान अगाध है, जो बुद्धिमान है; कौन मार्ग सत्य और कौन असत्य है, यह जानता है, और जो पुरुषार्थी है उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०३–गृहस्थ और संन्यासी से जो दूर रहता है, जो घर घर भीख नहीं माँगता फिरता, जिसकी इच्छाएं अल्प हैं उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०४–प्राणी दुर्बल हो अथवा बलवान हो जो उसके रास्ते पर नहीं जाता है, जो कभी हिंसा नहीं करता और न किसी से कराता है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०५–जो सहनशील नहीं हैं उनका जो सहन करते हैं, जो दोष देते हैं उनसे जो नम्र रहते हैं, जो क्रोध करते हैं उन पर जो क्रोध नहीं करते ऐसे जो सज्जन पुरुष हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०६–जिस प्रकार सुई के नकुए से धागा निकल जाता है उसी प्रकार राग और द्वेष, गर्व और मत्सर ये जिसमें से निकल जाते हैं उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०७–जो विचार पूर्वक सत्य और मधुर भाषण करता है और किसी को दुःख नहीं देता उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०८–तुमको जो वस्तु नहीं दी गई फिर वह छोटी हो अथवा बड़ी, लम्बी हो अथवा चौड़ी, अच्छी हो अथवा बुरी जो उसको नहीं लेता उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०९–जो इस लोक अथवा परलोक की तृष्णा नहीं करता, आशा नहीं करता और जो बन्धनमुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१०–जो स्वार्थ रहित है और सत्य प्रतीत होने पर यह कैसा और वह कैसा इत्यादि शंकायें नहीं करता और जिसको निर्वाण मालूम हो गया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४११–जिसको न तो पुण्य है न पाप और न वह इनके बन्धनों में पड़ता है और जो रजोगुण मुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१२–जो चन्द्र तुल्य सतेज होकर पवित्र, शान्त चित्त और अव्यय है, जो दाम्भिक नहीं है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१३–इस कीच के रस्ते-दुस्तर संसार और अहंकार को जिसने त्याग दिया है और इस ससार सागर को पैर कर जो पार होगया है, जो विवेकशील, निष्कपट, निस्संदेह और संतुष्ट है; उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३१४–जो इस लोक की सारी वासनाओं का त्याग करके और घर को छोड़ कर अकेला विचरण करता है और जिसने सारी पाप वासनाओं का परित्याग कर दिया है, उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१५-सारी आशाओं का परित्याग करके और सन्यास लेकर जो विचरता है और जिसने सारे लोभों का परित्याग कर दिया है मैं उसको सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४१६-जो मनुष्य के बन्धनों से मुक्त होकर देवताओं के बन्धन से भी मुक्त होता है सारांश, जो सब वासनाओं से मुक्त हो जाता है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४१७-किससे सुख होता है और किससे दुःख होता है इस को जिसने छोड़ दिया है, जो उदास है और पुनर्जन्म के अंकुर को भी जिसने नाश कर दिया है और जिस वीर ने सारा संसार जीत लिया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१८-जो प्राणी मात्र की होनेवाली लय और उत्पत्ति को देखता है और जो स्वतः बन्धन से मुक्त होकर सुगत (सद्गति को प्राप्त हुआ) और बुद्ध (जो दिव्यदृष्टि हो गया है) है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१९-जिसका मार्ग देवता, गन्धर्व और मनुष्यों को नहीं मालूम होता, जिसकी वासनाओं का नाश हो गया है और जो अर्हत (पूज्य) पद को पहुँच गया है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४२०-जो अपने आप को आगे, पीछे, मध्य किसी में नहीं कहता, जो ग़रीब है और सांसारिक वासनाओं में आसक्त नहीं है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४२१-जो साहसी, उदार, सूर वीर, महान् सिद्ध, विजयी और निष्कपटी है, जिसने विद्यासम्पन्न होकर अन्तर्ज्ञान पाया है मैं उस को ब्राह्मण कहता हूँ।

४२२-जिसको अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया है जिसको यह मालूम हो गया कि स्वर्ग क्या है और नर्क क्या है जो सिद्ध, ज्ञानी और परिपूर्ण हो गया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण वर्ग समाप्त।

समाप्त।

सभासम्बन्धी समाचार ।

(१) सभा का ग्यारहवां वार्षिक अधिवेशन १६ जुलाई १९०४ को हुआ था। इसमें निम्नलिखित कार्यकर्ता और प्रबन्धकारिणी सभा के सभासद चुने गए।

सभापति—महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकरद्विवेदी।

उपसभापति—बाबू गोविन्ददास—रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स।

मंत्री-बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०।

उपमंत्री--बाबू कालिदास।

प्रबन्धकारिणी सभा के अन्य सभासद—बाबू जुगुलकिशोर बाबू राधाकृष्णदास, बाबू माधव प्रसाद, पण्डित रामनारायण मिश्र बी० ए०, पण्डित छन्नूलाल, बाबू बेणीप्रसाद, पण्डित रामचन्द्रनायक कालिया, बाबू इन्द्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू भगवती प्रसाद बी० ए०।

(२) आगामी वर्ष के लिये भिन्न भिन्न कार्यों के लिये निम्नलिखित महाशय चुने गए हैं। पत्रिका के सम्पादक--बाबू श्यामसुन्दर दास। ग्रन्थमाला के सम्पादक--बाबू राधाकृष्णदास। ग्रन्थमाला और पत्रिका के सहकारी सम्पादक—पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी।

पुस्तकालय के सुपरण्टेण्डेण्ट—बाबू बेणी प्रसाद।

नागरी प्रचार " " -बाबू माधवप्रसाद।

छपी पुस्तकों की सूची पर रिपोर्ट लिखनेवाले—बाबू कालिदास।

(३) बोर्ड आफ ट्रस्टीज ने आगामी वर्ष के लिये पण्डित रामनारायण मिश्र और बाबू रामप्रसाद चौधरी को हिसाब जांचने के लिये चुना है।

(४) सभा को बड़ा दुःख है कि उसके दो बड़े सहायकों का, अर्थात् बाबू कार्तिक प्रसाद और म० कु० बाबू गुरुप्रसादसिंह का परलोक वास हो गया। ईश्वर इनकी आत्मा को शान्ति दे।

(५) सभाके ग्यारहवें वर्ष की रिपोर्ट अंग्रेजी में भी छापकर प्रकाशित की गई है। जिन सभासदों की इच्छा उसे देखने की हो लिखकर मंगवा लें।

(६) बाबू गोविन्द दास ने सभाभवन के सम्मुख लगवाने के लिये एक फौवारा दिया है।

(७) बाबू काशिप्रसाद ने सभाभवन में लगवाने के लिये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के एक तैलचित्र का व्यय देना स्वीकार किया है।

नवीन अधिकार-प्राप्त सभासद।

(ग्यारहवीं रिपोर्ट में प्रकाशित नामों के आगे)

२३ मार्च १९०४-(१) बाबू ब्रजमोहन खत्री, काशी (२) पण्डित प्रभूदत्त शर्म्मा, काशी।

२४ जून १९०४-(१) पण्डित राधाकृष्ण शर्म्मा, शाहाबाद, हरदोई (२) बाबू बेचे लाल सेठ, शाहाबाद, हरदोई (३) पण्डित शिवनारायण शर्म्मा, शाहाबाद, हरदोई (४) पण्डित श्यामनारायण शर्म्मा, शाहाबाद, हरदोई (५) पण्डित गणेशदत्त सिद्धान्ती, महोली, सीतापुर (६) पण्डित ठाकुर प्रसाद मिश्र, खेतड़ी (७) पण्डित आत्माराम हरिखाण्डीलकर, काशी।

३० जूलाई १९०४-(१) बाबू के० डी० राय, रोहनी (२) लाला जगन्नाथ प्रसाद हकीम, बुरहानपुर (३) बाबू अवध विहारी लाल सहारनपुर (४) पण्डित महादेवशरण पांडे, सारन।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक–श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

सहकारी सम्पादक–किशोरी लाल गोस्वामी

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥ करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल॥ विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार॥ प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

हरिश्चन्द्र।

भाग ९ } दिसम्बर सन् १९०४ ई० { संख्या २

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)

वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस

मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 15th December, 1904.

सभा सम्बन्धी समाचार।

(१) सभा के मासिक अधिवेशन इस प्रकार हुए—

३० जूलाई—५ महाशय नवीन सभासद चुने गए, ३ सभासदों का इस्तीफ़ा स्वीकार हुआ और अनेक पुस्तकें स्वीकारार्थ उपस्थित की गईं।

२७ अगस्त—१२ महाशय नवीन सभासद चुने गए, ८ सभासदों का इस्तीफ़ा स्वीकार किया गया, अनेक पुस्तकें स्वीकारार्थ उपस्थित की गईं और बाबू शिवप्रसाद ने नेलसन के जीवनचरित पर एक वक्तृता दी।

२४ सितम्बर—१२ महाशय नवीन सभासद चुने गए, ६ सभासदों का इस्तीफ़ा स्वीकार हुआ, अनेक पुस्तकें स्वीकारार्थ उपस्थित की गईं और बाबू दुर्गा प्रसाद ने रेडियम धातु पर एक वक्तृता दी।

२९ अक्तूबर—१४ महाशय नवीन सभासद चुने गए, अनेक पुस्तकें स्वीकारार्थ उपस्थित की गईं और बाबू कालिदास ने तिब्बत पर एक वक्तृता दी।

२६ नवम्बर—१५ महाशय नवीन सभासद चुने गए, एक महाशय का इस्तीफ़ा स्वीकार हुआ, डाक्टर ग्रियर्सन आनरेरी सभासद चुने गए और अनेक पुस्तकें स्वीकारार्थ उपस्थित की गईं।

(२) तारीख़ १७ नवम्बर को सभा का एक विशेष उत्सव हुआ जिसमें बनारस के कलेक्टर मिस्टर ई० एच० रडीची साहब ने उस फुहारे को खोला जिसे बाबू गोविन्द दास ने अपने गोलोकवासी पिता के स्मरणार्थ सभा को दिया है। कलेक्टर साहब ने फुहारा खोलते हुए यह कहा—

Filial piety is a virtue which we all admire and it gives me, therefore, great pleasure to have been able to take even a formal and insignificant part in a ceremony, which is held to put the finishing touch to a memorial, which is the outcome of filial affection. May the example of the donor, Babu Govinda Dās, be followed by other worthy sons of other worthy citizens of Benares, who have the beautifying of their birthplace at heart, and may the water that flows from this fountain

कल्पना का आनन्द।

(पण्डित रामचन्द्रशुक्ल द्वारा अनुवादित।)

पहिला प्रकरण।

हमारी दृष्टि हमारी इन्द्रियों में सबसे अधिक पूर्ण और आनन्ददायिनी है। चित्त को अधिकांश प्रकार के भावों से यह पूर्ण करती है, दूर से दूर की वस्तुओं से बात चीत करती है और अपने नियत आनन्द के अनुभव से बिना थके और संतुष्ट हुए सबसे अधिक काल तक अपनी क्रिया में तत्पर रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी स्पर्शेन्द्रिय हमे पदार्थों के विस्तार, रूप तथा रंग के सिवाय और अन्याय भावों का, जिनका प्रवेश नेत्रपथ से होता है, बोध करा सकती है; किन्तु साथही पदार्थों की संख्या, दूरी और उनके पिण्ड के विषय में उसकी क्रिया बहुतही संकुचित और परिमित है। हमारी दृष्टि इन सब अभावों को पूरा करने के लिये बनाई गई है। हमारा अवलोकन एक प्रकार का अधिक कोमल और प्रसृत स्पर्श है, जो अगणित वस्तु-समुदाय को अपने अन्तर्गत करता है, बृहत् से बृहद् रूपों का बोध कराता है और संसार के सबसे दूरस्थित भागों को हमारी पहुंच के भीतर लाता है।

यही इन्द्रिय है, जो कल्पना को सामग्री प्रदान करती है; इसलिये कल्पना के आनन्द से (जिसका प्रयोग इस निबन्ध में कई जगह किया जायगा) मेरा अभिप्राय उस आनन्द से है, जो दृश्य पदार्थों से प्राप्त होता है, चाहे वे पदार्थही हम लोगों के सम्मुख हों अथवा उनका रूप हम चित्र, प्रतिमा वा वर्णनों द्वारा अपने मन में लावें। निस्सन्देह हमारे चित्त में एक भी प्रतिरूप ऐसा न निकलेगा जो नेत्रों के द्वार से न गया हो; किन्तु हम लोगों को उन स्वरूपों को, जो एक बार प्राप्त हुए, धारण करने, और घटा बढ़ाकर ऐसे वैसे रूपों में लाने की शक्ति है, जो कल्पना को सबसे अधिक प्रिय होते हैं। इसी शक्ति के प्रभाव से मनुष्य घोर कारागार में रहकर भी

ऐसे ऐसे दृश्यों की बहार ले सकता है, जो इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर नहीं पाए जा सकते।

पाठकों को स्मरण रखना होगा कि कल्पना के आनन्द से मेरा अभिप्राय केवल उस आनन्द से है, जो दृष्टि द्वारा उत्पन्न होता है। मैं इस आनन्द को दो भागों में विभक्त करूंगा; पहिले तो मैं उस प्रथम श्रेणी के आनन्द के विषय में कहूंगा, जो सर्वथा ऐसे पदार्थों ही से उत्पन्न होता है, जो हमारे नेत्रों के सामने हैं; तदनन्तर उस द्वितीय श्रेणी के आनन्द के विषय में, जो दृश्य पदार्थों के केवल ध्यानमात्र से उत्पन्न होता है, जब कि वे पदार्थ हम लोगों की आँख के सामने नहीं रहते, बरन हमारी स्मृति में लाए जाते हैं, अथवा कल्पना द्वारा रमणीय रूपों में निर्मित किए जाते हैं।

कल्पना का आनन्द अपने पूर्ण रूप में न तो ऐसा भद्दाही है, जैसा इन्द्रियों का; और न ऐसा संस्कृतही है, जैसा विचार या विवेचना का। इस अन्तिम प्रकार (विचार) के आनन्द का साधन निस्सन्देह उत्तम है, क्योंकि उसकी स्थिति मनुष्य के किसी नवीन–प्राप्त–ज्ञान वा आत्मा की उन्नति पर रहती है। किन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि कल्पना का आनन्द भी वैसा ही बड़ा और हृदयग्राही है, एक सुन्दर दृश्य चित्त का उतनाही रञ्जन करता है, जितना एक तत्व का उद्घाटन; और वाल्मीकि के एक सर्ग ने गौतम के न्याय-सूत्रों की अपेक्षा अधिक पाठकों का मनोरञ्जन किया है। इसके अतिरिक्त कल्पना के आनन्द को इस अंश में विशेषता है कि यह अधिक प्रत्यक्ष होता है और अधिक सुगमता–पूर्व्वक प्राप्त किया जाता है। आँखों का खोलना है कि दृश्य प्रवेश कर जाता है। नाना रंग आपसे आप, देखनेवाले के बहुतही अल्प विचार द्वारा, कल्पना-पटल पर अंकित हो जाते हैं। हम लोग जब किसी वस्तु की ओर देखते हैं तो उसके अंग-संयोग से मोहित हो जाते हैं और तुरन्त उसके सौन्दर्य्य को, बिना इसकी जिज्ञासा किए कि उस सौन्दर्य्य का कारण क्या है, स्वीकार कर लेते हैं।

एक सहृदय मनुष्य ऐसे ऐसे आनन्दों का अनुभव करता है, जो गवार लोग स्वप्न में भी नहीं पा सकते। वह एक चित्र से वार्तालाप

कर सकता है, प्रतिमा से अपना जी बहला सकता है, वर्णनों में एक गुप्त सुख प्राप्त करता है और हरे भरे खेतों और मैदानों को केवल देखनेही में उससे अधिक संतुष्ट होता है, जितना उनका स्वामी उन पर अधिकार रखने में। जितनी वस्तु वह देखता है, उनमें उसे एक प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है और प्रकृति के सबसे बेढंगे और उजाड़ भाग भी उसके आनन्द में सहायता पहुंचाते हैं। वह संसार को एक दूसरेही रूप में देखता है, और उसमें बहुत सी सुन्दर वस्तुओं का पता लगाता है, जो जन-साधारण की दृष्टि से छिपी रहती हैं।

बहुत कम ऐसे लोग निकलेंगे जो, निरुद्यम (काहिल) रह कर भी पापशून्य हों, या जो ऐसे आनन्द के लोलुप हों, जो पाप न हो। उद्यम के पथ से जहां एक पग भी वे भटके, तहां बुराई वा मूर्खता में जा फँसते हैं; इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह अपने दोष-रहित आनन्द की सीमा को, जहां तक संभव हो, बढ़ाता रहे, जिसमें वह समय पड़ने पर निर्भयता-पूर्व्वक उसका आश्रय ले सके और उससे इस प्रकार का सुख प्राप्त करे, जैसा एक बुद्धिमान पुरुष को उचित है। इस प्रकार का आनन्द कल्पनाही का है, जो न तो विचार की ऐसी प्रवृत्तिही की आवश्यकता रखता है, जो हमारे और कार्य्यों में दरकार होती है; और न चित्त को ऐसी काहिली और बेपरवाही में पड़ने देता है, जो इन्द्रियों के आनन्द में लीन होने से उत्पन्न होती हैं। यह शक्तियों को एक प्रकार का बहुतही मधुर परिश्रम देता है, जो बिना किसी कष्ट और कठिनता के, उन को निरुद्यमता वा आलस्य से उठाकर सचेत करता है।

यहां पर हमें यह भी कह देना चाहिए कि कल्पना का आनन्द, विचार वा विवेचना के आनन्द से, जिसमें मस्तिष्क को बड़ा कठिन परिश्रम पड़ता है, अधिक स्वास्थ्यकर है। सुन्दर दृश्य, चाहे वे प्रकृति में हों, चाहे चित्र वा काव्य में, शरीर और मन, दोनों पर बहुत उत्तम प्रभाव डालते हैं, और न कि केवल कल्पनाही को शुद्ध और कान्तिमयी करते हैं; बरन शोक और विषाद का भी नाश करते हैं और मनुष्य की नस नस में सुख और शान्ति का सञ्चार करते

हैं। इसी कारण बेकन (Bacon) ने अपने 'स्वास्थ्य' शीर्षक निबन्ध में अपने पाठकों को सुन्दर काव्य अथवा दृश्य के अवलोकन की सम्मति देना उपयुक्त विचारा। जहां पर उसने जटिल और पेचीले विषयों की ओर मन देने का निषेध किया है, वहीं पर ऐसी पुस्तकों के अध्ययन की भी सम्मति दी है, जो चित्त को सुन्दर और रमणीय वस्तुओं से पूर्ण करती हैं,-जैसे इतिहास, आख्यान और प्राकृतिक वर्णन इत्यादि।

मैंने भूमिका की भाँति कल्पना के उस आनन्द का, जो इस समय हमारे इस निबन्ध का आलोच्य विषय है, लक्षण निर्धारित कर दिया और बहुत विचार करके इस आनन्द को प्राप्त करने की सम्मति अपने पाठकों को दी। मैं अब दूसरे प्रकरण में उन विविध मूलों की परीक्षा करूँगा, जिनसे ये आनन्द उत्पन्न होते हैं।

दूसरा प्रकरण।

प्रथम श्रेणी का आनन्द।

मैं पहिले कल्पना के उस प्रथम श्रेणी के आनन्द पर विचार करूंगा, जो पदार्थों के वास्तविक अवलोकन और निरीक्षण से प्राप्त होता है। मेरी समझ में यह आनन्द किसी ऐसी वस्तु के देखने से उत्पन्न होता है, जो **बड़ी, असाधारण** और **सुन्दर** होती हैं। इसमें सन्देह नहीं और संभव है कि कोई बात ऐसी भयानक अथवा घृणित देख पड़े कि किसी पदार्थ से उत्पन्न भय वा घृणा उस आनन्द से बढ़ जाय, जो उसकी बड़ाई, असाधारणता और सौन्दर्य्य से प्राप्त होता है; किन्तु उस घृणा में भी, जो उत्पन्न होगी, आनन्द का ऐसा मिश्रण रहेगा कि हमें जान पड़ेगा, जैसे इन्हीं तीनों उपर्य्युक्त गुणों में से किसी एक गुण की मात्रा अधिक हो गई है।

बड़ाई—बड़ाई से मेरा तात्पर्य्य किसी एक पदार्थ के पिण्ड से नहीं है, किन्तु समस्त दृश्य को एक अकेला खण्ड मान कर उसकी

बड़ाई से है। जैसे एक खुले हुए बराबर मैदान का दृश्य, विस्तृत ऊसर रेगिस्तान, विपुल पर्वतराशि, ऊंची ऊंची चट्टानें और समुद्र का अपार जलविस्तार इत्यादि। इनको देखकर हम इनके सौन्दर्य्य वा असाधारणत्व से आकर्षित नहीं होते, बरन उस बेढंगे चमत्कार से, जो प्रकृति की इन विशाल रचनाओं में पाया जाता है। हमारी कल्पना ऐसी वस्तुओं से पूर्ण होना तथा ऐसे पदार्थों को ग्रहण करना चाहती है जो उसमें समा न सकें। ऐसे विस्तृत और असीम दृश्यों से हम लोग एक आनन्दमय आश्चर्य्य में डूब जाते हैं और हमारी आत्मा उनका ध्यान करके एक प्रकार की मनोरञ्जक निस्तब्धता का अनुभव करती है। मनुष्य का चित्त स्वभावतः ऐसी वस्तुओं से घृणा करता है, जो उस पर किसी प्रकार की रुकावट डालती हैं। जब कि दृष्टि किसी संकीर्ण स्थान में बँधी रहती और चारो ओर पहाड़ी और ऊंची ऊंची दीवारों से घिरी रहती है, उस समय वह अपने को कारगार में समझती है। इसके प्रतिकूल, एक विस्तीर्ण क्षितिज स्वाधीनता का स्वरूप है, जहां पर उसको बहुत दूर तक विचरने, निसर्ग के आधिक्य से चमत्कृत होने, तथा उन अनेक प्रकार के पदार्थों में, जो उसके सामने पड़ते हैं, लीन होने के लिये पूरा स्थान मिलता है। ऐसे विस्तृत और असीम दृश्य हमारी कल्पना को वैसेही आनन्ददायक हैं, जैसे नित्य और अनन्त विषयक विवेचना, बुद्धि या विचार को। किन्तु यदि इस विशालता के साथ असाधारणत्व और सौन्दर्य्य का भी संयोग हो जाता है,—जैसे ज्वारभाटे के सहित समुद्र में, सुन्दर तारों से विभूषित आकाश में तथा नदी, बन और पहाड़ों में विभक्त एक विस्तीर्ण भूमि में,—तो हमारा आनन्द और भी बढ़ जाता है; क्योंकि तब वह एक से अधिक सिद्धान्तों के अनुसार उत्पन्न होता है।

प्रत्येक वस्तु, जो नवीन वा असाधारण होती है, इस कारण कल्पना में आनन्द उपजाती है कि आत्मा को वह रमणीय आश्चर्य्य से पूर्ण करती है, उसके कौतूहल को सन्तुष्ट करती है, और उसको एक ऐसा भाव प्रदान करती है जो पहिले उसको प्राप्त न था। यथार्थ में हम लोग एकही प्रकार के पदार्थों से इतने परिचित हो जाते हैं और उन्हीं वस्तुओं को बार बार देखते देखते इतने

ऊब जाते हैं कि जो कुछ उनमें नयापन वा असाधारणत्व होता है, वह मानव-जीवन के परिवर्तन करने में और अपनी अद्भुतता से चित्त को आकर्षित करने में बहुत कम योग देने लगता है। अस्तु।

असाधारणता—यही (नवीनता वा असाधारणता) हमारे आनन्द को ताज़ः करती रहती है, यही भयानक वस्तुओं को भी मनोहरता प्रदान करती है और यही प्रकृति के कार्य्यों की अपूर्णता को भी हमारे लिये आनन्द-दायिनी बनाती है। यही हममें भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिये रुचि उत्पन्न करती है, जिससे हमारा चित्त प्रत्येक क्षण किसी नई वस्तु की ओर जाता रहता है और हमारे ध्यान को किसी पदार्थविशेष पर अधिक काल तक स्थिर रहकर अपनी मिट्टी नहीं ख़राब करती। यही उन वस्तुओं की भी, जो बड़ी और सुन्दर होती हैं, शोभावृद्धि करती है और उन्हें हमारे चित्त को दूना आनन्द प्रदान करने में समर्थ करती है। उदाहरणार्थ, जैसे बग़ीचे, खेत और चरागाय, यों तो सब ऋतुओं में देखने में सुखद होते हैं, किन्तु ऐसे मनोरञ्जक कभी नहीं होते, जैसे बसंत ऋतु के आरंभ में, जब कि वे सम्पूर्ण नए और ताज़े रहते हैं और हमारे नेत्र भी उनसे बहुत परिचित और अभ्यस्त नहीं रहते। इसी कारण से कोई वस्तु स्थल को इतना सुहावना नहीं बनाती है, जितना नदी, दरी और झरने; जहां पर कि दृश्य सदैव बदलता रहता और प्रत्येक क्षण दृष्टि को ऐसी वस्तु से रञ्जित करता रहता है, जो नई होती है। हम लोग पहाड़ियों और घाटियों को देखने से बहुत शीघ्र ऊब जाते हैं, जहां पर प्रत्येक वस्तु एक ही स्थान पर एक ही अवस्था में स्थिर रहती है; किन्तु ऐसे पदार्थों के अवलोकन से हमारा चित्त प्रफुल्लित और उत्तेजित होता है, जो सर्वदा चलायमान रहते हैं और देखनेवाले की आंख के सामने से होकर गमन करते रहते हैं।

सुन्दरता—किन्तु कोई वस्तु चित्त में इतनी नहीं घँसती, जितनी सुन्दरता; जो कि तुरंत एक गुप्त सुख और आनन्द को कल्पना में फैला देती है और जो वस्तु विशाल और असाधारण होती हैं, उनको सम्पूर्णता प्रदान करती है। इसको देखतेही चित्त आन्तरिक प्रसन्नता से पूर्ण हो जाता है और उसकी समस्त क्रियाएँ आनन्दमय

हो जाती हैं। सच पूछिए तो किसी एक पदार्थ में दूसरे की अपेक्षा विशेष कोई वास्तविक सुन्दरता वा कुरूपता नहीं होती; क्योंकि संभव है कि हम लोग ऐसे स्वभाव के बनाए जाते कि जो वस्तु हमें अब घृणित जान पड़ती है, वही तब रुचिकर प्रतीत होती! किन्तु अनुभव द्वारा हम देखते हैं कि पदार्थों में कुछ ऐसे परिवर्त्तन होते हैं, जिनको चित्त, बिना किसी विचार के, देखने के साथही सुन्दर वा कुरूप कह देता है। ऐसेही हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रकार का जीव सुन्दरता का अपना पृथक पृथक लक्षण रखता है और उनमें से प्रत्येक अपनेही वर्ग की सुन्दरता से सबसे अधिक आकर्षित होता है। यह बात एक ही रंग और आकारवाले पक्षियों के बीच प्रत्यक्ष देखी जाती है जहां पर नर अपने ही वर्ग की मादा के साथ आनन्द पाता है, और दूसरे वर्ग के पक्षियों में कोई बात सुन्दरता की नहीं देखता।

एक दूसरे प्रकार की सुन्दरता है, जो हम प्रकृति तथा शिल्प के निर्माणों में देखते हैं। यह, कल्पना पर उस शक्ति के साथ तो प्रभाव नहीं डालती, जैसा अपने वर्ग की सुन्दरता, किन्तु तिसपर भी यह हममें आन्तरिक प्रसन्नता तथा उन वस्तुओं और स्थानों से, जिनमें हम उसको देखते हैं, एक प्रकार का प्रेम उपजाती है। यह सुन्दरता रंगो के विभेद और चमत्कार में, खंडों की योजना और उनके प्रमाण में, पदार्थों के संविधान और गठन में अथवा इन सबके उपयुक्त मिश्रण में होती है। इन कई प्रकार के सौन्दर्य्यों में रंग ही नेत्र को सबसे अधिक आनन्ददायक होता है। प्रकृति में हम कोई भी ऐसा चमत्कृत और मनोहर दृश्य नहीं देखते, जैसा कि सूर्य्य के उदय और अस्त के समय आकाश-मण्डल में; जब कि प्रकाश के रंग बिरंग के छोटे भिन्न भिन्न आकार और स्थिति के बादलों पर दिखलाई पड़ते हैं। इसीसे कवि लोग, जो कि सर्वदा कल्पना ही को संबोधन करते हैं, बहुधा और वस्तुओं की अपेक्षा रंग ही से अपनी उपमाएं अधिक लेते हैं।

जिस प्रकार कल्पना प्रत्येक ऐसी वस्तु को देख, जो बड़ी, असाधारण और सुन्दर होती है, प्रफुल्लित होती है और जितना ही

इन सब गुणों को एकही वस्तु में एकत्र पाती है, उतना ही और अधिक आनन्दित होती है, उसी प्रकार यदि बीच में कोई दूसरी इन्द्रिय (आँख के सिवाय) भी सहयता दे देती है तो उसको एक नया सुख प्राप्त होने लगता है। जैसे कोई लगातार नाद,—जैसे पत्तियों का कलरव, पानी गिरने का शब्द इत्यादि,—प्रत्येक क्षण देखनेवाले के चित्त को उत्तेजित करता है और उस स्थल की सुन्दरता की ओर, जो उसके सामने है, उसको और भी अधिक आकर्षित कर देता है; वैसे, यदि उस स्थान पर भीनी भीनी सुगंध भी आने लगती है तो वह कल्पना के आनन्द को और भी अधिक बढ़ा देती और सम्मुख-स्थित दृश्य की हरियाली और उसके रंगों को और भी रोचक बना देती है; क्योंकि दोनों इन्द्रियों (चक्षु और घ्राण) के अनुभव एक दूसरे का अनुमोदन करते और एक साथ उत्पन्न होने से चित्त में पृथक् पृथक् प्रविष्ट होने की अपेक्षा अधिक आनन्द देते हैं; उसी प्रकार जैसे किसी चित्र के बहुत से रंग, जब उनका व्यवहार उत्तमता-पूर्व्वक किया जाता है, एक दूसरे के विकाश करते और अपनी स्थिति के कारण और भी शोभा प्राप्त करते हैं।

तीसरा प्रकरण।

यद्यपि हमने पीछले प्रकरण में यह विचार स्थिर किया कि किस प्रकार प्रत्येक वस्तु जो बड़ी, नवीन, वा सुन्दर होती है कल्पना को आनन्दित करती है तथापि हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमलोगों के लिये इस आनन्द का कोई वास्तविक कारण बतलाना असम्भव है क्योंकि न तो हम भावना ही के स्वभाव के विषय में कुछ जानते हैं और न मनुष्य की आत्मा ही के तत्त्व के विषय में, जो कि हमें इस बात के अनुसन्धान में सहायता पहुंचाता कि एक में कौन सी बात दूसरी की रुचि के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होती है। इसलिये इस ज्ञान के बिना जो कुछ हम कर सकते हैं, वह

इतना ही है कि आत्मा की उन क्रियाओं पर विचार करें; जो सबसे अधिक प्रिय होती हैं और जो बातें चित्त को प्रसन्न और अप्रसन्न करनेवाली होती हैं, उनको एक दूसरे से पृथक करें, बिना उन मूल कारणों का अन्वेषण किए हुए, जिनसे यह प्रसन्नता उत्पन्न होती है।

अन्तिम कारण (आदि नहीं) हम लोगों की विचार-दृष्टि को अधिक प्रत्यक्ष होते हैं, क्योंकि एक ही कार्य्य के अन्तर्गत वे कई एक होते हैं। ये यद्यपि उतने संतोषदायक नहीं होते, पर दूसरे (मूल) से अधिक काम के होते हैं, क्योंकि ये हमें सृष्टिकर्त्ता की बुद्धि और दया की प्रशंसा करने का अधिक अवसर देते हैं।

किसी बड़ी वस्तु के देखने से जो हमें आनन्द होता है, उसका एक अन्तिम कारण यह भी हो सकता है कि जगदीश्वर ने मनुष्य की आत्मा को ऐसा बनाया है कि उस सच्चिदानन्द के अतिरिक्त और कोई वस्तु उसके चरम और वास्तविक आनन्द का कारण नहीं हो सकती। हमारे आनन्द का अधिकांश उसी सर्व-व्यापक के अस्तित्व का ध्यान करने में है, जिसमें वह हमारी आत्मा में ऐसे ध्यान के लिए रुचि उत्पन्न करे; इसीलिए उसने उसको स्वभावतः ऐसी वस्तुओं के चिन्तन में आनन्द दिया है, जो विशाल और असीम होती हैं। हमारी प्रशंसा, जो कि हमारे चित्त की एक बहुत आनन्द-दायिनी क्रिया है, तुरन्त ऐसी वस्तु के ध्यान से जागृत हो जाती है, जो कल्पना में बहुत सा स्थान छेंकती है; अतः जब हम उस परमेश्वर के महत्व का ध्यान करते हैं, जिसके लिए न तो काल और स्थान का कोई बन्धन है और न जिसको जीव-धारियों की प्रौढ़ से प्रौढ़ शक्तियां अनुमान कर सकती हैं, तो यही प्रशंसा बढ़ते बढ़ते प्रगाढ़ आश्चर्य्य और भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।

परमेश्वर ने उन वस्तुओं के ध्यान में, जो नवीन वा असाधारण होती हैं, इस कारण आनन्द रख दिया है, जिसमें वह हमें ज्ञान-प्राप्ति के लिए उत्तेजित करे और अपनी सृष्टि की अद्भुत अद्भुत वस्तुओं को ढूढ़ने में हमें लगावे; क्योंकि हर एक नई बात में एक ऐसा आनन्द भरा रहता है, जो उस कष्ट का, जो उसके प्राप्त करने

के हेतु उठाना पड़ता है, पुरस्कार स्वरूप हो जाता है और इस प्रकार हमारे नई नई वस्तुओं के अन्वेषण का कारण होता है।

उसने उन वस्तुओं को, जो हमारे वर्ग में सुन्दर होती हैं, इस कारण आनन्द-दायिनी बनाया है, जिसमें समस्त जीवधारी अपने अपने वर्ग की वृद्धि करने में तत्पर हों और संसार को निवासियों से पूर्ण करें; क्योंकि यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि प्राकृतिक नियम के विरुद्ध कोई राक्षस उत्पन्न हो जाता है (जो दुष्ट संयोग से होता है) तो वह अपने अनुरूप जीव उत्पन्न करने और एक नए प्रकार की सृष्टि चलाने में सर्वथा असमर्थ होता है। सो यदि समस्त जीव अपने ही वर्ग के सौन्दर्य्य से आकर्षित न हों तो उत्पत्ति का अन्त हो जाय और पृथ्वी मानवशून्य हो जाय।

अन्त में उसने, और और वस्तुओं में जो सुन्दरता होती है, उसको आनन्द-कारक बनाया है; अथवा यों कहिए कि इतने अधिक पदार्थों को हमारी दृष्टि में सुन्दर करके दिखलाया है, जिसमें वह अपनी सृष्टि को विशेष सुहावनी और रमणीय बनावे। उसने हमारे चारों ओर की प्रायः समस्त वस्तुओं को कल्पना में रुचिकर भावना उत्पन्न करने की शक्ति दी है, इसलिए हमलोगों के लिए यह असम्भव है कि उसके कार्य्यों को बेपरवाही अथवा अश्रद्धा से देखें और बिना आन्तरिक सुख और प्रमोद के अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुओं का अवलोकन करें। यदि हम पदार्थों को उनके यथार्थ रूप और गति में देखें तो नेत्रों के लिए यह एक अत्यन्त तुच्छ दृश्य होगा; और ये पदार्थ हमारे चित्त में जो ऐसे ऐसे भाव उत्पन्न करते हैं, जो उनके अंग में स्थित किसी वस्तु से सर्वथा भिन्न होते हैं (जैसे प्रकाश और रंग) इसका हम और क्या कारण दे सकते हैं। सिवाय इसके कि सृष्टि को आभूषणों से विभूषित करने और कल्पना के निकट उसको अधिक रोचक बनाने के लिए ही ऐसा होता है। हम अपने चारों ओर सुन्दर दृश्य और छाया देखते हैं, हम पृथ्वी और आकाश में काल्पनिक चमत्कार देखते हैं, और सम्पूर्ण सृष्टि पर इस अलौकिक सौन्दर्य्य, धारा का प्रवाह देखते हैं; किन्तु प्रकृति के कैसे भद्दे और उजाड़ दृश्य से हमारे नेत्रों का सत्कार किया जायगा, यदि उसकी

समस्त रंग लोप हो जायँ और आलोक और छाया के नाना भेद जाते रहें ! जैसे हमारी आत्मा इस समय आनन्दमय स्वप्न में डूबी और चकित सी है और हम चारो ओर इस प्रकार घूमते हैं, जैसे किसी तिलस्मी कहानी का नायक, जो सुन्दर सुन्दर हर्म्य, बन,नदी और हरे भरे मैदान देखता है और साथही पक्षियों का कलरव और झरनों का मधुर कलकल सुनता है, कि इतने ही में सहसा जादू के उस पर से हट जाने से वह स्वप्नवत् दृश्य खंडित हो जाता है और वह अपने को एक ऊसर भूमि अथवा निर्जन रेगिस्तान में खड़ा पाता है। संभव है कि आत्मा शरीर से वियोग होने के उपरान्त प्रथम इसी प्रकार की किसी अवस्था में रहती हो और द्रव्यों को ऐसे ही रूप में देखती हो, किन्तु रंग का ध्यान कल्पना में ऐसा सुहावना और प्रिय है कि यह भी संभव है कि आत्मा उससे रहित न की जाती हो, वरन जैसे इस समय सूक्ष्मपदार्थ (Ether) के चक्षुरिन्द्रिय पर नाना आघातों से यह ध्यान उत्पन्न होता है, वैसे ही तब और किसी सामयिक कारणों द्वारा यह उत्तेजित किया जाता हो !

मैंने यहां पर यह मान लिया है कि पाठक उस बड़े आविष्कार से जान कार हैं, जो इस समय विज्ञान के समस्त अन्वेषियों द्वारा स्वीकृत किया गया है, अर्थात् प्रकाश और रंग जैसे कल्पना को बोध होते हैं, केवल चित्त में एक प्रकार की भावना मात्र हैं, वे पदार्थों में स्थित कोई गुण नहीं हैं। यह बात बहुत से आधुनिक तत्वज्ञों द्वारा सिद्ध की गई है और वास्तव में इस विद्या के अत्यन्त चमत्कारक रहस्यो में से है।

चौथा प्रकरण।

यदि हम प्रकृति और शिल्प के निर्माणों के मनुष्य की कल्पना को सुख देने के गुण पर विचार करें तो हम दूसरे को पहिले की अपेक्षा अधिक हीन पावेंगे, क्योंकि यद्यपि वे कभी कभी वैसेही सुन्दर और अद्भुत देख पड़ते हैं, किन्तु उनमें वह विस्तार और आधिक्य नहीं होता, जो देखनेवाले के चित्त को इतना अधिक

रुचिकर होता है। शिल्प की रचना वैसीही बारीक और कोमल होसकती है, जैसी प्रकृति की; किन्तु बनावट में वह वैसी विशाल और प्रभावशालिनी नहीं हो सकती। प्रकृति की बेपरवाही के और बेढंगे कामों में शिल्प की बारीकी और काट छांट की अपेक्षा कोई बात अधिक महत्त्व और निपुणता की पाई जाती है। किसी एक बड़े हर्म्य और उद्यान की शोभा का विस्तार एक बहुतही संकीर्ण स्थान के बीच होता है; ध्यान उमपर से शीघ्रता से दौड़ जाता है और सन्तुष्ट होने के लिए किसी और वस्तु की आवश्यकता रखता है; किन्तु प्रकृति के विस्तीर्ण क्षेत्रों में दृष्टि बिना किसी बन्धन के नीचे ऊपर भ्रमण करती है और बिना किसी नियमित संख्या और सीमा के न जाने कितने प्रकार के स्वरूपों का आनन्द लेती है। इसी कारण से हम देखते हैं कि कविजन सदैव ग्रामीण-जीवन को पसन्द करते हैं, जहां पर प्रकृति अपनी पूर्णता को प्राप्त रहती है और ऐसे ऐसे दृश्य प्रदान करती है, जो कल्पना को सबसे अधिक आह्लादकारक होते हैं।

परन्तु, यद्यपि बहुत से नैसर्गिक बेढंगे दृश्य बनावटी दृश्यों से अधिक मनोऽञ्जक होते हैं, तथापि प्रकृति के कार्य्यों को उसी हिसाब से और भी अधिक आनन्ददायक पाते हैं, जितना ही वे मनुष्य की कारीगरी से समानता रखते हैं; क्योंकि तब हमारी प्रसन्नता दो सिद्वान्तों से उत्पन्न होती है,—अर्थात् एक तो पदार्थों ही की रुचिरता से और दूसरे उनके अन्य पदार्थों के सादृश्य से। हम पदार्थों की सुन्दरता को परस्पर मिलान करने से उतनेही प्रसन्न होते हैं, जितना उनको अवलोकन करने से; और उनमें से जिसको चाहते हैं, उसको अपने चित्त में मूल अथवा छाया मानकर धारण करते हैं। इसीसे हम किसी ऐसे स्थान को देख, जो भले प्रकार अलङ्कृत होताहै और खेतों, हरे भरे मैदानों, बन और नदियों में विभक्त होता है, प्रसन्न होते हैं। स्फटिक (संगमर्मर) की खान की दरारों में पेड़, नगर और बादलों के दृश्य, जो कभी कभी निर्मित मिलते हैं, चट्टानों और विवरों में उभड़े हुए चित्र विचित्र स्वरूप, तथा वे समस्त वस्तुएं, जिनमें ऐसे भेद और क्रम होते हैं, जो मनुष्य

की कारीगरी से मिलते जुलते हैं और जिनको हम दैवी रचना कहते हैं, हमारे चित्त को आनन्द से पूर्ण करते हैं।

यदि प्रकृति की रचना की शोभा, जितनी ही वह शिल्प से समानता रखती है, उतनीही अधिक बढ़ जाती है, तो यह निश्चय है कि शिल्प के निर्माण प्रकृति के निर्माणों से समानता रखने से और भी अधिक प्रतिष्ठा लाभ करते हैं, क्योंकि यहां पर न कि केवल सादृश्य ही आनन्दप्रद है, वरन मूल विशेष पूर्ण रहता है। सबसे उत्तम दृश्य जो मैंने आज तक देखा, वह एक परदे पर, जिसमें एक बड़ी नदी और एक उपवन का दृश्य एक साथ खींचा गया था। उसमें नदी के जल की ऊंची नीची तरंगे उपयुक्त और चमकीले रंगों में दिखाई गई थीं; एक ओर से एक नाव धीरे धीरे पानी पर चल रही थी; किनारे पर उपवन के पेड़ों की हरी हरी पत्तियां हवा लगने से हिल रही थीं, जिनकी छाया नदी के जल में जाकर पड़ती थी; एक ओर हरिनों का एक झुंड भी कूदता हुआ दिखाया गया था। मैं स्वीकार करता हूं कि ऐसे दृश्य की नवीनता कल्पना की प्रसन्नता का एक कारण हो सकती है, किन्तु यथार्थ में इसका मुख्य कारण उसकी प्रकृति से समानता है; क्योंकि यहां पर, और चित्रों की भाँति, हम केवल रंग और आकारही नहीं दरसाया हुआ पाते हैं, वरन उन पदार्थों की गति भी, जो चित्रित किए गए हैं।

हम पहिले कह चुके हैं कि प्रकृति में शिल्प की विचित्रता की अपेक्षा कोई बात अधिक प्रभावशालिनी और भव्य होती है। अतएव जब हम किसी अंश में इसका अनुकरण देखते हैं तो वह हमको उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और ऊंचे प्रकार का आनन्द देता है, जो हम शिल्प के बारीक और सुडौल स्वरूपों से प्राप्त करते हैं। यही कारण है, जिससे इंग्लैण्ड के बगीचे ऐसे मनोरञ्जक नहीं होते, जैसे फ्रांस और इटली के; जहां पर हम भूमि का बहुत सा भाग उद्यान और जंगल के रमणीय मिश्रण से आच्छादित पाते हैं, जो कि सर्वत्र एक कृत्रिम बेढंगेपन का दृश्य सामने उपस्थित करता है और उस सफ़ाई और सजावट की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है, जो इंग्लैण्ड में देखी जाती है। निसन्देह देश के ऐसे भागों में, जहां

बस्ती बहुत घनी और खेती की उपज बहुत अधिक है, इसका परिणाम सर्वसाधारण के लिये बुरा और व्यवसायी लोगों के कम लाभ का होगा कि इतनी भूमि खेती और चरागाह से निकालकर अलग करें; किन्तु ऐसा क्यों न किया जाय कि जगह जगह पर पेड़ लगाकर समस्त भूमि की भूमि एक प्रकार का उद्यान बना डाली जाय, जिसमें उसके स्वामी को उतनाही लाभ पहुंचेगा, जितना आनन्द। एक दलदल (ताल) जिसमें बेत उगे हों, और एक पहाड़, जो देवदार के वृक्षों से आच्छादित हो, ख़ाली ठूंठे रहने की अपेक्षा, न कि केवल अधिक सुन्दरही हैं, वरन आयवर्द्धक। अनाज के खेत बहुत सुहावने लगते हैं, पर यदि कहीं उनके बीच की मेड़ों पर थोड़ा और ध्यान दिया जाय और चरागाहों की स्वाभाविक बूटेकारी मनुष्य की कारीगरी द्वारा कुछ और प्रवर्द्धित कर दी जाय और उनके चारो ओर ऐसे फूल पौधों की टट्टियां कई पंक्तियों में लगा दी जायँ, जो उस भूमि में उत्पन्न हो सकते है, तो मनुष्य अपनीही सम्पत्ति को एक मनोहर और रमणीय स्थल बना सकता है।

भ्रमणकार, जिन्होंने चीन देश के विषय में लिखा है, कहते हैं कि उस देश के निवासी यूरोपियनों की बगीचा लगाने की प्रणाली पर हंसते हैं, जिसमें कि सीधी सीधी लकीरों का प्रयोग होता है; क्योंकि वे कहते हैं कि कोई भी मनुष्य पेड़ों को सीधी बराबर पंक्तियों में रख सकता है; वे अपना गुण उपरोक्त प्रकार के ही कामों में दिखाते हैं; और इसलिए वे उस शैली को, जिसपर वे चलते हैं, सदा छिपाए रहते हैं। ज्ञान पड़ता है कि वे अपनी भाषा में कोई ऐसा शब्द रखते हैं, जिससे वे बगीचे की उस सुन्दरता को प्रगट करते हैं, जो देखते ही तत्काल कल्पना को लुभा लेती है, यद्यपि वे यह नहीं जानते कि वास्तव में वह कौन सी वस्तु है, जो इतना मनोहर प्रभाव डालती है। अंग्रेजी माली, इसके विपरीत, प्रकृति का अनुकरण करने के स्थान पर, जहां तक संभव होता है, उससे दूर ही रहते हैं। वहांके वृक्ष गावदुम, वृत्ताकार, और त्रिभुजाकार बनाए जाते हैं। प्रत्येक पौधे और झाड़ी पर हम कैंची का चिन्ह लगा हुआ पाते हैं। मैं नहीं जानता कि मेरी यह सम्मति विलक्षण हो, पर मैं तो एक

वृक्ष को अपनी डालियों और पत्तियों के पूर्ण विकाश और विस्तार में देखना, उसकी अपेक्षा, जब कि वह काट छांट कर रेखागणित की एक शकल बना दिया जाता है, अधिक पसन्द करता हूं और समझता हूं कि फूलों का एक साधारण उपवन मालियों के गोलम्बरों और कियारियों की सजावट से कहीं बढ़ कर सुन्दर दिखलाई पड़ता है।

पांचवां प्रकरण।

मैंने पहिले यह दिखलाया कि प्रकृति की रचना का कल्पना पर कैसा प्रभाव पड़ता है; तदुपरान्त साधारणतः प्रकृति और शिल्प दोनों के निर्माणों पर भी विचार किया कि किस प्रकार ऐसे दृश्यों को उपस्थित करने में, जो देखनेवाले के चित्त को सबसे अधिक प्रसन्न करते हैं, वे एक दूसरे की सहायता करते हैं। अब मैं यहां पर उस कला-विशेष पर कुछ बिचार करूंगा, जो तत्काल ही कल्पना में उस प्रथम श्रेणी के आनन्द को उत्पन्न कर देती है, जो हमारे इस लेख का विषय है। यह कला भवननिर्माण करने की है, जिसकी आलोचना मैं पूर्वकथित विचारों ही की दृष्टि से करूंगा; बिना उन नियमों और सूत्रों का उल्लेख किए हुए, जिनको इस कला के बड़े बड़े आचार्य्यों ने स्वरचित इस विषय के अनेक ग्रंथों में बड़ी लम्बी चौड़ी व्याख्या के साथ निर्धारित किया है।

किसी इमारत की बड़ाई या तो उसके विस्तार किम्वा शरीर के संबंध में होती है; अथवा उसकी रचना-प्रणाली के संबंध में। पहिली बात में तो हम प्राचीनों को-विशेषतः पूर्वीय जातियों को-आधुनिक लोगों की अपेक्षा कहीं बढ़ा चढ़ा पाते हैं।

बाबेल की लाट की बात जाने दीजिए, जिसके विषय में एक प्राचीन ग्रंथकार लिखता है कि उसके समय में उसकी नींव दिखाई देती थी, जो कि चौड़े चौड़े पहाड़ों की भांति प्रतीत होती थी। आप ऐसे विशाल निर्माणों की ओर देखिए, जैसे बेबिलन की दीवार। वहां की छत पर के उद्यान और ज्यूपिटर बेलस का वृहन्मंदिर, जो एक

मील ऊंचा था, अर्थात प्रत्येक मरातिम एक एक फरलांग की ऊंचाई का था, जिन सबके ऊपर बैबिलन का मानमन्दिर था। मुझे यहां पर उस भारी चट्टान का भी उल्लेख कर देना चाहिए, जो सम्पूर्ण काट कर सेमिरमिस रानी की प्रतिमा के रूप में बना डाली गई थी; और उसके आस पास की चट्टानों का भी, जो आधीन राजाओं के रूप में खड़ी थीं; तथा उस आश्चर्य्यमय कृत्रिम ताल का भी, जो समस्त इफ़रात के जल को तब तक धारण किए रहा, जब तक कि उस नदी के जल के बहाने के निमित्त नई नहरें नहीं बनाई गईं। मैं जानता हूं कि बहुत से लोग ऐसे हैं, जो शिल्प के ऐसे अद्भुत कार्यों को कहानी समझते हैं; किन्तु मुझे तो इस प्रकार के सन्देह का कोई कारण नहीं देख पड़ता, सिवाय इसके कि हम लोगों के बीच इस समय ऐसे कोई उदाहरण नहीं हैं। उस काल में पृथ्वी के उन भागों में इमारत बनाने में बहुत सी सुगमताएं थीं, जो तब से आज तक कभी कहीं प्राप्त नहीं हुईं। पृथ्वी फलदार वृक्षों से भरीपूरी थी, लोग बहुधा भेड़ इत्यादि पाल कर निर्वाह करते थे, जिसमें कि खेती की अपेक्षा कम मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। मनुष्यों के एक बड़े समूह को काम में लगाए रखने के लिए तब बहुत से व्यवसाय और व्यापार नहीं थे; विचारशील पुरुषों को लीन होने के लिए तब कला और विज्ञान के नाना विभाग नहीं थे; और इन सब से बढ़कर तो बात यह थी कि राजा सर्वथा स्वाधीन था; इसलिए जब वह लड़ाई पर जाता था तो वह अपनी सारी प्रजा को अपने साथ ले लेता था। सेमिरमिस तीस लाख आदमियों को साथ ले रणक्षेत्र में गई, पर तिस पर भी अपने शत्रुओं की संख्या से उसने हार खाई। अतएव कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कि जब शान्ति स्थापित हुई और उसने अपना ध्यान इमारतों की ओर झुकाया तो ऐसे ऐसे अद्भुत और विशाल भवन, जिनमें असंख्य मज़दूर लगते थे, बना कर खड़े कर दिए गए। इसके अतिरिक्त वहां का जलवायु ऐसा था कि घनघोर जाड़ा और कुहिरा; जिसके कारण पाश्चात्य मज़दूरों को वर्ष में छः महीने बैठे रहना पड़ता है, कोई विघ्न नहीं करते थे। मैं जलवायु की सुगमताओं में उस बात का भी उल्लेख किया चाहता

है, जो पृथ्वी के विषय में इतिहासकारों ने लिखा है कि उसमें से एक प्रकार का स्वाभाविक गारा पसीज कर निकलता था, जो कि वही है, जिसका बाबेल के निर्माण में व्यवहार होना बाइबिल में वर्णित है,–"वे गारे के स्थान पर लसीली मिट्टी काम में लाते थे"।

मिश्र देश में अब तक हम इन प्राचीनों के स्तूप पाते हैं, जो उन वर्णनों के सर्वथा अनुकूल हैं, जो उनके विषय में किए गए हैं। कोई भी यात्री, जो वहां गया होगा, उसने उस बड़ी भूलभुलैयां के अवशेषों को देखा होगा, जिसका विस्तार एक पूरे प्रान्त भर का था और जिसके विविध भागों के अन्तर्गत कोई १०० मन्दिर थे।

चीन की दीवार, उन पूर्वीय गौरव और महत्त्व के चिन्हों में से है, जो भूगोल के नक़शे में भी प्रत्यक्ष रहते हैं; यद्यपि उसका वर्णन एक गप्प समझा जाता, यदि वह दीवार अब तक न खड़ी होती।

उन बड़ी बड़ी इमारतों के लिए, जिन्होंने संसार के बहुतेरे देशों को मण्डित किया है, हम मनुष्य की भक्ति के अनुग्रहीत हैं। इसी भक्ति ने मनुष्यों को मन्दिर इत्यादि बनाने में संलग्न किया, न कि केवल इस लिए कि बड़े बड़े विशाल भवन बनाकर वे देवता को उसमें निवास करने के लिए आह्वान करें, बरन इसलिए भी कि ऐसे ऐसे विशाल निर्माण चित्त को उन्नत और बड़े विचारों के समावेश होने के लिए प्रशस्त करें और उसको उस देवता से साक्षात्कार के योग्य बनावें। क्योंकि प्रत्येक वस्तु, जो वृहत होती है, देखनेवाले के चित्त पर भय और भक्ति का सञ्चार कर देती है और आत्मा की स्वाभाविक बड़ाई का ध्यान दिलाती है।

अब मैं आगे इमारतों की रचना-प्रणाली की बड़ाई के विषय में विचार करूंगा, जो कि कल्पना पर इतना प्रभाव डालती है कि एक छोटी सी इमारत, जिसमें यह बड़ाई प्रगट होती है, अपने से बीस गुनी बड़ी इमारत की अपेक्षा, जिसकी प्रणाली तुच्छ और साधारण होती है, अधिक सुन्दर भावों से चित्त को पूर्ण करती है। जैसे कोई मनुष्य उस प्रतापसूचक भाव को देख, जो कि लेसिपस की बनाई हुई सिकन्दर की मूर्त्ति में झलकता था–यद्यपि वह मनुष्य की डील से ऊंची न थी–जितना चकित होता, कदाचित उतना

एथस (Athos) पहाड़ को देख कर नहीं, यदि वह समस्त काट कर, जैसा कि फ़िदियस ने प्रस्ताव किया था, उस समर-बिजयी के स्वरूप में बना डाला जाता, जिसके एक हाथ में नदी और दूसरे में एक नगर होता।

कोई मनुष्य अपने चित्त की अवस्था पर तो बिचार करे, जब वह रोम के पंथियान (Pantheon at Rome) के पहिले फाटक पर पहुंचता है तो किस प्रकार की विशाल और चमत्कारिणी वस्तुओं से उसकी कल्पना पूर्ण हो जाती है; और साथ ही यह भी देखे कि उसकी अपेक्षा कितना कम प्रभाव एक गाथिक (Gothic cathedral) गिरजे के भीतरी दृश्य का चित्त पर होता है, चाहे वह पहिले से पाँचगुना बड़ा हो। इसका कारण एक की रचना-प्रणाली की बड़ाई और दूसरे की उसकी तुच्छता ही है,—और कुछ नहीं।

इस बिषय पर मैंने एक फ़रांसीसी ग्रंथकार की आलोचना देखी है, जिससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं अपने पाठकों के लिए उस को ग्रंथकार ही के शब्दों में यहां पर उद्धृत करता हूं। वह कहता है,—"मैं एक बात देखता हूं, जो मुझे बड़ी अद्भुत प्रतीत होती है। वह यह है कि सतह (पृष्ठ) के समान विस्तार में एक प्रणाली तो विशाल और मनोहारिणी देख पड़ती है और दूसरी क्षुद्र और हीन। इसका कारण सूक्ष्म और असाधारण है। मेरी जान तो इमारतों में यह प्रणाली की मनोहरता लाने के लिए हमें इस प्रकार चलना चाहिए कि पिंड के प्रधान अंग बहुत कम भागों में विभक्त हों और वे बड़े हों; और उनकी रचना स्पष्ट और गंभीर हो, तथा नेत्रों को कोई बात तुच्छ और लघु न दिखाई दे"। इसी प्रकार की कारीगरी कल्पना पर सबसे अधिक शक्ति के साथ प्रभाव डालती है; और यही प्रणाली सुन्दर और विशद देख पड़ती है; इसके प्रतिकूल जहां छोटी छोटी महीन बेल बूटियों की अधिकता रहती है, जो कि दृष्टि के कोणों को इतनी अधिक परस्पर गुछी हुई किरणों में छितरा देती हैं कि समस्त लीप पोत मालूम होता है, वहां कल्पना पर एक बहुत हीन और क्षुद्र प्रभाव पड़ता है।

इमारत के समस्त स्वरूपों में कोई ऐसे प्रभावशाली नहीं होते,

जैसे नतोदर (concave) और उन्नतोदर (convex); और हम प्राचीन और अर्वाचीन और यूरोप की तथा चीन इत्यादि पूर्वीय देशों की उन समस्त इमारतों का अधिक भाग, जो ठाट बाट के हेतु निर्माण की गई हैं, गोल खम्भों और मिहराबदार छतों से बना हुआ पाते हैं। इसका कारण मैं तो यह समझता हूं कि इन आकारों में (गोले तथा मिहराबदार) हम और दूसरे आकारों की अपेक्षा अंग का अधिक भाग देख पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि और भी ऐसे आकार हैं, जिनमें आंख ⅔ भाग तक सतह (पृष्ठ) का देख सकती है; किन्तु ऐसे आकारों में दृष्टि को बहुत से कोनों पर विभक्त होना पड़ता है, इससे एक ध्यान नहीं बँधने पाता, वरन एक ही प्रकार के कई भाव उत्पन्न होते हैं। किसी गुम्बज (शिवालय इत्यादि के) को बाहर से देखिए तो उसका आधा भाग आपकी दृष्टि के अन्तर्गत आ जायगा; फिर उसी गुम्बज़ को भीतर से देखिए तो एक ही बार में उस का सारा दृश्य आपके सामने उपस्थित हो जायगा; उसका सारा भीतरी झुकाव (नतांश) तुरन्त आंख पर आकर पड़ेगा; आप की दृष्टि केन्द्र हो जायगी, जो कि परिधि की समस्त रेखाओं को खींचकर एकत्र कर लेगी। एक सम चतुर्भुज खम्भे में आंख बहुधा एक बार में सतह का चौथाई भाग ही देख पाती है; और एक चौखूंटी पटी हुई छतवाली कोठरी में दृष्टि को, प्रथम इसके कि वह समस्त भीतरी सतह से जानकार हो जाय, सब बाहुओं पर ऊंचे नीचे भटकना पड़ता है। इसी कारण से आकाश का दृश्य, जो एक मिहराब के भीतर से होकर आता है, उसकी अपेक्षा चित्त को कहीं अधिक आकर्षित करता है, जो चतुर्भुज वा और दूसरे आकारों के बीच से देखा जाता है। इन्द्रधनुष का आकार, उसके गौरव का उतनाही कारण होता है जितना, रंग उसके सौन्दर्य्य का, जैसा कि **सिराक** के पुत्र ने कहा है,—"इन्द्रधनुष की ओर देखो और उसकी प्रशंसा करो, जिसने उसे बनाया है; यह अपने चमत्कार में बहुत ही सुन्दर है, यह आकाश को एक सुन्दर वृत्त से नापता है और उस सर्वशक्तिमान के हाथों ने उसे झुकाया है।"

मैं इमारतों की उस बड़ाई के विषय में, जो चित पर प्रभाव डालती हैं, कह चुका। इसके अनन्तर मैं इस कला में जो बात नई और सुन्दर होती है और उसके देखने से जो आनन्द मिलता है, उसके विषय में भी कुछ कहता; किन्तु मैं देखता हूं कि प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः इमारत के इन दोनों गुणों के विषय में उससे अधिक मर्मज्ञ होता है, जितना कि उस बड़ाई के विषय में; जिसका मैंने वर्णन किया; इस कारण मैं पाठकों को और कष्ट नहीं दिया चाहता। मेरे लिए अब इतना ही कहना बस है कि इन समस्त कलाओं (भवननिर्माण) में और कोई दूसरी बात नहीं है, जो कल्पना को आनन्दित करती है; यह वही,—बड़ाई, असाधारणता और सौन्दर्य है।

छठवां प्रकरण ।

मैंने कल्पना के आनन्द का पहिले ही दो विभाग किया; एक तो वह, जो ऐसे पदार्थों से उत्पन्न होता है, जो यथार्थ में हमारे नेत्रों के सन्मुख हैं; और दूसरा वह, जो ऐसे पदार्थों से उद्भूत होता है, जिनको हमारी आंखों ने एकबार देखा और जो हमारे चित्त में फिर से या तो सर्वथा उसीकी क्रिया से अथवा किसी और बाहरी वस्तु, जैसे प्रतिमा और वर्णन, द्वारा लाए जाते हैं। पहिले विभाग पर तो मेरा विचार हो चुका; अब मैं दूसरे पर हाथ लगाता हूं, जिसको मैंने पहिचान के लिए कल्पना की द्वितीय श्रेणी का आनन्द कहा है। जब मैं कहता हूं कि वर्णन और प्रतिमा इत्यादि से जो भाव हमें प्राप्त होते हैं, वे वेही हैं, जो एक बार कभी हमारी दृष्टि के सन्मुख आ चुके हैं, तो इससे यह न समझना चाहिए कि हमने उसी स्थान, उसी कर्म्म और उसी व्यक्ति को, जो वर्णित वा निर्मित है, देखा है। इतना ही बहुत है कि हम ने ऐसे स्थान, ऐसे व्यक्ति और ऐसे कर्म्मों को देखा है, जो उनसे मिलते जुलते वा समानता रखते हैं, जो प्रदर्शित हैं। क्योंकि कल्पना में यह शक्ति है कि जो जो भावनाएं विशेष उसको एक बार प्राप्त हुईं, उनको अपनी रुचि के अनुकूल घटावे, बढ़ावे वा परिवर्त्तित करे।

पदार्थों के रूप दरसाने में प्रतिमाकारी ही सबसे अधिक स्वाभाविक होती है और पदार्थों से सबसे अधिक समानता दिखलाती है। एक साधारण बात से इसकी परीक्षा कीजिए। एक जन्म से अन्धे मनुष्य के हाथ में एक पत्थर की प्रतिमा दे दीजिए; वह अपनी उंगलियों को फेर कर कांटों के चिह्न और चढ़ाव उतार का पता लगा लेगा और बड़ी सुगमता से विचार कर लेगा कि किस प्रकार एक मनुष्य अथवा पशु का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। पर यदि वह अपना हाथ एक चित्र पर फेरे, जहां कि समस्त चिकना और बराबर रहता है तो वह कभी नहीं विचार कर सकता कि किस प्रकार मनुष्य के अंग के उभाड़ और उसकी गहराई एक साधारण पटल पर, जो कहीं ऊंचा नीचा नहीं है, दरसाई गई है। वर्णन चित्र से भी अधिक उन वस्तुओं से दूर रहता है, जिनको वह प्रदर्शित करता है। क्योंकि एक चित्र अपने मूल से बहुत अधिक मेल खाता है; पर अक्षर और मात्राओं में यह गुण नहीं होता; रंग समस्त भाषा बोलते हैं, किन्तु शब्द किसी जातिविशेष ही द्वारा समझे जाते हैं। इसी कारण से हम कहते हैं कि यद्यपि मनुष्यों की आवश्यकता ने उन्हें पहिले वाणी की खोज में तत्पर किया, पर लिखने का आविष्कार चित्रकारी के पीछे हुआ है। कहा जाता है कि स्पेनवाले पहिले पहिल जब अमेरिका में पहुंचे, उस समय मेक्सिको (Mexico) के राजा के पास, जो सन्देसा भेजा जाता था, वह चित्र द्वारा; उस के देश के समाचार पेंसिल से आकार बनाकर भेजे जाते थे, जो कि लिखने की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक रीति थी-यद्यपि तदपेक्षा बहुत ही अपूर्ण; क्योंकि बचन के छोटे छोटे जोड़ों का आकार बनाना बहुत ही कठिन है और सम्बन्ध की विभक्तियों तथा संयोजक के चिन्हों का चित्र बनाना कोई साधारण काम नहीं है। इसी प्रकार दृश्य पदार्थों को ऐसी ध्वनि में, जो सर्वथा भावशून्य है, (अर्थात् जो केवल ध्वनिमात्र है, वर्णात्मक शब्द नहीं) प्रदर्शित करने का यत्न—जैसे बांसुरी के सुर में किसी पदार्थ का वर्णन करना-इससे भी विलक्षण होगा। यद्यपि यह सत्य है कि ध्वनि के कृत्रिम चढ़ाव उतार में इस प्रकार के भाव अस्पष्ट और अपूर्ण रूप में चित्त

में उत्पन्न हो जाते हैं। और हम देखते हैं कि गानविद्या के ज्ञाता लोग सुननेवालों को संग्राम के उद्वेग में कर देते हैं, उनके चित्त को शोक और उदासीनता से पूर्ण कर मृत्यु का रूप सन्मुख उपस्थित कर देते हैं, तथा उनको नन्दनकानन का मनोरञ्जक स्वप्न दिखाने लगते हैं।

इन सब उदाहरणों में, कल्पना का यह द्वितीय श्रेणी का आनन्द चित्त की उस क्रिया से उद्भूत होता है, जो कि मूल पदार्थों से उत्पन्न भावों से मिलान करती है और जो कि हम उन पदार्थों की प्रतिमा, उनके चित्र तथा बर्णनों से प्राप्त करते हैं। हम लोगों के लिए इसका वास्तविक कारण बतलाना कि क्यों चित्त की इस क्रिया के साथ इतना आनन्द लगा रहता है, असंभव है; जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं; किन्तु हम इस अकेले सिद्धान्त के अनुसार अनेक प्रकार के आनन्द उत्पन्न होते देखते हैं; क्योंकि चित्त की यही क्रिया हम लोगों में न कि केवल चित्रकारी, प्रतिमाकारी तथा बर्णनों ही की ओर अभिरूचि दिलाती है, वरन भांड़ों की नक़ल और उनकी क्रियाओं में हमें आनन्द अनुभव कराती है। इसीके प्रभाव से विविध भांति की विनोद और दिल्लगी की उक्तियां हमारे चित्त का रञ्जन करती हैं, जिनमें कि, जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, भावों का परस्पर मिलान होता है। और हमारा यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि इसीके प्रभाव से बहुत सी बेसिर पैर की मिथ्या बातें भी हमारे चित्त को प्रसन्न करती हैं। उदाहरणार्थ—जैसे अक्षरों का उलटफेर, स्वरों का मेल, जैसा अन्त्यानुप्रास और प्रतिध्वनि में; अथवा शब्दों का परस्पर सादृश्य, जैसा यमक और श्लेष में; तथा समस्त पद किम्बा कविता का दूसरे पदार्थों के अनुरूप होना- जैसा अन्योक्ति और व्यंग में। चित्त की इस क्रिया में इतना आनन्द उत्पन्न करने का अन्तिम कारण कदाचित् हमलोगों को सत्य की खोज के लिए उत्तेजित करना है; क्योंकि एक वस्तु की दूसरी से पहिचान करना, तथा अपने विचारों में से कौन सा विचार यथार्थ है, इसका पता लगाना, उनको आपस में मिलान करने और प्रकृति के नाना पदार्थों के सादृश्य और बिभेद पर ध्यान देने ही पर निर्भर है।

किन्तु मैं यहां पर कल्पना के उसी आनन्द के विषय में विचार करूंगा, जो शब्दों द्वारा उत्पन्न किए हुए भावों से प्राप्त होता है। क्योंकि बहुत सी बातें, जो वर्णनों के विषय में पाई जाती हैं, वेही प्रायः चित्रकारी और प्रतिमाकारी में भी समभाव से घटित होती हैं।

शब्दों में, यदि उनका व्यवहार उत्तमता से किया जाय, इतनी बड़ी शक्ति होती है कि कभी कभी पदार्थों का वर्णन स्वयं उन पदार्थों की अपेक्षा अधिक सुन्दर भावों से चित्त को पूर्ण करता है। वर्णनों (शाब्दिक) द्वारा पाठकगण दृश्यों को कल्पना पर जितना अधिक चटकीले रंगों में खींचा हुआ, तथा उनका जितना सजीव चित्र निर्मित किया हुआ पाते हैं, उतना उनके यथार्थ अवलोकन द्वारा नहीं। इस बात में कभी कभी कवि प्रकृति से भी बढ़ जाता है। यद्यपि, इसमें सन्देह नहीं कि वह अपना दृश्य उसी (प्रकृति) से लेता है, तथापि वह उसको अधिक चटकीला करता है और उसकी शोभा को बढ़ाता है, तथा समस्त खण्ड को ऐसा सजीव बना देता है कि वे स्वरूप, जो पदार्थों से प्राप्त होते हैं, उनकी अपेक्षा धुंधले और अस्पष्ट जान पड़ने लगते हैं, जो उनके वर्णनों में दरसाए जाते हैं। कारण इसका कदाचित यह है कि पदार्थों के देखने से उनका उतना ही भाग कल्पना पर चित्रित होता है, जितना हमारे नेत्रों के सामने रहता है; परन्तु उनके बर्णन में कवि अपनी इच्छानुसार उनका जितना विस्तृत दृश्य चाहता है, दिखलाता है और उनके ऐसे ऐसे भागों का हमारे लिए पता लगाता है, जिन पर, जब पहिले हमने उन पदार्थों को देखा था, या तो हमने ध्यान ही नहीं दिया, या जो हमारी दृष्टि के बाहर थे। जब हम किसी वस्तु की ओर देखते हैं, तब उसके विषय में जो भाव उत्पन्न होता है, वह केवल दो या तीन छोटे छोटे सामान्य भावों से मिलकर ही बना रहता है; किन्तु जब कवि उसीको दरसाता है, तब या तो वह हमें उसके विषय में एक अधिक प्रवर्द्धित भाव प्रदान करता है, अथवा हमारे चित्त में केवल ऐसे ही भावों को उत्पन्न करता है, जो कल्पना पर सबसे अधिक प्रभाव डालते हैं।

इस बात का विचार करना भी समय का सदुपयोग ही होगा, कि क्यों ऐसा होता है कि बहुतेरे पाठक, जो एक ही भाषा के जाननेवाले होते हैं और उन शब्दों का अर्थ समझते हैं, जिनको वे पढ़ते हैं, एक ही वर्णन के विषय में भिन्न भिन्न रुचि रखते हैं। हम देखते हैं कि एक ही पद को कोई तो पढ़ कर आकर्षित हो जाता है और कोई उसी को बेपरवाही के साथ झट से पढ़ जाता है; एक तो उसीमें एक उत्तम स्वाभाविक चित्र खींचा हुआ पाता है और दूसरा उसमें किसी प्रकार की अनुरूपता और यथार्थता नहीं देखता। इस भिन्न रुचि का कारण या तो एक की अपेक्षा दूसरे की कल्पना की पूर्णता है, अथवा एक ही शब्द से प्रत्येक पाठक का भिन्न भिन्न भाव ग्रहण करना। क्योंकि किसी वर्णन की उत्तमता के समझने तथा उसके विषय में विचार करने के लिए ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जो जन्म से उत्तम कल्पनावाला हो और जिसने भाषा के शब्दों की शक्ति और उनके प्रभाव को भली भांति तौला हो; जिसमें कि वह यह समझ सके कि कौन कौन से शब्द किन किन भावों के प्रगट करने के लिए उपयुक्त हैं और दूसरे शब्दों के संयोग से उन शब्दों में कितनी अधिक सुन्दरता और शक्ति आ जायगी। उन आकारों के धारण करने के लिए, जो बाहरी पदार्थों से प्राप्त होते हैं, कल्पना को तीव्र होना चाहिए; और यह जानने के लिए कि कैसे कैसे वाक्य उन्हें उत्तमता-पूर्वक पटावृत और विभूषित करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं, विचार को स्वच्छ होना चाहिए। वह मनुष्य, जिसमें इन सब बातों का अभाव है, चाहे वह किसी वर्णन का आभासमात्र समझ ले, किन्तु उसकी सुन्दरता को वह स्पष्टरूप से नहीं समझ सकता; उसी प्रकार, जैसे एक क्षीण दृष्टिवाला मनुष्य अपने सामने के किसी स्थल का धुंधला और अस्पष्ट दृश्य तो देख सकता है, किन्तु उसके समस्त भागों का आनन्द नहीं ले सकता और न उसके नाना रंगों को अपने पूर्ण विकाश और चमत्कार में देख सकता है।

सातवां प्रकरण ।

प्राय: देखने में आता है कि उन बहुत सी वस्तुओं में से, जिनको हमने पहिले कभी देखा है, यदि एक भी वस्तु ध्यान में आ जाती है तो समस्त दृश्य का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है और ऐसे ऐसे भाव जागृत हो जाते हैं जो पहिले कल्पना में निद्रित थे। जैसे कोई सुगंध अथवा रंग विशेष चट हमारे चित्त में बग़ीचों और खेतों का ध्यान दिला देता है जहां पर हमने पहिले उसको देखा था; और जो जो स्वरूप उसके आस पास थे उसको भी वह लाकर सामने खड़ा कर देता है। हमारी कल्पना केवल एक संकेत मात्र पा जाती है और चट हमको नगरों और अभिनयों, मैदानों और जंगलों में पहुंचा देती है। यह भी देखा जाता है कि जब हमारा चित्त उन दृश्यों को जिन्हें एक बार हम देख चुके हैं ध्यान करता है तो जो जो बातें उनमें हमें सुन्दर देख पड़ी थीं वे ध्यान करने पर और भी अधिक सुन्दर प्रतीत होती हैं; स्मृति मूल पदार्थ की रमणीयता को और बढ़ा देती है। एक कार्टिशियन (Cartesian) तत्त्ववेत्ता इन दोनों बातों का कारण निम्न लिखित शब्दों में बतलावेगा ।

वे विविध भाव जिनको हम बग़ीचों वा नैसर्गिक दृश्यों से प्राप्त करते हैं चित्त में एक साथ प्रविष्ट होते हैं और उनकी जुदा जुदा लकीरें मस्तिष्क में लग जाती हैं जो कि एक दूसरे से बहुत पास पास रहती हैं; अतः जब कभी कल्पना में इनमें से एक भाव भी उत्पन्न हो जाता है और अपनी निज की लकीर में एक उत्तेजक रस का प्रवाह प्रेषित करदेता है, तो यह उत्तेजक रस अपनी गति के आवेग में न कि केवल उसी लकीर विशेष में से होकर बहता है जिसमें कि वह परिचलित किया गया वरन उनमें से भी बहुतों में से जो उसके आस पास रहती हैं। इसी युक्ति से वह और भी कुछ भावों को जागृत कर देता है जो कि पुनः नए सिर से उत्तेजक रस को प्रेषित करते हैं और उसी प्रकार यह रस उनकी निकटवर्ती लकीरों को भी खोल देता है, यहां तक कि अन्त

में समस्त भावों का समूह उपट आता है और वह सारा बग़ीचा किम्बा नैसर्गिक दृश्य कल्पना में उद्भूत हो जाता है । चूंकि उस आनन्द ने जो हमने इन स्थानों से प्राप्त किया था उस घृणा को दबा दिया था जो कि हमें उनसे उत्पन्न हुई थी इस कारण से आनन्दकारक भावों की रेखाएँ बहुत चौड़ी अंकित हुई और इसके विपरीत घृणित भावों की रेखाएं इतनी संकीर्ण कि वे बहुत शीघ्र मुंद गई और इस उत्तेजक रस को ग्रहण करने में असमर्थ हो गई।

इस बात की जिज्ञासा करना तो व्यर्थ है कि यह पदार्थों की कल्पना करने की शक्ति वस्तुतः किसी मनुष्य की दूसरे की अपेक्षा अधिक आत्मिक-सम्पन्नता से उत्पन्न होती है अथवा मस्तिष्क की बारीकी से । परन्तु, यह तो निश्चय है कि एक उत्कृष्ट ग्रन्थकार में यह शक्ति अपने पूर्णरूप और विकाश में जन्म से होनी चाहिए जिसमें कि वह बाहरी पदर्थों से सुन्दर और सजीव भाव प्राप्त कर सके, उनको देर तक धारण कर सके और समय पर उनको ऐसे ऐसे स्वरूपों में सजा सके जो पढ़नेवाले के चित्त को सबसे अधिक चुटीले होते हैं । कवि को अपनी कल्पना को सुधारने में उतना ही परिश्रम करना चाहिए जितना दार्शनिक को अपनी विचार-शक्ति की अभिवृद्धि करने में । उसको प्राकृतिक कार्य्यों की ओर रुचि प्राप्त करनी चाहिए और तरह तरह के ग्रामीण दृश्यों से भली भाँति परिचित हो जाना चाहिए ।

जब वह इस प्रकार ग्रामीण स्वरूपों से परिचित होगया और अपनी कवित्व शक्ति को और भी विस्तृत करना चाहता है तब उसको राज दरबार के ठाट बाट और सजावट से जानकार होना चाहिए । शिल्प की रचनाओं में भी जो बात सुन्दर और विशाल होती है उसका भी ज्ञान अच्छी तरह सम्पादन कर लेना चाहिए- चाहे वह चित्र में हो अथवा प्रतिमा में, चाहे वर्त्तमान समय की बड़ी बड़ी इमारतों में हो अथवा उनके अवशेषों में जो प्राचीन समय में विद्यमान थीं । ये सब बातें मनुष्य के हृदय को खोलने में तथा कल्पना को विस्तीर्ण करने में सहायता पहुंचाती हैं; और इनका प्रभाव सब प्रकार की लिखावट पर पड़ता है, यदि ग्रन्थकार इस

बात को जानता है कि उनका व्यवहार किस ढंग पर करना चाहिए। कदाचित यह कहने की आवश्यकता न होगी कि बड़े बड़े काव्यों में भी यही बड़ाई, असाधारणता वा सुन्दरता है जो चित्त को चमत्कृत करती है।

आठवाँ प्रकरण।

कल्पना की यह द्वितीय श्रेणी का आनन्द उसकी अपेक्षा अधिक विस्तृत और व्यापक है जो नेत्रों के अवलोकन से प्राप्त होता है; क्योंकि एक उपयुक्त वर्णन में न कि केवल वही वस्तु जो बड़ी, असाधारण वा सुन्दर होती है वरन वह भी जो हमारी रुचि के प्रतिकूल होती है हमारे चित्त को प्रसन्न करती है। यहां पर हमारा आनन्द एक दूसरे ही सिद्धान्त पर रहता है; अर्थात् चित्त की उसी क्रिया से यह उत्पन्न होता है जो उन भावों को जो शब्दों से उत्पन्न होते हैं उन भावों से मिलान करती है जो वर्णित पदार्थों से प्राप्त होते हैं; और क्यों चित्त की यह क्रिया इतना आनन्द देती है इसका विचार हम पहिले कर चुके हैं। अतएव इसी कारण से यदि उपयुक्त शब्दों में उसका स्वरूप दरसाया जाय तो ग्राम के गोबड़ोर का (यद्यपि उसको देखने से एक प्रकार की अरुचि होगी) वर्णन भी कल्पना को आनन्द-दायक होता है। यद्यपि वास्तव में तो इसे कल्पना का आनन्द न कहके विचार वा विवेचना का आनन्द कहना चाहिए क्योंकि हम उस स्वरूप से जो वर्णन में दरसाया जाता है उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना उस वर्णन के उस स्वरूप को प्रगट करने की योग्यता से।

परन्तु, यदि ऐसी वस्तु का वर्णन जो छोटी, साधारण वा कुरूप होती है कल्पना को रुचिकर होता है तो जो वस्तु बड़ी, असाधारण वा सुन्दर होती है उसका वर्णन तो और भी अधिक हृदयग्राही होगा; क्योंकि तब हम दरसाए हुए पदार्थ को केवल मूल से मिलान करने ही से नहीं प्रसन्न होंगे वरन स्वयं मूल के स्वरूप से भी आनन्दित होंगे। बहुतेरे पाठक मैं समझता हूं कि

मिल्टन के नर्क के वर्णन को पढ़कर उतना मोहित न होते होंगे जितना स्वर्ग के। यद्यपि अपने अपने ढंग के दोनों ही बहुत उपयुक्त हैं; किन्तु एक में भयानक अग्नि और दुर्गन्धि की कल्पना उतनी सुहावनी नहीं हैं जितनी दूसरे में फूलों के उपवन, और हरे भरे कानन।

एक बात और है जिससे वर्णन सबसे अधिक रोचक हो जाता है; वह यह कि जब वह ऐसी ऐसी बातों को दरसाता है जो पढ़ने वाले के चित्त में कोई उत्तेजना उत्पन्न करती हैं और उसके मनोवेगों पर शक्ति के साथ प्रभाव डालती हैं। क्योंकि इससे हम तुरंत चंचल हो जाते हैं जिससे आनन्द और भी व्याप्त हो जाता है और कई प्रकार से हमें लीन करता है। जैसे चित्रकारी में, किसी के चेहरे के चित्र की ओर जो यथातथ्य उतरा हो देखने से हम प्रसन्न होते हैं; किन्तु यदि वह किसी ऐसे चेहरे का चित्र है जो सुन्दर है तो हमारी प्रसन्नता और भी बढ़ जाती है। और यदि कहीं उस सौन्दर्य में उदासीनता और शोक का भाव भी मिश्रित कर दिया जाता है तब तो हमारे आनन्द का कहीं ठिकाना नहीं रहता। चित्त के दो प्रबल वेग जिनको गंभीर प्रकार की कविता उभाड़ने का यत्न करती है वे भय और दया हैं। यहां पर लोगों को आश्चर्य होगा कि यह कैसे होता है कि वे मनोवेग जो और दूसरे अवसरों पर तो दुःखदायक होते हैं किन्तु जब उपयुक्त वर्णनों द्वारा वे उत्तेजित किए जाते हैं तो बहुत ही मनोरञ्जक होते हैं। यह तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे ऐसे प्रकरणों को पढ़कर हम आनन्दित हों जो आशा, आल्हाद, प्रशंसा, प्रेम तथा इसी प्रकार के और वेग उत्पन्न करते हैं; क्योंकि ये मनोवेग चाहे जिस अवसर पर उत्पन्न होंगे हमें बिना आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान किए न रहेंगे। परन्तु यह कैसे होता है कि किसी वर्णन द्वारा भयभीत अथवा हताश किए जाने से हम प्रसन्न होते हैं, जब कि उसी शोक और भय के दूसरे अवसरों पर उत्पन्न होने से हम इतने विह्वल हो जाते हैं?

यदि हम इस आनन्द की भली प्रकार परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि यह वास्तव में किसी ऐसी वस्तु के वर्णन से नहीं उत्पन्न

होता है जो भयानक होती है वरन हमारे उसे पढ़ते समय अपने विषय में विचार करने से। जब हम ऐसी भयानक वस्तुओं को देखते हैं तो यह विचार करके कुछ कम प्रसन्न नहीं होते कि हमें उनका कोई भय नहीं है। हम उन्हें भयानक तो समझते हैं किन्तु उसके साथ ही हानि पहुंचाने में असमर्थ; इसलिये जितना ही अधिक वे अपना भयानक रूप दिखलाती हैं उतना ही हम उनसे अपनेको रक्षित समझ कर और भी प्रसन्न होते हैं। सारांश यह कि हम किसी वर्णन की भयानक बातों को उसी कौतूहल के साथ देखते हैं जैसे एक मरे हुए राक्षस वा दैत्य को।

यही कारण है कि हम व्यतीत आपदाओं को विचार करके भी प्रसन्न होते हैं या किसी भारी चट्टान को दूर से देख कर हर्षित होते हैं जिसको यदि अपने सिर के ऊपर लटकती हुई हम देखें तो एक दूसरे ही प्रकार के भय से हमारा चित्त पूर्ण हो जाय।

इसी प्रकार जब हम पीड़ा, क्लेश, मृत्यु तथा इसी प्रकार की और दारुण घटनाओं के विषय में पढ़ते हैं तो हमारा आनन्द उस शोक से नहीं उत्पन्न होता है जो ऐसे दुःखमय वर्णनों से हमें प्राप्त होता है वरन हमारे भीतर ही भीतर अपनी अवस्था को उस क्लेशित व्यक्ति की अवस्था से मिलान करने से। ऐसे वर्णन हमें अपनी अवस्था का यथार्थ मूल्य समझना तथा अपने सौभाग्य की सराहना करना, जिससे हम इस प्रकार की आपदाओं से बचे हैं, सिखलाते हैं। यह एक ऐसे प्रकार का आनन्द है जो हम उस समय नहीं प्राप्त कर सकते जब हम यथार्थ में किसी मनुष्य को उसी पीड़ा से क्लेशित देखते हैं जो वर्णन में दरसाई गई है; क्योंकि तब वह वस्तु हमारी इन्द्रियों के बहुत ही निकट हो जाती है और हमें इतना अखर जाती है कि हमें अपने विषय में विचार करने को समय और अवकाश ही नहीं मिलता। हमारा ध्यान पीड़ित व्यक्ति के क्लेश और दुःख की ओर इतना झुका रहता है कि उसे हम अपने सुख की ओर नहीं फेर सकते। परन्तु, इसके प्रतिकूल हम उन आपदाओं को जो इतिहास अथवा काव्य में पढ़ते हैं या तो व्यतीत समझते हैं अथवा कल्पित; इससे हमारे चित्त में अपनी अवस्था का

ध्यान इस प्रकार दबे पांव प्रवेश करता है कि हमें ज्ञान नहीं पड़ता और पीड़ित पुरुष के क्लेश से जो दुःख होता है उसको दबा देता है।

परन्तु मनुष्य का चित्त पदार्थों में कोई बात उससे और पूर्ण चाहता है जितना उनमें देखता है और प्रकृति में कोई ऐसा दृश्य नहीं देखता जो उसके आनन्द की सबसे उच्च अभिलाषाओं को सन्तुष्ट कर सके-अथवा यों कहिए कि कल्पना उससे कहीं अधिक बड़ी, असाधारण और सुन्दर वस्तुओं का अनुमान कर सकती है जिन्हें हम अपनी आँखों से देखते हैं, और कोई न कोई त्रुटि इन आंख से देखी हुई वस्तुओं में वह बोध करती है। इसीसे यह कवि का कर्त्तव्य है कि कल्पना का उसीकी रुचि के अनुकूल अनुरंजन करे; अर्थात् जहां पर वह किसी सत्य और वास्तविक वस्तु का वर्णन करता है वहां पर प्रकृति को पूर्ण और दुरुस्त करे और जहां वह किसी कल्पित वस्तु का वर्णन करता है वहां प्रकृति की अपेक्षा अधिक सौन्दर्यों को बटोर कर एकत्रित करे।

उसके लिये प्रकृति की धीमी चाल के अनुसार एक से दूसरी ऋतु में जाना तथा फूलों और पौधों के विषय में उसके सामयिक नियमों का पालन करना कोई आवश्यक नहीं है। वह अपने वर्णन में बसन्त और शिशिर की शोभा एक साथ दिखला सकता है और उसको रोचक बनाने के लिये समस्त वर्ष की शोभा से थोड़ी थोड़ी सहायता ले सकता है। उसके पारिजात, गुलाब और कदम्ब एक साथ फूल सकते हैं। उसकी (कवि की) भूमि किसी वर्ग विशेष के पौधों ही के लिये नहीं बनी है, आम और अखरोट समान रूप से उसमें मिल सकते हैं; अर्थात् प्रत्येक देश की जल वायु के पौधों के लिये उसकी भूमि उपयुक्त होती है; नारंगियों का बन वहां खड़ा मिल सकता है; हर एक झाड़ी फूलों से लदी हुई देखी जा सकती है; और यदि वह (कवि) मसालों का उपवन भी वहां होना उचित समझता है तो वह तुरन्त उन्हें पैदा होने भर के लिये उष्णता ला सकता है। यदि ये सब मिलकर भी रोचक दृश्य नहीं उपस्थित कर सकें तो वह नए प्रकार के फूलों की सृष्टि करता है जो उनकी अपेक्षा अधिक मधुर सुगंधवाले तथा चटकीले रंगवाले होते हैं जो प्रकृति के उपवनों में पाए जाते हैं। उसके विहंगों का कलरव इतना

मधुर और हृदयग्राही हो सकता है और उसके बन इतने निबिड़ और सघन हो सकते हैं जितना वह चाहे । दृश्य चाहे छोटा हो वा बड़ा उसके लिये दोनों बराबर है; वह अपने झरनों को आध मील की ऊंचाई से वैसी ही सुगमता से गिरा सकता है जैसी बीस गज़ की ऊंचाई से; वायु को वह जिस ओर चाहे बहा सकता है; और नदी की धारा को वह ऐसे ऐसे घुमावों के साथ बहा सकता है जो कल्पना को सबसे अधिक आनन्ददायक होते हैं । सारांश यह कि प्रकृति का गढ़ना उसके हाथ में रहता है, उसको वह जैसी शोभा चाहता है वैसी प्रदान कर सकता है; किन्तु उसको वह अत्यन्त ही न सुधार डाले और उससे बढ़ जाने के निमित्त यत्न करने में कहीं वे सिर पैर की व्यर्थ बातों में न फँस जाय ।

नवाँ प्रकरण ।

एक लिखने की रीति है जिसमें कवि प्रकृति की ओर बिल्कुल नहीं दृष्टिपात करता और अपने पाठकों के चित्त को ऐसे ऐसे पात्रों के कर्मों और स्वभावों से पूर्ण करदेता है जिनका सिवाय उसकी रचना में और कहीं अस्तित्व नहीं । अप्सरा डाइन, भूत प्रेत, और मृत पुरुषों की आत्मा इत्यादि इसी प्रकार की हैं । ऐसी रचनाओं में जो सर्वथा कवि की कल्पना ही पर निर्भर रहती हैं यह सबसे कठिन है क्योंकि इसमें उसके चलने के लिये कोई नमूना नहीं रहता उसको बिलकुल अपनी ही गढंत पर काम करना होता है ।

इस प्रकार की रचना के लिये चित्त की एक बहुत ही विलक्षण प्रवृत्ति की आवश्यकता है; और किसी ऐसे कवि का इसमें कृतकार्य होना असंभव है जिसके भाव निराले न हों और जिसकी कल्पना स्वभाव ही से उपजाऊ और संशयी न हो । इसके अतिरिक्त उसको किस्से कहानियों, पुराने पुराने व्याख्यानों तथा बूढ़े लोगों की जनश्रुति इत्यादि में भली प्रकार प्रवीण होना चाहिए, जिसमें वह हम लोगों की स्वाभाविक रुचि के अनुसार अपनेको ले चले, और जिन भावों को बचपन में हमने ग्रहण किया था उनका अनुमोदन करे; क्योंकि अन्यथा यह भूतों और डाइनों को अपने ही वर्ग के लोगों के समान

बोलावेगा, न कि उन दूसरी ही श्रेणी के जीवों की तरह जिनके वार्त्तालाप का अभिप्राय तथा जिनकी विचार करने की प्रणाली मनुष्यों से भिन्न होती है।

मैं मि० बेज़ की भांति यह नहीं कहता कि कोई बन्धन नहीं है कि भूत प्रेत अर्थसूचक ही बात बोलें; परन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि उनके अर्थ कुछ विलक्षण और असम्बद्ध होने चाहिए जिसमें वे बोलनेवाले के स्वरूप और अवस्था के अनुकूल हों।

इस प्रकार के वर्णन पढ़नेवाले के चित्त में एक प्रकार का आनन्दकारक त्रास उत्पन्न करते हैं और उसकी कल्पना को उन पात्रों की विलक्षणता और नवीनता से रञ्जित करते हैं जो उनमें दरसाए गए हैं। ये हमारी स्मृति में उन कहानियों को लाते हैं जिन्हें हमने लड़कपन में सुना था; और उन अन्तरस्थित भय और आशंकाओं का अनुमोदन करते हैं जो मनुष्य के चित्त में स्वाभाविक हैं। हम लोग दूसरे देश के लोगों की भिन्न चाल ढाल और रहन सहन देखकर प्रसन्न होते हैं! कितने और अधिक हम प्रसन्न होंगे यदि मानो एक नई सृष्टि ही में हम पहुंचा दिए जांय और वहां दूसरे ही प्रकार के जीवों के आकार और व्यवहार देखें। शुष्क-हृदय तथा तर्कनाप्रिय मनुष्य इस प्रकार की कविता का यह कहकर विरोध करते हैं कि उसके वर्णन इतने संभव नहीं होते कि किसी प्रकार का प्रभाव कल्पना पर डालें। किन्तु इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि हमें निश्चय है कि इस जगत में हम लोगों के अतिरिक्त और भी बुद्धिसम्पन्न जीव हैं तथा और भी इस प्रकार की आत्माएं हैं जो मनुष्य की आत्मा से भिन्न नियमों से प्रतिबद्ध हैं। इसलिये जब हम इनमें से किसी को स्वाभाविक रीति पर दरसाया हुआ पाते हैं तो उसे सर्वथा असंभव और निर्मूल नहीं समझ लेते; वरन बहुतेरे लोग तो पहिलेही से उनके विषय में ऐसी सम्मति रखते हैं जो चट उन्हें ऐसी बातों पर विश्वास लाने को बाध्य कर देती है। हम लोगों ने, और कुछ नहीं तो उनके पक्ष में इतने मनोहर वर्णन सुने हैं कि हम असत्यता की ओर देखने की परवांह ही नहीं करते हैं और बड़े मन से ऐसे रोचक प्रलापों में अपने को लीन होने देते हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल के लोगों में कविता की यह प्रथा प्रचलित न थी; क्योंकि, यथार्थ में, इसके सारे भाग की उत्पत्ति माध्यमिक काल के अंधकार और भ्रम से है जब कि मनुष्यों के दिलबहलाव के लिये तथा उनको डराकर अपने मत पर दृढ़ करने के लिये धर्म्म की आड़ में जाल रचे जाते थे। संसार में विद्या और विज्ञान का प्रकाश फैलने के पहिले लोग प्रकृति को बहुत ही पूज्य तथा भय की दृष्टि से देखते थे और यंत्र मंत्र भूत प्रेत आदि की आशंकाओं से चकित होना बहुत पसन्द करते थे। कोई भी गांव देश में ऐसा न था जहां एक भूत न हो; स्मशानों पर सर्वत्र भूतों का डेरा रहता था; प्रत्येक ताल के किनारे चुडैलों की मंडली बैठती थी; एक भी ग्रामीण ऐसा न मिलता था जिसने एक भूत न देखा हो।

यूरोप के कवियों में अंग्रेज़ कवि ही प्रायः इसमें अधिक कुशल होते हैं, चाहे इस कारण कि उनमें इस प्रकार की कहानियां बहुत हैं अथवा उस देश की प्रतिभा इस प्रकार की रचना के लिये विशेष उपयुक्त है क्योंकि अंग्रेज़ लोग स्वभाव से कल्पनाप्रिय होते हैं।

अंग्रेज़ कवियों में शेक्सपियर ही इस प्रकार की रचना में सब से बढ़ाचढ़ा है। वह कल्पना की उस प्रचुरता के प्रभाव से जो उसमें इतने पूर्ण रूप से थी अपने पाठकों के चित्त के कोमल और संशयी भाग को द्रवीभूत कर सका और ऐसे ऐसे स्थलों पर कृतकार्य्य होने में समर्थ हुआ जहां उसकी प्रतिभा की शक्ति के अतिरिक्त और आश्रय व आधार न था। उसके भूत, प्रेत और परियों की वार्त्ताओं में कोई बात ऐसी बीहड़ पर साथ ही ऐसी गंभीर है कि हम उनको बिना स्वाभाविक समझे नहीं रह सकते यद्यपि हमारे पास उनकी परीक्षा के लिये कोई साधन नहीं है। यह भी हम स्वीकार करेंगे कि यदि इस प्रकार के जीवों की सृष्टि जगत में है तो यह बहुत संभव है कि वे इसी प्रकार की बोली बोलते होंगे और ऐसे ही कर्म करते होंगे जैसा उसने दरसाया है।

एक प्रकार के और कल्पित जीव हैं जो हमें कवियों की रचना में कभी कभी मिलते हैं, अर्थात् जब रचयिता किसी मनोवेग, पाप, सत्य धर्म्म इत्यादि को दृगोचर स्वरूप में प्रदर्शित करता है और

उनको अपने काव्य के पात्र बनाता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के पात्र इसी प्रकार के हैं। भारतेन्दु जी के भारतदुर्दशा नाटक में आशा, आलस्य, रोग इत्यादि सब मनुष्यों के रूप में प्रगट हुए हैं। इस प्रकार की रचना बहुत ही मनोहारिणी और ओजस्विनी होती है। मैं स्थानाभाव से इन कल्पित पात्रों का उल्लेख मात्र यहां कर सकता हूं। इस भांति हम देखते हैं कि कितने रूपों में कविता कल्पना को सम्बोधन करती है; क्योंकि इसके कार्य्य का क्षेत्र न कि केवल सम्पूर्ण प्रकृति ही का मंडल है वरन् यह अपनी एक नई सृष्टि निर्माण करती है, ऐसे ऐसे व्यक्तियों का दर्शन कराती है जो इस भूमण्डल पर नहीं पाए जाते, और यहां तक कि आत्मा की विविध क्रियाओं को, उसके सद्भावों और विकारों को गोचर आकार और स्वभाव में दिखला देती है।

मैं अब अपने अगले दो प्रकरणों में यह विचार करूंगा कि किस प्रकार काव्य के अतिरिक्त और दूसरे प्रकार की लिखावट कल्पना को आनन्दित करने में योग्यता रखती है और फिर वहीं से इस निबन्ध की समाप्ति करूंगा।

दसवां प्रकरण।

जैसे कि काव्य तथा काल्पनिक साहित्य के रचयितागण अपनी बहुत सी सामग्रियों को बाहरी पदार्थों से लेते हैं और उनको अपने मनोनुकूल एक साथ संयोजित करते हैं वैसे ही लेखकों का एक और समुदाय है जो प्रकृति का अनुगामी होने के लिये उनकी अपेक्षा अधिक विवश है और अपना सारा दृश्य उसीसे लेता है। इतिहासकार, वैज्ञानिक, भ्रमणकार, भूगोलकार तथा वे सब जो भूस्थित वास्तविक पदार्थों का वर्णन करते हैं इसी समुदाय के अन्तर्गत हैं।

इतिहासकार का यह प्रधान गुण है कि वह उपयुक्त शब्दों में अपनी सेना का सुसज्जित होना और संग्राम में तत्पर होना वर्णन करे; हम लोगों की आँख के सामने बड़े लोगों के द्वेष, गर्व और छल को दरसावे और अपने इतिहास की बहुत सी घटनाओं

में क्रम क्रम से हमें ले चले। घटनाओं का धीरे धीरे यथाक्रम उद्भूत होना और हम पर इस रीति से प्रगट होना कि हमको पहिले से उनका कुछ ज्ञान न होने पावे हमें बहुत प्रिय है; जिसमें कि हम एक प्रकार के मनोरञ्जक सन्देह में पड़े रहें और हमें अनुमान बांधने का तथा वर्णन किए हुए दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष को अवलम्बन करने का समय मिले। यह मैं स्वीकार करता हूं कि इससे इतिहासकार का जितना गुण प्रगट होता है उतना यथार्थ वाद नहीं, किन्तु मैं तो उसका उल्लेख उतने ही अंश में करना चाहता हूं जितना कल्पना को प्रफुल्लित करने में समर्थ है। इन बातों में **लिवी** (Livy) अपने आगे और पीछे के सब इतिहासकारों से बढ़ा चढ़ा है। वह प्रत्येक वस्तु का ऐसा सजीव वर्णन करता है कि उसका समस्त इतिहास एक सुन्दर चित्र प्रतीत होता है, और हर एक कथा के ऐसे चुटीले वृत्तान्तों की ओर झुकता है कि उसका पढ़ने वाला एक प्रकार का निरीक्षक हो जाता है और उन समस्त मनोवेगों का अनुभव करने लगता है जो वर्णन के विविध भागों से सम्बन्ध रखते हैं।

किन्तु इस श्रेणी के लेखकों में कल्पना को इतना कोई सन्तुष्ट और प्रशस्त नहीं करते हैं जितना नए विज्ञान की पुस्तकों के प्रणेतागण; चाहे हम उनके पृथ्वी तथा आकाश विषयक सिद्धान्तों का और यन्त्रों द्वारा उनके नाना आविष्कारों का विचार करें अथवा प्रकृति विषयक उनके और और अनुमानों पर ध्यान दें। हम हर एक हरी पत्ती को लाखों ऐसे जीवों से गुथी हुई देखकर कुछ कम प्रसन्न नहीं होते हैं जिनको कि खाली आंख कभी देख नहीं सकती। धातु, पौधों तथा तारों के विषय में जो पुस्तकें होती हैं उनमें कोई बात कल्पना और बुद्धि दोनों को बहुत ही रोचक होती है। किन्तु जब हम एक वेर समस्त पृथ्वी की ओर तथा उन सब उपग्रहों की ओर जो उसके निकटवर्त्ती हैं दृष्टि डालते हैं तो हम इतने लोकों को अन्तरिक्ष में एक दूसरे के समानान्तर लटकते हुए तथा अपनी अपनी कक्षाओं पर ऐसे अद्भुत चमत्कार और वेग के साथ परिक्रमण करते हुए देखकर एक मनोरञ्जक आश्चर्य से पूर्ण हो जाते हैं। यदि इसके उपरान्त हम Ether (सूक्ष्म पदार्थ) के अपार क्षेत्रों का विचार करते हैं जो ऊंचाई

में शनैश्चर से लेकर स्थिरीकृत ग्रहों तक (Fixed Stars) पहुंच गए हैं और इधर उधर इतने विस्तार में फैले हुए हैं जिसका पारावार नहीं तो हमारी कल्पना–शक्ति ऐसे विपुल दृश्य से भर उठती है जिसके समावेश के लिये उसको बहुत ही फैलना पड़ता है। किन्तु यदि हम और आगे बढ़ते हैं और विचार करते हैं कि ये स्थिरीकृत ग्रह आग के अपार समुद्र हैं और प्रत्येक के साथ भिन्न भिन्न वर्ग के उपग्रह हैं; और फिर नए नए आकाश और नए नए प्रकाश का पता लगाते हैं जो ईथर (Ether) के अगाध समुद्र में इस प्रकार मग्न पड़े हैं कि बड़े से बड़े दूरवीक्षण यंत्रों द्वारा भी नहीं देखे जा सकते तो हम सूर्यों और लोकों की भूल भुलैया में फंस जाते हैं और प्रकृति के चमत्कार और विस्तार से स्तम्भित हो जाते हैं।

कल्पना को कोई बात इतनी प्रिय नहीं है जितना पदार्थों के परस्पर विस्तार–सम्बन्ध को विचार करके क्रम क्रम से प्रवर्द्धित होना, जब वह मनुष्य के शरीर को सम्पूर्ण पृथ्वी के पिण्ड से मिलान करती है; पृथ्वी को उस वृत्त से जो उसके चारो ओर वह बनाती है, उस वृत्त को स्थिरीकृत ग्रहों के मंडल से, स्थिरीकृत ग्रहों के मंडल को सम्पूर्ण सृष्टि से और समस्त दृष्टि को उस अपार शून्य-स्थान से जो उसके चारो ओर फैला हुआ है; अथवा जब कल्पना नीचे की ओर जाती है और मनुष्य के शरीर को किसी मटर से भी सौ गुने छोटे जानवर से मिलान करती है,फिर उस जीव के विशेष विशेष अवयवों से, तदनन्तर उन पुरज़ों से जो उन अवयवों में क्रिया उत्पन्न करते हैं, तदुपरान्त उस शक्ति से जो उन पुरज़ों को चलाती है और पुनः इन समस्त भागों की उस समय की सूक्ष्मता से जब कि वे पूरी बाढ़ को नहीं पहुंचे रहते हैं। और यदि इन सब के पीछे इस शक्ति के क्षुद्रातिक्षुद्र अंश को हम लेते हैं और उसके द्वारा एक संसार निर्मित होने की संभावना पर विचार करते हैं जिसमें कि उतने ही विस्तार में पृथ्वी और आकाश, तारे और उपग्रह तथा सब तरह के जीव परस्पर उसी सम्बन्ध के साथ सन्निविष्ट रहेंगे जैसा कि हमारे इस संसार में, तो इस प्रकार का विचार अपनी सूक्ष्मता के कारण उन लोगों को उपहास-जनक जान पड़ता है जिन्होंने अपना ध्यान इस

और नहीं फेरा है यद्यपि उसकी स्थिति दृढ़ प्रमाणों के आधार पर है। यहीं तक नहीं हम इस विचार को और भी आगे ले जा सकते हैं और इस क्षुद्र जगत के छोटे से छोटे कण में भी तत्त्व के ऐसे अतुल भंडार का पता लगा सकते हैं जिससे एक दूसरा ब्रह्माण्ड तक निर्मित हो सकता है।

इस विषय को मैंने विस्तार के साथ वर्णन किया है क्योंकि मैं समझता हूं कि इससे कल्पना की यथार्थ पहुंच और उसकी त्रुटि का बोध हो जायगा और विदित हो जायगा कि किस प्रकार उसका प्रवेश बहुत ही थोड़े स्थान के बीच है और किस प्रकार किसी ऐसी वस्तु को ग्रहण करने के लिये जो अत्यन्त छोटी वा अत्यन्त बड़ी होती है जब वह यत्न करती है तो चट रोक दी जाती है। यदि कोई मनुष्य किसी ऐसे जीव के शरीर-पिंड को जो सरसों से बीस गुना छोटा है एक ऐसे जीव से मिलान करे जो सरसों से सौगुना छोटा है, अथवा अपने ध्यान में पृथ्वी के सहस्र व्यासों की लम्बाई को उसीके दश लाख व्यासों की लम्बाई से मिलान करे तो उसे तुरन्त ज्ञात पड़ेगा कि ऐसी ऐसी असाधारण मात्रा की सूक्ष्मता और विशालता का अन्दाज़ः करने के लिये उसके चित्त में कोई पृथक पृथक माप नहीं हैं। हमारी बुद्धि अलबत्ते हमारे चारों ओर अनुसन्धान का मार्ग खोल देती है; किन्तु कल्पना कुछ थोड़े से यत्न के उपरान्त चट स्थिर हो जाती है और उस अपार शून्यसागर में मग्न हो जाती है जो उसको चारों ओर से घेर लेता है। हमारी बुद्धि द्रव्य के एक कण का न जाने कितने प्रकार के भागों में बंट जाने पर भी पीछा नहीं छोड़ती; किन्तु कल्पना को वह बहुत शीघ्र अदृश्य हो जाता है। कल्पना अपने में एक तरह का रन्ध्र बोध करने लगती है जिसको कि वह किसी और विशेष गोचर पिण्ड की सामग्री से भरना चाहती है। हम इस शक्ति को न तो सिकोड़ कर सूक्ष्मता के अन्त तक ले जा सकते हैं और न फैला कर विशालता के सिरे पर पहुंचा सकते हैं। जब हम पृथ्वी की परिधि का ध्यान करते हैं तो वह वस्तु हमारी शक्ति की पहुंच से अत्यन्त बड़ी हो जाती है और जब हम एक परिमाणु का अनुमान करने के लिये यत्न करते हैं तब वह हमारे लिये कुछ भी नहीं रह जाती।

संभव है कि यह त्रुटि स्वयं आत्मा में न हो, वरन जब वह शरीर के सहयोग से काम करती है तब उसमें यह दोष आ जाता हो। कदाचित् मस्तिष्क में इतने तरह के चिन्हों के लिए स्थान ही न हो अथवा चेतना शक्ति उनको इस ढंग पर निर्मित करने में असमर्थ हो कि वे इतनी बड़ी अथवा इतनी छोटी भावनाओं को उत्तेजित कर सकें। जो कुछ हो हम यह मान सकते हैं कि दूसरे उच्च श्रेणी के जीव हमसे इस बात में बहुत बढ़े चढ़े हैं; और संभव है कि मनुष्य की आत्मा आगामि काल में (शरीर से पृथक होने पर) जैसे और सब बातों में वैसे ही इस शक्ति में भी पूर्णता प्राप्त करेगी; यहां तक कि कल्पना बिचार के साथ साथ चलने और विस्तार के समस्त जुदे जुदे परिमाण और क्रम के लिये पृथक पृथक भाव रखने में सक्षम होगी।

ग्यारहवां प्रकरण।

कल्पना का आनन्द ऐसे ही ग्रंथकारों के ऊपर अवलम्बित नहीं है जो भौतिक पदार्थों में कुशल होते हैं वरन बहुधा नीति, समालोचना तथा द्रव्यों से निकाले हुए और और निरूपणों के गंभीर कर्त्ताओं में भी हम इस आनन्द को पाते हैं। ये लोग यद्यपि प्रकृति के दृग्गोचर भागों का स्पष्टतया वर्णन नहीं करते हैं तथापि वे प्रायः अपने उदाहरण, रूपक और अपनी उपमाएं उनसे लेते हैं। इस प्रकार के दृष्टान्तों से बुद्धि में स्थित कोई तत्त्व मानो कल्पना में प्रतिबिम्बित हो जाता है; हम किसी बिचार में रंग और आकार देखने लगते हैं और भावों को भौतिक द्रव्यों पर झलकाया हुआ पाते हैं। जब कल्पना बुद्धि की बातों को अवतरण करने और मानसिक संसार भावों को खींचकर भौतिक संसार में लाने में लगी रहती है उस समय चित्त बहुत प्रसन्न होता है और उसकी दो शक्तियां एक साथ ही परितुष्ट होती हैं।

किसी ग्रंथकार का गुण मनोरञ्जक दृष्टान्तों के चुनाव में प्रगट होता है जो कि प्रायः प्रकृति वा शिल्प के बिशाल और

सुन्दर निर्माणों से लिये जाते हैं; क्योंकि यद्यपि जो बात नई वा असाधारण होती है कल्पना को प्रसन्न करती है पर दृष्टान्त का मुख्य उद्देश्य किसी ग्रंथकार के वाक्यों का स्पष्टीकरण है इसलिये इस को सर्वथा ऐसे ही पदार्थों से लेना चाहिए जो उन वाक्यों की अपेक्षा जिन्हें स्पष्ट करना है अधिक परिचित और जाने हुए हों।

रूपक यदि उत्तमतापूर्वक चुने जाते हैं तो किसी प्रसंग के बीच बीच में प्रकाश की ज्योति की भांति हो जाते हैं जो कि अपने पास की सारी वस्तुओं को स्पष्ट और सुन्दर कर देती है। एक उत्कृष्ट उपमा यदि कौशल के साथ रक्खी जाती है तो अपने चारो ओर चमत्कार फैला देती है और संपूर्ण पद को कान्तिमय कर देती है। ये विविध प्रकार के दृष्टान्त (रूपक, उपमा इत्यादि) केवल सादृश्य दिखाने की भिन्न भिन्न प्रणालियां हैं; जिसमें ये कल्पना को आनन्दित कर सकें इसलिये सादृश्य या तो बहुत ही ठीक अथवा बहुत सुन्दर और रोचक होना चाहिए; जैसे कि हम किसी ऐसे चित्र की ओर देखना पसन्द करते हैं जिसमें अनुरूपता ठीक अथवा चेष्टा और भाव सुन्दर होता है। परन्तु हम बहुधा बड़े बड़े लेखकों को भी इस बात में दोषी पाते हैं; बड़े बड़े पंडित लोग अपने दृष्टान्त और उदाहरण प्राय: उन शास्त्रों से लेते हैं जिनमें वे सब से अधिक दक्ष होते हैं, अतएव उनके पांडित्य का समावेश लोग उनके सर्वथा भिन्न विषयों के प्रतिपादन में पाते हैं। मैंने "प्रेम" पर एक प्रबंध पढ़ा है जिसको सिवाय एक गहिरे रासायनिक के और कोई नहीं समझ सकता, और बहुत से धर्म्मोपदेश सुने हैं जिनको दार्शनिकों की मंडली के बीच सुनाना चाहिए। इसके विपरीत, कामकाजी लोग ऐसे दृष्टान्तों का आश्रय लेते हैं जो अत्यन्त ही परिचित और क्षुद्र होते हैं। ये लोग या तो पाठकों को शतरंज और गेंद के खेल की ओर ले जाते हैं अथवा तरह तरह के व्यवसाय और व्यापार की धुन में एक दूकान से दूसरी दूकान पर ले जाकर खड़ा करते हैं। यह ठीक है कि इन दोनों प्रकार की बातों में भी न जाने कितने तरह के सुन्दर दृष्टान्त मिल सकते हैं पर सब से हृदयग्राही प्रकृति के कामों ही में पाए जाते हैं जो कि समस्त शक्तियों को प्रत्यक्ष

होते हैं और उनसे बढ़ के आनन्द-दायक होते हैं जो कला और विज्ञान में पाए जाते हैं।

कल्पना पर प्रभाव डालने का यही गुण है जो उत्तम बुद्धि को भी अलङ्कृत करता है और एक मनुष्य की रचना को दूसरे मनुष्य की रचना से विशेष रोचक बनाता है। यों तो प्रायः सब तरह की लिखावट को यह उज्ज्वल करता है पर कविता का तो यह जीव और सर्वस्व है। जिस काव्य में यह गुण भली प्रकार झलकाया गया है उसको यह युगान्तरों से रक्षित रखता आया है चाहे उसमें सिवाय इसके और कोई बात प्रशंसा की न हो; और जिसमें सब शोभा विद्यमान रहती है पर इसकी हीनता रहती है वह रचना शुष्क और नीरस जान पड़ती है। इसमें कोई बात सृष्टि की सी होती है; यह एक प्रकार का अस्तित्व प्रदान करता है और पाठकों के सामने ऐसे बहुत से पदार्थों को लाता है जो इस जगत में नहीं पाए जाते। यह प्रकृति में बहुत सी बातें बढ़ाता है और परमेश्वर के कार्यों के बहुत से भेद दिखलाता है। संक्षेपतः यह सृष्टि के उत्तम से उत्तम दृश्यों को भी विभूषित और कान्तिमय कर सकता है, अथवा चित्त को उनसे अधिक चमत्कारक कौतुक और आभास दिखला सकता है जो उसके किसी भाग में पाए जा सकते हैं।

हम उन आनन्दों के बहुत से मूलों का पता लगा चुके जो कल्पना को सन्तुष्ट करते हैं; अब यहां पर कदाचित् उन विपरीत वस्तुओं को अलग करके दिखलाना कठिन न होगा जो उसको अरुचि और भय से पूर्ण कर देती हैं, क्योंकि कल्पना उतना ही क्लेश अनुभव कर सकती है जितना आनन्द। जब कि मस्तिष्क पर किसी दुर्घटना का आघात पहुंचता है, वा चित्त रोग और दुःस्वप्नों से विचलित हो जाता है तब कल्पना उन्मादकारक और उदासीन भावों से उपप्लुत होजाती है और अपने ही निर्मित सहस्रों भीषण आकारों से स्वयं भयभीत होती है।

प्रकृति में कोई दृश्य ऐसा क्लेशकर नहीं है जैसा एक व्यग्र मनुष्य का जब कि उसकी कल्पना व्यथित और उसकी सारी आत्मा व्यस्त और आकुल रहती है। बाबिलन भी अपनी उजाड़ अवस्था में

ऐसा करुणोत्पादक नहीं है। पर इस दुःखदायी प्रसंग को मैं छोड़े देता हूं। मैं अब उपसंहार की भांति केवल यही विचार करूंगा कि यह शक्ति परमात्मा को मनुष्य की आत्मा के ऊपर कितना अधिकार देती है और हम एक कल्पना ही से किस सीमा तक का सुख और दुःख प्राप्त कर सकते हैं।

हम पहिलेही देख चुके हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की कल्पना के ऊपर कितना प्रभाव रखता है और किस सुगमता के साथ वह उसके भीतर तरह तरह के स्वरूप ले जाता है। विचार तो कीजिए कि कितनी बड़ी शक्ति उस जगदीश्वर में स्थित होगी, जो कल्पना पर प्रभाव डालने की सब रीतियों को जानता है, जो उस में जिन जिन भावों का चाहे सञ्चार कर सकता है और उन भावों में जिस मात्रा तक का भय वा आनन्द चाहे भर सकता है। वह बिना शब्दों की सहायता ही के चित्त में स्वरूप उद्दीपित कर सकता है और बिना पिंड वा बाहरी पदार्थों के ही ऐसे दृश्य हमारे सामने ला सकता है, जो नेत्रों को प्रत्यक्ष जान पड़ते हैं। वह कल्पना को ऐसी सुन्दर और चमत्कारिणी भावनाओं से मोहित कर सकता है, अथवा उसको ऐसे ऐसे कराल भूतों और प्रेतों से सता सकता है कि हम मृत्यु की बाट जोहने और जीवन को एक बोझ समझने लगते हैं। सारांश यह कि वह कल्पना को इतना आनन्दित वा क्लेशित कर सकता है, जितना किसी एक जीव के निमित्त स्वर्ग वा नर्क बना देने के लिये दरकार होता है।

मङ्गल ग्रह।

[पण्डित अच्युतप्रसाद द्विवेदी बी० ए० लिखित।]

यह नीला आकाश, जिसे हम लोग रात्रि में तारात्रों से जड़ा हुआ देखते हैं बड़ाही विचित्र है। विज्ञान तथा ज्योतिषशास्त्र से जाना गया है, कि कितने तारे आकाश में ऐसे हैं कि जिनका प्रकाश सृष्टिकाल से आज तक पृथ्वी पर नहीं पहुंचा है। बहुत से तारे, जो पृथ्वी पर से छोटे दिखाई देते हैं, वस्तुतः छोटे नहीं हैं। इनमें से कितने तारे हम लोगों के सूर्य से भी आकार में बड़े और अधिक प्रकाशवान हैं। पृथ्वी से अधिक दूर होने के कारण उनका प्रकाश पृथ्वी पर बहुतही कम पहुंचता है। हम लोगों के सूर्य के चारो ओर जैसे ग्रह और उपग्रह घूमते हैं, उसी प्रकार इन तारों के चारो ओर भी ग्रह और उपग्रह घूमते हैं। ज्योतिष-सिद्धान्त में सब से बड़े और प्रकाशवान तारे को सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वालों को ग्रह तथा इन ग्रहों के चारो ओर घूमनेवाले उपग्रहों को एक संप्रदाय (System) मानते हैं। इसीलिये हम लोग अपने सूर्य, और उसके चारो ओर घूमनेवाले ग्रह, तथा इन ग्रहों के चारो ओर घूमने वाले उपग्रहों को सूर्य-संप्रदाय (Solar System) के नाम से पुकारते हैं। हमारे सूर्य-संप्रदाय में भारतवर्ष की गणना के अनुसार ७ ग्रह हैं, पर यूरोप में सूर्य को छोड़कर उसके चारो ओर घूमने वाले ८ ग्रह हैं। भारतवर्ष की गणना के अनुसार सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, शनैश्चर, राहु और केतु ग्रह हैं। यूरोप के मत से सूर्य के, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, उरेनस और नेपचून उपग्रह हैं। अर्थात् ये सम्पूर्ण ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। भारतवर्ष में चन्द्र, राहु और केतु को भी ग्रह मान लिया है, जोकि सिद्धान्त की रीति से ठीक नहीं जान पड़ता है। चन्द्र ग्रह नहीं है, क्योंकि नवीन ज्योतिष-सिद्धान्त के मत से ग्रहं उसे कहते हैं जो किसी सूर्य के चारो ओर घूमे और सर्वदा उससे प्रकाश पाया करे। वास्तव में चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता

और पृथ्वी उसके साथ सूर्य की परिक्रमा करती है; इसलिये चंद्र को ग्रह नहीं, पर पृथ्वी का उपग्रह कहना चाहिए। राहु और केतु, जिन्हें भारतवर्षवाले ग्रह मानते हैं, वस्तुतः कोई तारे नहीं हैं। भारतवर्ष के ज्योतिषशास्त्र में जैसे और ग्रहों की गति इत्यादि निकालने की रीति दी गई है, वैसी कोई भी रीति इन दो ग्रहों के विषय में नहीं दी गई है। केवल चन्द्र के पात-गणित ही से इन दोनों अदृश्य ग्रहों की गणना होती है; इसलिये जो कुछ गणना इसके विषय में की जाती है, वह वस्तुतः चन्द्र-पात गणनाही है; और ये ग्रह अदृश्य रूप से चन्द्र-पातही के साथ साथ घूमा करते है। ऊपर लिख आए हैं कि सूर्य के ८ ग्रह हैं; इन्हीं ग्रहों में से मङ्गल भी एक ग्रह है, जो सूर्य की परिक्रमा करता है और उसीसे प्रकाश पाता है।

आकाश में कभी पूर्व और कभी पश्चिम दिशा में रात को दीए की टेम की भाँति लाल रङ्ग का जो तारा दिखाई देता है, वही मङ्गल ग्रह है। भट्टोत्पल ने अपनी बृहत्–संहिता की टीका में पराशर के वचनानुसार इस ग्रह की उत्पत्ति यों लिखी है कि पहिले जब ब्रह्मा ने अपने हृदय में सृष्टि के उत्पन्न करने की इच्छा की तो क्रोध से अपने तेज को अग्नि में हवन किया। यह तेज अग्नि के साथ पृथ्वी पर पड़ कर पृथ्वी के सब गुणों और तेजों के साथ एक पिण्ड की आकृति में उत्पन्न हुआ और यही पिण्ड मङ्गल ग्रह है। पृथ्वी पर अग्नि के साथ इस तेज के पड़ने से इस ग्रह की उत्पत्ति हुई है इसीलिये इस ग्रह का नाम भारतवर्ष में भौम पड़ा है। ब्रह्मा के नियोग से यह ग्रह शशि–मण्डल में कभी उलटा और कभी सीधा चल कर संहिताकारों के मत से शुभाशुभ फल देता है। उलटी गति को ज्योतिष सिद्धान्त में वक्र–गति कहते हैं।

बराहमिहर ने अपनी संहिता में इस ग्रह के पांच मुख नियत किए हैं और इन मुखों के नाम उष्ण, अश्रुमुख, सर्पमुख, रुधिरानन और असिमुसल कहे हैं। ये भिन्न नाम ग्रह के भिन्न भिन्न राशि पर जाने और उसके शुभाशुभ फल के कारण रक्खे गए हैं। अर्थात् जिस नक्षत्र में ग्रह उदय होता है, उस नक्षत्र से ७, ८, और ९ नक्षत्र तक ग्रह का नाम उष्ण-मुख है। ऐसे अवसर पर यह ग्रह संहिताकारों के मत से लुहार, सुनार इत्यादि; जिनकी जीविका अग्नि से है, उनके

लिये हानिकारक है। १०, ११, और १२ वें नक्षत्र तक ग्रह का नाम अश्रु-मुख है, और इसका फल संसार पर यह होता है कि संपूर्ण रस बिगड जाते हैं और पानी नहीं बरसता है। १३वें और १४वें नक्षत्र में ग्रह का नाम सर्प-मुख है और इसका फल दांत वाले पशुओं, सर्पों और जङ्गल के जन्तुओं के लिये हानिकारक होता है, पर अन्न अच्छा पैदा होता है। १५वें, और १६वें नक्षत्र में ग्रह का नाम रुधिरमुख है, और इसका फल यह है कि संसार में भयङ्कर मुखरोग पैदा होते हैं और अनाज अच्छा उत्पन्न होता है। १७ वें और १८वें नक्षत्र में मङ्गल का नाम असिमुसल है, जिसका फल यह है कि प्रजा चोरों के भय से दुखी रहती है और लड़ाई होने की संभावना रहती है। ऊपर जो ग्रह के नाम तथा उनके कारण फल लिखे गए हैं, वे उस समय के हैं, जब मङ्गल की गति वक्र होती है।

यदि यह पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी में उदय होकर अस्त हो जाय तो बड़े भारी विघ्न होने की आशङ्का तीनों लोक में होती है। श्रवण में मङ्गल यदि उदय होकर पुष्य में वक्र हो जाय तो राजा के लिये हानिकारक होता है। यदि मङ्गल मघा नक्षत्र में विक्र गति होकर, उसी नक्षत्र पर फिर न आवे तो पाण्ड्य राजा के लये हानिकारक होता है, लड़ाई होती है और वर्षा नहीं होती। यदि यह मघा और विशाखा नक्षत्रों में जाकर फिर मघा नक्षत्र पर न आवे तो दुर्भिक्ष और क्षुधा का भय होता है। यदि रोहिणी के योग-तारा को भेद करे तो महामारी होती है, इत्यादि-अनेक शुभाशुभ फल संहिताकारों ने अपनी अपनी संहिता में लिखे हैं।

भारतवर्ष तथा यीस के ज्योतिष-सिद्धान्त को परस्पर मिलान करने से समझ पड़ता है कि दोनों देशों में किसी न किसी समय बड़ाही घनिष्ट संम्बन्ध रहा होगा। दोनो देशों का ज्योतिष-सिद्धान्त प्रायः एकही है। इस विषय पर यदि ध्यान देकर विचारा जाय तो दोनो देशों के सिद्धान्तों की समता प्रगट होती है। युरोप में बहुतों का मत है कि भारतवर्ष का ज्योतिष-सिद्धान्त प्रायः यीस के ज्योतिष-सिद्धान्त से लिया गया है। प्रमाण में यूरोपवाले सूर्य सिद्धान्त को देते हैं, जो भारतवर्ष में ज्योतिष की सबसे पुरानी

पुस्तक है; और उसके कर्त्ता यवनाचार्य्य को यीस देश का रहने वाला बताते हैं। यहीं तक नहीं, वरन उन लोगों ने यह भी सिद्ध किया है कि यवनाचार्य्य या तो हीरो वा हिरोडेटस था। जो कुछ हो, पर यहों के विषय में यूरोप से पहिले भारतवासियों ही को ज्ञान हुआ है। ज्योतिष–वेदाङ्ग से स्पष्ट है कि यहों के विषय में भारतवासी बहुत कुछ वेदही के समय से जानते चले आते हैं। यदि कोई यह कहे कि ज्योतिष–वेदाङ्ग वेद से बहुत पीछे बना है, तो भी वेद के प्रमाण से सिद्ध है कि यहों का ज्ञान भारतवासियों का वैदिक काल से चला आता है। यूरोप में वस्तुतः पहिले पहल यीसही ऐसा देश था, जहां से प्राय: सब प्रकार की विद्याएं निकली हैं। मङ्गल यह का भी यूरोप में पहिले पहल ज्ञान यीसवासियों ही के द्वारा हुआ है। यीस देश के चरवाहों ने पहिले इस यह को देखा और आकाश में इसकी स्थिति बदलने देखकर इसका नाम घूमने वाला अर्थात् वानडर्र (Wanderer) रक्खा था। चिरकाल तक यीस में यही नाम प्रसिद्ध था। पीछे से जब ज्योतिषियों का इस ओर ध्यान झुका तो उन्होंने इसे यह करके यहण किया। पहिले पहल जिस ज्योतिषी ने इसे यह समझा था, उसका नाम टालमी था। यह वही टालमी है कि जिसका सिद्धान्त भारतवासियों की भांति है; अर्थात् उसका मत था कि पृथ्वी स्थिर है और सब यह उसके चारों ओर परिक्रमा करते हैं। भारतवर्ष तथा पुराने यीक मत में मङ्गल युद्ध का देवता माना गया है। कदाचित् यह के लाल रङ्ग होने के कारण यह नाम पड़ा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। थोड़ा सा वृत्तान्त संहितानुसार ऊपर के लेख में दिया गया है। अधिक इस विषय में लिखने से कदाचित मेरी समझ में व्यर्थ लेख बढ़ेगा।

फलित शास्त्र में यह यह क्षत्रियों का प्रधान देवता माना गया है। इसीसे यदि क्षत्रिय मङ्गलवार को क्षौर करावे तो उसको दोष नहीं होता। मङ्गलही एक ऐसा यह है कि जिसकी गणना भारतवर्ष के ज्योतिषियों ने भिन्न भिन्न रूप से की है। ब्रह्मगुप्त ने केवल मङ्गलही के लिये अर्थफलसंस्कार और असकृद्बुधि लिखी है। भास्कर ने भी इसकी गणना ब्रह्मगुप्तही की रीति से की

है। पर तिस पर भी मङ्गल की गणना अभी तक अशुद्ध ही है।

यदि सूर्य को एक गोले के समान मानें, जिसके व्यास का मान दो फुट हो, तो पृथ्वी बड़े मटर के तुल्य, मङ्गल छोटे मटर के समान, और चन्द्र सरसों के बराबर होगा। अर्थात् रवि को काट कर भूमि के तुल्य गोले बनाए जांय तो भूमि के ऐसे १२,५१,२७५ गोले बनेंगे; और भूमि में चन्द्र के समान ४९ गोले बनेंगे।

साधारण शक्तिवाली दूरबीन से यूरेनस और मङ्गल में कोई विचित्र बात वेध-कर्ता के उत्साह बढानेवाली नहीं दिखाई देती। शुक्र में साधारण यन्त्र से भी उसके विचित्र प्रकाश से एक अद्भुत शोभा दिखलाई पड़ती है। शनैश्चर में सब ग्रहों से बढ़कर चमत्कार, उसके चन्द्र के समान उपग्रहों तथा उसके वलयाकार कटिबद्ध के कारण दिखाई पड़ता है। अधिक शक्तिवाली दूरबीन से भी मङ्गल के पृष्ठ पर की वस्तु देखने के लिये वेध में बहुत ही निपुण होना चाहिए। यद्यपि इसकी पृष्ठस्थ वस्तुओं के देखने में अति कठिनाई है, तथापि इसकी स्थिति आकाश में ऐसी है कि जिसके कारण इसका वेध बहुत ही सरल रीति से हो सकता है।

मङ्गलही एक ऐसा ग्रह है कि जिसका ठीक ठीक वृत्तान्त ज्ञात होने से कितनी ही ज्योतिषशास्त्र की पुरानी कल्पनाओं की परीक्षा होकर नई बातें निकली हैं। ज्यों ज्यों इस ग्रह के विषय में ज्ञान बढ़ता जायगा, त्यों त्यों और नवीन सिद्धान्त निकलेंगे। इसी कारण प्राचीन काल से ज्योतिषियों का मन इस ग्रह की ओर झुका है। टाइकोब्रेही इसकी गति को आकाश में बराबर देखता रहा। केपलर ने इसी ग्रह के बल से टालमी की पुरानी कल्पना को अशुद्ध ठहराया, अर्थात् केपलर ने सिद्ध किया कि पृथ्वी के चारो ओर सब ग्रह नहीं घूमते, पर पृथ्वी और सब ग्रहों के साथ सूर्य की परिक्रमा करती है। भारतवर्ष में आर्यभट्ट को छोड़ कर प्रायः सभी ज्योतिषी टालमी ही की कल्पना मानते चले आए हैं। अर्थात् पृथ्वी स्थिर है और सब ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। आर्यभट्ट ने केवल पृथ्वी में दैनन्दिनी गति अर्थात् अपनी कील पर

२४ घंटे में एक बार घूम आना लिखा है। मङ्गलही के आधार से केपलर ने यह भी सिद्ध किया कि ग्रह सूर्य के चारो ओर वृत्ताकार कक्षा में नहीं घूमते, बल्कि दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में घूमते हैं। न्यूटन (Newton) को भी इसी ग्रह के बल से पहिले पहल आकर्षण सिद्धान्त का ज्ञान हुआ। निदान इसी प्रकार और और भी ज्योतिषी आज तक इसे वेध कर कर नई बातों का पता लगाते हैं।

मङ्गल प्रति पन्द्रहवें वर्ष पृथ्वी के अत्यन्त निकट होकर सन्ध्या समय पूर्व दिशा में उदय होता है और रात्रि भर रह कर सूर्य्योदय काल में पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है, प्रायः शुक्र और चन्द्र को छोड़ दूसरे ग्रह पृथ्वी के इतने समीप नहीं आ जाते, जितना कि मङ्गल। ऐसे अवसर पर मंगल बहुतही प्रकाशवान दिखाई देता है और वेध भी भली भांति हो सकता है, क्योंकि वेध-कर्त्ता सन्ध्या से प्रातःकाल तक जितनी बेर चाहे, उतनी बेर अति निकटस्थ मङ्गल को देख सकता है। इस समय मङ्गल का वह भाग, जो पृथ्वी पर से दिखाई पड़ता है, मङ्गल को सूर्य से ६ राशि के अन्तर पर रहने से बहुत ही प्रकाशवान रहता है। नीचे जो कुछ वृत्तान्त लिखा जाता है, वह प्रायः ऐसेही समय में मङ्गल के वेध से जाना गया है।

कभी कभी ऐसा होता है कि ग्रह का सूर्य से ६ राशि का अन्तर दो वर्ष में दो बेर हो जाता है। जैसा कि सन् १८६० और १८६२ ईस्वी में हुआ था। यह ६ राशि का अन्तर, अर्थात् ग्रह का सन्ध्या समय में उदय होना और रात्रि भर रह कर सूर्योदय काल में अस्त होना, ७७९—८३६ दिन में होता है; परन्तु पृथ्वी के अत्यन्त निकट होकर यह मङ्गलोदय प्रति पन्द्रहवें ही वर्ष पर होता है।

मङ्गल और ग्रहों की भांति दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य के चारो ओर ६८६·९४ दिन में घूम आता है। सूर्य से सबसे अधिक दूरी अर्थात् कर्ण १५४,५००,००० मध्यम-अन्तर १४१,५००,००० मील, और सबसे परमाल्पान्तर अर्थात् परमाल्प कर्ण १२९,५००,००० और इन दोनों के योगार्ध तुल्य मध्यम-कर्ण १४१,५००,००० मील है। मङ्गल की कक्षा पृथ्वी की कक्षा अर्थात् क्रान्ति-वृत्त से १°-५१′-५″ झुकी हुई है।

be an emblem of the waters of knowledge, which, we all hope, will flow from this building."

(३) पंजाब की गवर्मेंगट ने वैज्ञानिक कोश की ५० और बंगाल गवर्मेंगट ने ४० प्रति खरीदनी स्वीकार की है।

(४) सभा हिन्दी में शीघ्र-लेखन-प्रणाली (short hand writing) पर एक पुस्तक लिखवाने का उद्योग कर रही है।

(५) पण्डित रामनारायण मिश्र का लिखा हुआ जापान का संक्षिप्त इतिहास छपकर प्रकाशित हो गया। उसका मूल्य ।≈) रक्खा गया है।

(६) सभा ने बाबू माधव प्रसाद को अपनी पुस्तकों का सोल एजेंगट नियत किया है। आगे से सब पुस्तकें उनके पास पत्र लिखने से मिल सकेंगी। सभा की इच्छा है कि काशी में हिन्दी पुस्तकों की एक ऐसी दुकान हो जाय जहां से हिन्दी की सब पुस्तकें मिल सकें। सभा को विश्वास है कि हिन्दी के लेखक और प्रकाशक इस कार्य में सहायता देंगे। बाबू माधव प्रसाद का पता "बुक एजेंगट, नागरीप्रचारिणी सभा, पुस्तक कार्यालय, बनारस सिटी" है।

(७) संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंगट ने आगामी ५ वर्षों के लिये ३००) रु० वार्षिक सभा को ग्रन्थमाला के प्रकाशित करने में सहायतार्थ देना स्वीकार किया है। आगे से ग्रन्थमाला की प्रति संख्या ८० पृष्टों की होगी।

(८) महाराज अलवर ने सभा की प्रार्थना पर अपने राज्य में हिन्दी प्राचारार्थ विचार करने का वचन दिया है।

(९) सभा की पत्रिका के साथ आगे से पुस्तकों के विज्ञापनों के अतिरिक्त और किसी प्रकार के विज्ञापन न बाटे जायंगे।

(१०) सभा ने कलकत्ते की साहित्य सभा से सहायक सभाओं का सम्बन्ध स्थापित किया है।

(११) सभा ने सर्वसाधारण के लाभार्थ भिन्न भिन्न विषयों पर सरल वक्तृताएं करवाने का प्रबन्ध किया है। अब तक निम्नलिखित विषयों पर वक्तृता हुई हैं-सूर्य, हिन्दी भाषा और उसका साहित्य, भाषा शास्त्र के मूलतत्व।

(१२) महाराज ग्वालियर ने सभा का संरक्षक होना स्वीकार किया है।

(१३) सभा का एक डेपुटेशन २४ नवम्बर को लाहौर गया था। वहां चार वक्तृताएं हिन्दी सम्बन्ध में हुईं और ८४८) रु० सभा के लिये चन्दा हुआ।

नवीन अधिकारप्राप्त सभासद।

४ फ़रवरी १९०१-ठाकुर मेघनाथ बानर्जी, काशी।

७ अप्रैल १९०२-बाबू आनन्द स्वरूप, वकील, कानपुर।

९ मार्च १९०३-पंडित रामावतार पांडे, एम॰ ए॰, काशी।

३० जनवरी १९०४-बाबू सुरेन्द्रनाथ वर्म्मा, इलाहाबाद।

२५ जून १९०४-बाबू संकटा प्रसाद राय, काशी।

२७ अगस्त १९०४- (१) बाबू शगुनचन्द, काशी (२) बाबू अमरनाथ बानर्जी, काशी (३) पंडित जानकी वल्लभ, काशी (४) पंडित उमाकान्त शुक्ल, काशी (५) बाबू गोकुल दास मारवाड़ी, काशी (६) बाबू वैद्यनाथ गुप्त, मिर्जापुर (७) बाबू कामता प्रसाद, जि० झांसी (८) लाला मुंशी राम, कांगड़ी (९) बाबू रामकृष्ण दास गुप्त, मिर्जापुर।

२४ सितम्बर १९०४- (१) बाबू रघुनाथ दास, काशी (२) पंडित जगनाथ मिश्र, बी॰ ए॰, काशी (३) मिस्टर ए० सी० मुकर्जी, काशी (४) बाबू माता प्रसाद, काशी (५) पंडित महादेव प्रसाद, इलाहाबाद (६) ठाकुर शंकर सिंह भूप जी, मुरादाबाद (७) बाबू रामकृष्ण गुप्त, इटावा (८) श्रीमती सरस्वती बाला पाठक, मिर्ज़ापुर।

२९ अक्तूबर १९०४- (१) बाबू मुरलीधर, काशी (२) बाबू ठाकुर दास, काशी (३) पंडित बैजनाथ मिश्र, बी॰ ए॰, काशी (४) पंडित लोकानन्द गर्ग, देहरादून (५) बाबू हरप्रसाद सुलतांपुर (६) मिस्टर निज़ाम शाह, रायपुर (७) बाबू भगवती सरन सिंह, जि० बनारस (८) पंडित प्यारे लाल, रांची।

२ नवम्बर १९०४-मुंशी संकटा प्रसाद, काशी। (शेष आगे)

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक-श्यामसुन्दर दास, बी. ए.

सहकारी सम्पादक-किशोरी लाल गोस्वामी

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों ले करहु, भाषा मांहि प्रचार॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

हरिश्चन्द्र।

भाग ६ } मार्च सन् १९०५ ई० { संख्या ३

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)

वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस

मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 15th March 1905.

सभा सम्बन्धी समाचार।

(१) सभा के मासिक अधिवेशन इस प्रकार हुए।

३१ दिसम्बर १९०४–१० महाशय नवीन सभासद चुने गए और अनेक पुस्तकें स्वीकार की गईं। बाबू कालिदास ने उपमंत्री के पद से इस्तीफ़ा दिया। उनके स्थान पर बाबू जुगल किशोर उपमंत्री और पण्डित रामावतार पांडे प्रबन्धकारिणी सभा के सभासद चुने गए।

२८ जनवरी १९०५–१८ महाशय नवीन सभासद चुने गए। सभा के सभासद बाबू अयोध्या प्रसाद, बाबू बालकृष्ण दास और बाबू रामशंकर के देहान्त होने पर शोक प्रगट किया गया। अनेक पुस्तकें स्वीकार हुईं।

२५ फ़रवरी १९०५–२६ महाशय नवीन सभासद चुने गए। दो सभासदों का इस्तीफ़ा स्वीकार किया गया और अनेक पुस्तकें स्वीकृत हुईं।

(२) सभा ने पण्डित गौरीशंकर भट्ट को उनके लिपिबोध के लिये पारितोषिक देकर सम्मानित किया है।

(३) सभा ने तीन वर्ष के लिये श्रीनगर हाई स्कूल के विद्यार्थियों में से सब से उत्तम नागरी लिखने वालों को ५) ३) और २) रु० के तीन पारितोषिक देना स्वीकार किया है।

(४) एशियाटिक सुसायटी बंगाल ने अपने द्वारा की हुई हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की नोटिस सम्पादित करने के लिये सभा से प्रार्थना की है और सभा ने उसे स्वीकार किया है।

(५) सन् १९०५ के चांदी के पदक के लिये ये विषय चुने गए हैं।

साधारण (विद्या) विषय।

किण्डर गार्टन की शिक्षा प्रणाली।

अकबर के राज्यकाल में हिन्दी साहित्य।

सन् १८७७ ईसवी में हाल साहेब ने इसके दो उप-ग्रहों को वेध से जाना। उनका नाम डामास (Deimos) अर्थात् चण्ड, और फोवास (Phobos) अर्थात् मुण्ड रक्खा। ये दोनों नाम चण्ड और मुण्ड मङ्गल को युद्ध का देवता समझ कर रक्खे गए हैं क्योंकि युद्ध के देवता के येही दोनों मुख्य दूत हैं।

चण्ड मङ्गल से १४,६०० मील और मुण्ड ५८०० मील की दूरी पर है। चण्ड ३० घंटे १८ मिनिट और मुण्ड ७ घंटे ३९ मिनिट में मङ्गल की प्रदक्षिणा करता है। मङ्गल अपनी कील पर २४ घंटे और ३९ मिनिट में एक बार घूम आता है। इस लिये मुण्ड मङ्गल ग्रह से भी अधिक वेग से मङ्गल ग्रह के चारो ओर घूमता है। इसी कारण और उप-ग्रहों की भांति मुण्ड पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होता हुआ नही दिखाई पडता। मुण्ड मे यह भी विचित्रता है कि वह दो दिन तक आकाश में एकही समय पर बराबर क्षितिज पर रहता है। सन् १८७७ में पिकरिङ्ग साहेब ने इन उपग्रहों के व्यास का मान निकाला है, अर्थात् चण्ड का व्यास १० मील के लगभग और मुण्ड का ३६ मील के लगभग है। व्यास के मान से स्पष्ट है कि ये उपग्रह बहुतही छोटे हैं। मुण्ड जब ग्रह के अति निकट आ जाता है तो वह ठीक चन्द्र के समान घटता बढता दिखाई देता है। दूसरे समय ये दोनों उप-ग्रह तारे की भांति दिखाई पडते हैं।

मङ्गल के व्यासमान में बहुत ही विवाद है। भारतवर्ष के ज्योतिषियों की गणना से व्यासमान ४००० मील के लगभग है। माडलर साहेब के मत से ४०७० मील है। बहुत से ज्योतिषी व्यास का मान इससे भी अधिक बतलाते हैं। परन्तु ऊपर दिए हुए मान उस समय के निकाले हुए हैं जब कि सूर्य की दूरी का मान ठीक ठीक नहीं जाना गया था। नवीन गणना से इसके व्यास का मान ४१५० और ४००० मील के मध्य में आता है। फ्लागस्टाफ (Flagstaff) के वेध से अब सिद्ध हो गया कि व्यासमान ४२-१५ मील है। यह मान बहुतही ठीक ज्ञात होता है और प्रायः आज कल के गणितज्ञ इसी मान को अपनी गणना में ग्रहण करते हैं।

मङ्गल का परिमाण (mass) अर्थात् मङ्गल मे कितनी (matter) मात्रा है निकालना साधारण नहीं है। उन्हीं ग्रहों का परिमाण सहज में निकल सकता है जिन्हें एक वा अधिक उपग्रह हों। उपग्रह न रहने से ग्रह का परिमाण निकालना बहुत ही कठिन है। किसी वस्तु का परिमाण उसके खिचाव (Pull) से ज्ञात होता है। आकर्षण सिद्धान्त से दूरी का मान जान कर खिंचाव का मान सहज मे निकल आता है। यदि किसी ग्रह का दूसरे ग्रह वा उप-ग्रह सम्बन्धी खिंचाव, खिंचाव से उत्पन्न हुई गति, और दोनो ग्रहों का वा ग्रह और उप-ग्रह का अन्तर ज्ञात हों तो परिमाण का लाना बहुत ही लाघव है। उप-ग्रह से ये सब बातें सहज में ज्ञात हो सकती हैं इसलिये उपग्रह वाले ग्रहों का परिमाण सहज में निकल सकता है। उप-ग्रह न रहने से ग्रह का परिमाण, ग्रह का दूसरे ग्रह पर खिंचाव, और खिंचाव से उत्पन्न हुई गति को जान कर निकाला जाता है। ठीक ठीक परिमाण जानने के लिये गति वेग और ग्रह के ऊपर अन्य ग्रहों का खिंचाव अवश्य व्यक्त होना चाहिए। इस विधि से भी आपेक्षिक गति (Relative velocity) ज्ञात होती है। आकाश में कोई स्थान स्थिर न रहने से नापने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। यदि मान लें कि एकही वस्तु का दूसरे पर परस्पर खिंचाव है तो कठिनाई यह पडती है कि दोनों के परिमाण पृथक पृथक नहीं ज्ञात होते किन्तु दोनो परिमाणों का योग ज्ञात होता है। इसलिये यदि एक का परिमाण बहुत छोटा हो तो अटकल से बडे परिमाण वाले ग्रह का परिमाण जान सकते है। यह परिमाण, दोनो परिमाणों के योग से कुछ न्यून होगा। यदि सूर्य संप्रदाय (Solar system) से मङ्गल का परिमाण निकालें तो वहाँ पर भी यही आपत्ति उपस्थित हो जाती है, कि ग्रह के बदले सूर्य ही का परिमाण ज्ञात होता है। ऊपर के कारणों से उन ग्रहों का परिमाण जिन्हें उप-ग्रह हैं सहज में निकल सकता है।

मङ्गल के जब कोई उपग्रह न जाने गए थे तब उसके परिमाण का मान सूर्य के परिमाण से $\frac{१}{३००१००}$ से लेकर $\frac{१}{२०००००}$ गुना निश्चय

किया गया था । इसके अत्यन्त दो छोटे उप-ग्रहों के ज्ञात होने पर मान सूर्य के परिमाण से $\frac{१}{३०६३५०}$ गुना निकला है । यह मान पृथ्वी के परिमाण से $\frac{१०}{६०}$ गुना है ।

परिमाण ज्ञात होने पर मङ्गल की मध्यम घनता, (Average Density) इसके घन फल मे परिमाण का भाग देने से सहज में निकल सकती है । गणना से यह मान पृथ्वी की घनता से $\frac{३८}{१००}$ गुना है । इसलिये मङ्गल के पृष्ठ पर किसी वस्तु का बोझ पृथ्वी की अपेक्षा $\frac{३८}{१००}$ गुना कम होगा । अर्थात् पृथ्वी पर जिस वस्तु का बोझ १५० सेर है उस वस्तु का मंगल पर केवल ५७ सेर बोझ होगा इसलिये यदि मङ्गल पर मनुष्य हों तो उनका कार्य्य हम लोगों के कार्य्य की अपेक्षा लगभग तृतीयांश परिश्रम मे हो सकता है ।

वेध करके देखा गया है कि मङ्गल का पिण्ड कभी गोल और कभी कुछ गोल का भाग कटा हुआ दिखाई देता है । वह कटा हुआ भाग ठीक चन्द्रमा की तरह घटा बढा करता है । इससे यह सिद्ध हो गया कि मङ्गल में स्वयम् प्रकाशवान होने की शक्ति नहीं है और पृथ्वी की कक्षा (orbit) के ऊपर वह सूर्य की परिक्रमा करता है अर्थात् इसकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा से बड़ी है । यदि सूर्य से मङ्गल के केन्द्र तक एक रेखा खींचें और मङ्गल को केन्द्रगत एक ऐसे धरातल से काटें जो इस रेखा पर लम्ब हो तो यह धरातल मङ्गल के आधे प्रकाशवान् भाग को एक ओर और आधे अप्रकाशवान् भाग को दूसरी ओर कर देगा । इसी प्रकार यदि पृथ्वी के केन्द्र से मङ्गल के केन्द्र तक रेखा लगा दें और मङ्गल के केन्द्रगत एक ऐसे धरातल से मङ्गल को काटें जो इस रेखा पर लम्ब हो, तो यह धरातल मंगल के बिम्ब का दो भाग करेगा । एक भाग वह जिसे हमलोग देख सकते हैं और दूसरा वह जिसे हम लोग नहीं देख सकते । परन्तु ये दोनों रेखाएं अर्थात् सूर्य से मंगल के केन्द्र तक और पृथ्वी के केन्द्र से मंगल तक सर्वदा आपस में मिल कर एक नहीं हो जातीं,

इसीसे पृथ्वीवासी 'नलिका-यन्त्र' से मंगल को चन्द्रमा के समान सप्तमी से पूर्णिमा की भांति बढते देखेंगे।

ह्यूगेनस (Hughens) ने पहिले पहल, २८ नवेम्बर सन् १६५९ ईसवी के ७ बजे रात को वेध कर मंगल का एक चित्र लिया था। इस चित्र के प्रकाश होतेही अन्य ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर झुका। जो जो स्थान, उस समय चित्र में उतरे थे उनका नाम वेधकर्त्ता के आदरार्थ ह्यूगेनस सागर रक्खा गया। उपरोक्त साहेब ने यह सिद्ध किया कि मंगल अपने अक्ष पर २४ घंटे मे एक बार घूम आता है। परन्तु उन्हें इस पर पूरा विश्वास न था। सन् १६६६ ईसवी मे केसानी (Cassani) ने मंगल का अपने अक्ष पर २४ घं० २५ मिनिट मे घूम आना सिद्ध किया। परन्तु अक्ष पर घूमने से दिन और रात होते है इसलिये स्पष्ट है कि मंगल पर पृथ्वी की भांति दिन और रात होते हैं। नवीन वेध से अहोरात्र का मान २४ घं· ३७ मि· २२.७ से· सिद्ध हुआ है। पृथ्वी पर के नक्षत्र दिन (Sideral day) का मान २३ घं· ५६ मि· है अर्थात् मंगल पर का अहोरात्र मान पृथ्वी पर के अहोरात्र मान से ४० मिनिट के लगभग बडा है। मंगल पर का अहोरात्र मान भिन्न भिन्न ज्योतिषियों के मत से भिन्न भिन्न है। हरसल के मत से २४ घं· ३९ मि· ३५ से·। माउलर के मत से २४ घं· ३८ मि· २२.७ से·। प्रोफेसर केसर के मत से २४ घं· ३७ मि· २२.६ से· ठीक मान है। प्राकटर के मत से २४ घं· ३७ मि· २२.७३५ से· है। प्राकटर साहेब ने दिन मान निकालने में बडाही परिश्रम कर मीमांसा की है। साहेब ने डावेस, हरसल इत्यादि के लिए हुए मंगल के चित्रों के बल से गणित कर ऊपर लिखे हुए मान को निकाला है। यहाँ पर पूरी मीमांसा देने से केवल लेख बढेगा और दूसरे यह गणित की क्रिया लेख में लानी कथमपि रुचिकर न होगी।

जब किसी भाँति यह सिद्ध होगया कि किसी ग्रह पर दिन रात होते हैं तो उस के ध्रुव और ध्रुव-अक्ष के जानने के लिये ज्योतिषी बडेही उत्सुक होते हैं। क्योँ कि गणना के लिये किसी न किसी स्थान को मूल मानना बहुत ही उपयोगी है।

केवल उपयोगीही नहीं किन्तु इनके स्थिर किए बिना गणनाही करनी असंभव है । पृथ्वी को भी वस्तुतः कोई अक्ष नहीं है कि जिस पर वह दिन रात में एक बेर घूम आवे पर गणित के लिये एक अक्ष मान लिया गया है जिसको अब भूगोल के पढ़ने वाले भी बिना शङ्का समाधान किए मान लेते हैं । इसी प्रकार मङ्गल ग्रह का भी अक्ष स्थिर करना गणित के लिये बहुतही उपयोगी है। पृथ्वी पर से मङ्गल को देखने से मङ्गल अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है। इसी रेखा को ज्योतिष सिद्धान्त के जाननेवालों ने मङ्गल का अक्ष मान लिया है, अर्थात् मङ्गल का ध्रुव-अक्ष, अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है । जब कि ग्रह की ध्रुव-यष्टि स्थिर हो गई तो उसके ध्रुवों का भी स्थान अवश्य विदित होना चाहिए क्योंकि ध्रुव-यष्टि का छोर ध्रुवोंहीं पर जाकर अन्त होता है । पहिले पहल मरालडी साहेब ने मङ्गल के ध्रुवीय भागों का पता लगाने के लिये वेध किया था। वेध से बडाही आश्चर्यजनक कौतुक दिखाई पडा। साहेब ने देखा कि कुछ दूर तक मङ्गल के ध्रुव सफेद पदार्थ से ढके हुए हैं । ये सुफेद पदार्थ क्या हैं इसकी मीमांसा आगे चलकर की जायगी । यह सुफेदी उस समय ठीक ऐसी जान पडती थी कि मानों किसी ने ग्रह के ध्रुवों को सफेद खोलिओं से ढक दिया हो। इन सफेद खोलिओं में बडेही विचित्र विचित्र परिवर्त्तन हुआ करते हैं । इन परिवर्त्तनों का ब्योरा स्थान स्थान पर उपयोगी समझ कर किया गया है जिसमें कि ध्रुव-खोली के बारे में कुछ ज्ञान हो जाय। लाघव से ध्रुव की सफेदी का नाम जहाँ आया है वहां पर ध्रुव-खोली शब्द का प्रयोग किया गया है । ऊपर कह आए हैं कि मङ्गल का ध्रुव-अक्ष अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है अर्थात् मङ्गल का विषुवद्वृत्त और मङ्गल की कक्षा से उत्पन्न कोण २५° है । पृथ्वी की ध्रुव-यष्टि भी अपनी कक्षा पर से २३° २४″ झुकी हुई है जिससे ज्ञात होता है कि मङ्गल तथा पृथ्वी की ध्रुव-यष्टि का कक्षा पर का झुकाव परस्पर बहुतही पास पास हैं, अर्थात स्वल्पान्तर से तुल्य है ।

मङ्गल ग्रह की यष्टि का, उसकी कक्षा के धरातल पर के झुकाव तथा अन्य कारण जिनके ऊपर ग्रह के पृष्ठ पर का ऋतुपरिवर्तन निर्भर है उन्हें पहिले पहल हरसल साहेब ने निकाला है। साहेब का मत था कि ग्रह के उत्तरीय भाग में वसन्त ऋतु उस समय होती है जब कि ग्रह ७९°२४″ देशान्तर पर रहता है। उस समय कक्षा का झुकाव २४°४२″ और ग्रह का पृथ्वी की कक्षा से ३०°१८″ झुकाव रहता है। यद्यपि पिता पुत्र हरसल के समान बेध करनेवाले बिरलेही मनुष्य संसार में उत्पन्न हुए हैं पर इस बेध में हरसल ने न जाने क्यों बहुत ही अशुद्ध मान निकाला है। इस अशुद्धि का कारण हरसल स्वयं न था पर जिन यन्त्रों से हरसल ने वेध किया वेही स्थूल थे। इसलिये स्थूल यन्त्र से बेध करने पर जो फल उत्पन्न हुआ वह भी स्थूल ही रहा। हरसल ने जो मंगल चित्र अपने यन्त्र द्वारा लिया है उससे भी स्पष्ट रूप से विदित है कि उसके यन्त्र डिलारू, डाविस, लाकेयिर, और फिलिपस के यन्त्रों से बहुत ही स्थूल थे। हरसल ने ग्रह के चिन्हों ही के परिवर्तन के आधार पर मंगल के पृष्ठ पर के ऋतु का निर्णय किया है जिसका पूरा पूरा ब्योरा फिलासाफिकल ट्रान्ज्याकसन् सन् १७८४ ई० के २४१ पृष्ठ में दिया हुआ है। वस्तुतः चिन्हों के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ग्रह के पृष्ठ पर के ऋतुपरिवर्तन जानने का नहीं है।

ऊपर लिख आए हैं कि अक्ष और कक्षा के झुकाव और अन्य कारणों से किसी ग्रह पर ऋतु का हेर फेर होता है। इन अन्य कारणों में मुख्य ग्रह की कक्षा है। यह ग्रह की कक्षा वृत्त के स्वरूप की नहीं है पर दीर्घवृत्ताकार है। जितनीही बड़ी दीर्घवृत्त की निष्पत्ति होती है उतनाही ग्रह के एक भाग से दूसरे भाग में ऋतुओं में छोटाई और बड़ाई होती है। पृथ्वी पर ऋतु का अन्तर ८ दिन का है अर्थात् उत्तरीय गोलार्ध में जाडा दक्षिणीय गोलार्ध से ८ दिन अधिक होता है और गर्मी ८ दिन कम होती है। पृथ्वी की भांति मंगल-पृष्ठ पर भी ऋतुओं में अन्तर होता है। ज्योतिषियों ने वेध से ७८ दिन ऋतु के अन्तर का मान स्थिर किया है। अर्थात् मंगल-पृष्ठ पर के एक गोलार्ध में जाडा दूसरे गोलार्ध से

७८ दिन अधिक रहता है और गर्मी ७८ दिन कम रहती है। सङ्केत के लिये मंगल को उस भाग को जो सूर्य के अत्यन्त निकट आ जाता है उत्तर और जो भाग सूर्य से सब से दूर रहता है उसे दक्षिण गोलार्ध मान लिया गया है।

	शरद	वसन्त	ग्रीष्म	शिशिर
उत्तर गोलार्द्ध	१४७	१९१	१८१	१४१
दक्षिण गोलर्द्ध	१८१	१४७	१४७	१९१

मंगल के ध्रुव भी पृथ्वी के ध्रुवों की भांति चिपटे हुए हैं। भिन्न भिन्न ज्योतिषियों ने चिपटेपन का मान भिन्न भिन्न निकाला है। हरसल के मत से चिपटे पन का मान $\frac{१}{१६}$ था। यूरोप के नए ज्योतिषियों के मत से वास्तव मान हरसल के मान से न्यून आता है। प्रोफेसर केज़र के मत से $\frac{१}{११४}$ मान निकला है। र्याडक्लिफ (Radcliffe) के वेधालय के मेन साहेब ने सन् १८६२ ई० में $\frac{१}{३६}$ मान निकाला था। पर उपरोक्त साहेब की गणना से ध्रुव पर के चिपटे पन का मान ग्रह के व्यास के चिपटे पन के मान से अधिक आता था। डावेस साहेब ने दो प्रकार की गणना कर मान को निकाला है। साहेब की प्रथम रीति से कुछ भी मान न निकला। दूसरी रीति से उसने केवल यह सिद्ध किया कि व्यास पर का चिपटापन ध्रुव पर के चिपटे पन के मान से न्यून है। वस्तुतः १८६९ ई० तक किसी ज्योतिषी को इस विषय में पूर्ण रूप से ज्ञान न हुआ था। उनका केवल यह सिद्धान्त था कि मान बहुत अल्प है इसलिये वह निकल नहीं सकता। पीछे से ज्योतिषियों ने पूर्व ज्योतिषियों की बात पर ध्यान न दिया और इस विषय की मीमांसा में सदा तत्पर थे। पीछे से जब कि सन् १८७७ ई॰ में ग्रह के दो उपग्रह ज्ञात हुए तब हरमन स्ट्रुन साहेब चिपटेपन के मान निकालने में कृतकार्य हुए। साहेब ने व्यास के चिपटेपन के विषय में केवल इतनाही लिख कर छोड़ दिया है कि व्यास पर का चिपटापन बहुतही न्यून है और उसका मान लाना बहुतही कठिन है। काल पाकर और अच्छी शक्ति वाली दूरबीन बनने से कदाचित् एक न एक दिन इस चिपटेपन का मान भी निकल आवे। ध्रुव

पर के चिपटेपन का मान उपर्युक्त साहेब ने $\frac{१}{१८०}$ गुना व्यास का निकाला है। जिसे साधारण रीति से यों कह सकते हैं कि मङ्गल के ध्रुव २२ मील चिपटे हैं। अर्थात् यदि मङ्गल के आकार का कोई पिण्ड बनाया जाय और उसके ऊपर और नीचे के स्थानों को आरी से काट दिया जाय तो जो स्वरूप पिण्ड का रह जायगा वही स्वरूप ग्रह का भी होगा। अर्थात् ध्रुव पर वृत्त का भाग २२ मील कटा हुआ दिखाई देगा। इसी कटे हुए भाग को चिपटापन कह कर दिखाया गया है।

ऊपर के वर्णन से अब यह स्पष्ट है कि मङ्गल के पृष्ट पर कितनी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें हमलोग इस पृथ्वी पर अपनी आखों से देखते हैं। इसलिये अब मङ्गल पर क्या क्या वस्तु हैं इन का भी पता लगाना सब प्रकार से ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों ने उचित समझा। वस्तुतः इस लेख में कहीं कहीं वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का कल्पना-तरङ्ग इतना बढ़ा चढ़ा है कि जो विज्ञान तथा ज्योतिष के अनभिज्ञ हैं वे कथमपि इस वर्णन पर विश्वास न करेंगे। कितने मनुष्यों के मन में यही कल्पना उठेगी कि जो कुछ ग्रह के विषय में लिखा गया है वह उपन्यास के भांति कल्पना तरङ्ग हैं। परन्तु जिन्हें विज्ञान वा ज्योतिष सिद्धान्त का कुछ भी ज्ञान होगा वेही समझ सकते हैं कि ग्रह के विषय में एक एक बात जानने में ज्योतिषियों तथा वैज्ञानिकों का कितना समय और धन व्यय हुआ होगा। विज्ञान तथा ज्योतिष शास्त्र में दूसरे शास्त्रों अर्थात् दर्शन, न्याय इत्यादि की भांति केवल कल्पना-तरङ्ग नहीं है पर शङ्का होने पर समाधान के लिये जिस वस्तु के विषय में शङ्का हुई हो उसे आंखों के सामने दिखा कर शङ्का करने वाले के हृदय को सन्तुष्ट कर दिया जाता है। क्या किसी पुरुष को पहिले इस बात पर विश्वास था कि विद्युत एक बल है जिसके वेग से रेल इत्यादि चल सकती हैं। पर नहीं अब आखों से कलकत्ते में ट्रामवे चलते देख लोगों के लिये यह एक साधारण बात होगई है। इन बातों के लिखने से मेरा मुख्य अभिप्राय यह है कि कहीं इस लेख के पाठक भी न कह बैठें कि ग्रह के विषय में जो कुछ लिखा गया

है वह सब कल्पना-तरङ्ग है। इसी लिये जहां कहीं इस लेख में कल्पना की गई है वहां पर युक्ति दे दी गई है। जहां कहीं गणित के गहन विषयों की सहायता से किसी कल्पना की उपपत्ति दी गई है वहां पर गणित का देना व्यर्थ समझ केवल दिखा दिया गया है कि गणित से यह बात सिद्ध की गई है। वस्तुतः यह लेख केवल साधारण रीति से ग्रह के वर्णन के लिये लिखा गया है और जान बूझ कर गणित तथा विज्ञान से सिद्ध हुई रीतियां छोड़ दी गई हैं।

ग्रह के विषय में जो कुछ वर्णन ऊपर दिया गया है उससे स्पष्ट है कि मङ्गल के पृष्ठ पर पृथ्वी की भाँति दिन और रात होते हैं और ऋतु में भी परिवर्तन हुआ करता है। इसलिये अब इस बात की भी मीमांसा होनी आवश्यक है कि मङ्गल के पृष्ठ पर जीव बसते हैं, वनस्पति इत्यादि होती है वा नहीं ? वनस्पति और जीव के विषय में केवल इतनाही कहा जा सकता है कि जो जो वस्तुएं जीव और वनस्पति को जीवित रखने के लिये उपयोगी हैं वे ग्रह के पृष्ठ पर हैं वा नहीं। यदि सभी उपयोगी वस्तुओं का ग्रह के पृष्ठ पर होना सिद्ध हो गया तो अवश्य वहाँ पर जीव और वनस्पति के होने का सिद्धान्त स्थिर किया जा सकता है। पृथ्वी पर अब देखना चाहिए कि कौन कौन वस्तुएं जीव और वनस्पति के जीवित रहने के लिये उपयोगी हैं। पृथ्वी पर जल, वायु जीव और वनस्पति के जीवित रखने के लिये मुख्य हैं। इस लिये मङ्गल के पृष्ठ पर मनुष्य इत्यादि जीव और वनस्पति हैं वा नहीं इन के सिद्ध करने के पूर्व दो बातों का सिद्ध करना बहुतही आवश्यक है। अर्थात् मङ्गल के पृष्ठ पर जल और वायु हैं वा नहीं इसकी मीमांसा पहिले की जायगी।

वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का मत है कि प्रत्येक ग्रह प्रारम्भ में सूर्य के समान अग्नि पिण्ड था। प्रत्येक ग्रह अपनी उष्णता को प्रति क्षण बाहर देते देते अपनी तेजोमय अवस्था को न्यून करता चला जाता है अर्थात् अपना तेज बाहर देने से तेज-रहित होता आता है। जितनाही छोटा पिण्ड जिस ग्रह का था उतनीही जल्दी

उसकी तेजोमय अवस्था बीत गई और जिन ग्रहों का पिण्ड बड़ा था उनकी उष्णता बहुत देर में नष्ट हुई है। कितने ऐसे ग्रह हैं जिनकी तेजोमय अवस्था अभी तक वर्त्तमान है। उदाहरण के लिये पाठकों को एक छोटा सा दृष्टान्त देते हैं कि पाठक जब चाहें तब दो वस्तुओं को अग्नि में गरम करें तो देखेंगे कि जितनी ही बड़ी वस्तु होगी उतनेही अधिक काल में वह ठंढी होगी और जितनीही छोटी वस्तु होगी उतनेही अल्प काल में वह ठंढी हो जायगी। इस लिये जो दशा छोटी वस्तु और बड़ी वस्तु की है वही दशा छोटे ग्रह और बड़े ग्रह की है। पृथ्वी, जिस पर हम लोग सुख पूर्वक सोते चलते इत्यादि हैं यह भी एक समय अग्नि पिण्ड थी और इसमें भी सूर्य की भाँति तेज था। पर काल बीतने से इसकी सब उष्णता बाहर निकल गई केवल कुछ कुछ अग्नि भाग पृथ्वी के नीचे रह गया है जो कभी कभी ज्वालामुखी के स्वरूप में बाहर निकल आता है। जब पृथ्वी ऊपर से नीचे तक शीतल हो जायगी तो पृथ्वी पर एक भी ज्वालामुखी का दर्शन न होगा। इतिहास से भी स्पष्ट है कि पहिले पृथ्वी पर जैसे जैसे ज्वालामुखी थे अब वैसे नहीं देखने में आते हैं। मङ्गल भी पृथ्वी की भाँति शीतल हो गया है। यदि मङ्गल में कहें कि वायु नहीं है तो मङ्गल चन्द्रमा के समान मृत (Dead) हो गया होता। अर्थात् चन्द्र पृष्ठ की भाँति मङ्गल-पृष्ठ पर की वस्तुएं जो सहस्त्रों वर्ष पूर्व थीं वे अब तक बिना परिवर्तन के वर्तमान रहतीं। वेध में देखा गया है कि ग्रह के पृष्ठ पर विलक्षण परिवर्तन होते रहते हैं। इस लिये विशेष संभावना है कि मङ्गल के पृष्ठ पर जल और वायु हों। क्योंकि विज्ञान-शास्त्र से विदित है कि बिना जल और वायु किसी वस्तु में विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

ऊपर लिख आए हैं कि इस ग्रह के दोनों ध्रुवों पर सफेद खोलियाँ हैं और उनका नाम लाघव के लिये ध्रुवखोली रक्खा गया है। इन ध्रुव-खोलियों में सर्वदा परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् ये खोलियां कभी बढ़ती हैं और कभी घट जाती हैं। यहां पर इन खोलियों का वर्णन आगे चल कर किया जायगा।

केवल यही कहने की आवश्यकता है कि उनमें परिवर्तन होता रहता है। केवल यही एक परिवर्तन नहीं है किन्तु यह देखा गया है कि मङ्गल के पृष्ठ पर के अंधेरे और प्रकाशवान स्थलों में भी सर्वदा परिवर्तन हुआ करता है। इस परिवर्तन का कारण फ्लागस्टाफ (Flaggstaff) के वेधालय वालों ने ऋतु का हेर फेर सिद्ध किया है। यद्यपि इन दोनों बातों का कारण ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता तथापि यहां यही जानना मुख्य है कि उसके पृष्ठ पर परिवर्तन होते हैं और जब कि ग्रह के पृष्ठ पर परिवर्तन होते हैं तो अवश्य है कि ग्रह पर जल और वायु हैं।

डगल्यास (Douglas) साहेब ने मङ्गल के पूर्वापरीय व्यास (Equitorial Diameter) और ध्रुवीय व्यासों के मान निकालने पर देखा तो कभी कभी पूर्वापरीय व्यास का मान कुछ अधिक आता था। पर ध्रुवों पर के व्यासमान सदा स्थिर रहते थे। निदान साहेब इसके कारण की खोज में लगे और अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि मङ्गल पर वायु है जो कि पूर्वापरीय व्यास पर घनी और प्रकाशवती होकर व्यासमान को कभी कभी अधिक कर देती है। यदि कोई विरोध में यह कहे कि वह वायु नहीं है जिससे पूर्वापरीय व्यास का मान अधिक आता है पर ग्रह का चन्द्र की भांति घटाव और बढ़ाव है जिसके कारण व्यास बड़ा दिखाई देता है। अथवा यह कहा जाय कि मङ्गल पर चन्द्र लोक की भांति पहाड़ हैं जिनकी चोटियों पर से प्रकाश परावर्तित होकर व्यास का मान बढ़ाता है। इन दोनों शङ्काओं का उत्तर यह है (१) कि यदि चन्द्र के समान ग्रह का पिण्ड घटता और बढ़ता है तो उसके व्यास का मान वास्तव व्यास के मान से सर्वदा न्यून होना चाहिए। व्यास मान कथमपि बड़ा न होना चाहिये। (२) मङ्गल के पृष्ठ पर वेध कर के ज्योतिषियों ने निश्चय कर लिया है कि ग्रह के पृष्ठ पर कोई ऊंचे पहाड़ नहीं हैं जिनके शिखरों पर से सूर्य की किरणें परावर्तित हो ग्रह के व्यास मान को उसके वास्तव मान से बड़ा कर देती हों। इसलिये स्पष्ट है कि वह वायुही है जो कि पूर्वापरीय व्यास पर घनी होने के कारण सूर्य की किरणों को परावर्तित कर व्यास मान वास्तव व्यास-

मान से अधिक कर देती है। ऊपर के वर्णन से अब स्पष्ट है कि पृथ्वी की भांति मङ्गलपृष्ठ भी वायु से घिरा है।

अब जानना यह रहा कि यदि मङ्गलपृष्ठ पर वायु है ते। इसका बोझ क्या है? और उसमें आक्सिज़न इत्यादि ग्यास तथा जल कण हैं वा नहीं। आक्सिज़न इत्यादि ग्यास मंगल वायु में हैं वा नहीं इसकी मीमांसा करनी बहुतही कठिन और दुःसाध्य है क्योंकि जो रीति विज्ञान-शास्त्र में इस समय में प्रचलित हैं उनसे यह वायु में क्या क्या पदार्थ हैं जानना कठिन है। आज कल ग्रह के प्रकाश की परीक्षा विज्ञान-शास्त्र-वाले स्पेक्ट्रासकोप से करते हैं। स्पेक्ट्रास-कोप किसी प्रकाश के अवयव रङ्गों को अलग अलग कर देता है। अर्थात् निर्दिष्ट-पदार्थ में कौन कौन रङ्ग हैं उनको यह यन्त्र भली भाँति दिखा देता है। प्रत्येक प्रकाश के वर्ण-चिन्ह (Spectrum) जुदे जुदे होते हैं। इन्हीं स्पेक्ट्रम चित्र के बल से विज्ञान-शास्त्र वेत्ता अमुक प्रकाश जो अमुक वस्तु का है उसमें अमुक अमुक पदार्थ वा ग्यास हैं, स्थिर करते हैं। इन्ही स्पेक्ट्रमों के बल से वैज्ञानिकों ने सूर्य पृष्ठ पर अनेक धातु तथा ग्यास इत्यादि का होना निश्चय किया है। मंगल में कोई प्रकाश नहीं है और जो प्रकाश कि ग्रह का हम लोग पृथ्वी पर से देखते हैं वह वास्तव में सूर्य का प्रकाश है जो कि ग्रहपिण्ड पर से परावर्तित हो कर पृथ्वी पर आता है और जिसके कारण हम लोगों को ग्रह दिखाई देता है। इसलिये पृथ्वी पर से यदि मंगल के प्रकाश की परीक्षा की जावे तो मङ्गल के बदले सूर्य मण्डलही के वायु के विषय में ज्ञान होगा। यदि और ग्रहों की भांति मङ्गल में स्वयम् प्रकाशवान होने की शक्ति होती तो ऊपर लिखे हुए यन्त्र से सहज में ग्रह-पृष्ठ पर की वायु का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता, और इस बात की मीमांसा भी पूरी तौर पर हो जाती कि मङ्गलवायु में आक्सिज़न, नाइट्रोजन, इत्यादि ग्यास रहती हैं वा नहीं।

वेध से पाया गया है कि मङ्गल-पृष्ठ पर कभी कभी काला दाग दिखाई देता है जो कि कुछ काल तक रह कर फिर न जानें कहां लोप हो जाता है। पर कोहिरा ही ऐसी वस्तु है जो कि थोड़े काल

तक आकाश को घेरे रहता है और सूर्य की गर्मी पा कर फिर लोप हो जाता है। इसलिये संभव है कि काला दाग़ कोहिरे का हो। पृथ्वी पर भी प्रातः और सायङ्काल में आकाश कोहिरे से घिरा रहता है। प्रातः काल का कोहिरा सूर्य के तेज से धीरे धीरे लोप हो जाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों से ग्रह पर की वायु का बोझ पृथ्वी पर की वायु की अपेक्षा १४/१०० गुना हलका है। अर्थात् वैज्ञानिक रेनालट्स (Reinaults) के सिद्धान्त से मङ्गल-पृष्ठ पर पानी १७० फारनहाइट डिगरी पर खोलेगा। यदि इसी मान को सेन्टीग्रेड थरमामेटर में प्रकाश करें तो मान ७५ डिगरी आवेगा। इसी उष्णता पर मङ्गल पृष्ठ पर पानी वाष्प-स्वरूप हो जायगा। पृथ्वी पर पानी खोलने का दर्जा १०० सेन्टीग्रेड है। अर्थात् मङ्गल पृष्ट पर पृथ्वी की अपेक्षा पानी कम गर्मी से खोलता है।

मङ्गल के पृष्ठ पर पानी बहुतही कम बरसता है, बनौरी इत्यादि का कई प्रकार से वहां पडना असंभव जान पडता है। केवल ओस और कोहिरा वहां पर पड सकता है। ध्रुवखोली कदाचित इन्हीं दोनों कारणों से जम कर वर्फ हो जाती हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। ग्रह के पृष्ठ पर बड़े बड़े तूफानों के आने की भी कम संभावना समझ पड़ती है पर छोटी छोटी आंधियां आ सकती हैं। इन बड़े तूफानों के न आने का मुख्य कारण यह है कि मङ्गल-वायु पृथ्वी पर की वायु से बहुतही हलकी है। मङ्गलीय-वायु भू-वायु से हलकी है यह समझ मनुष्य को यह तर्क न करना चाहिए कि ग्रह पर कोई जीव नहीं बसते हैं। संभव है कि विधाता ने वहां के वासियों को वहांही की वायु में जीवित रहने योग्य बनाया हो।

डगल्यास साहेब ने एक समय ग्रह के पृष्ठ पर ६९४ विचित्र प्रकाशवान स्थान देखे जिनमें से २९१ स्थान पृष्ठ पर से उभड़े दिखाई पड़े और ४०३ स्थान दबे दिखाई पड़े। साहेब ने विचार कर निश्चय किया कि यह पहाड़ की ऊंचाई निचाई कथमपि नहीं है। क्योंकि—

(१) वेध से मङ्गल पर कोई ऊंचे पहाड़ नहीं दिखाई देते हैं और जो एकाध दिखाई भी पड़ते हैं उनके कारण इतने ऊंचे नीचे स्थान नहीं दिखाई पड़ सकते।

(२) यदि इन चिन्हों को पहाड़ ही की प्रतिभा और अधरांश मान लिया जाय तो प्रतिभा और अधरांश का मान तुल्य होना चाहिए। अर्थात् जितनी ऊंचाई एक स्थान पर दिखाई पड़ती है उतनीही निचाई उसके समीप में होनी चाहिए। जैसे एक स्थान की ऊंचाई ७ फुट देखी गई तो उसके समीप उसकी प्रतिच्छाया की निचाई भी ७ फुट होनी चाहिए। इसलिये स्पष्ठ है कि ये प्रतिभा अधरांश बादल के टुकड़ों के हैं, जो सर्वदा घट बढ कर ऊंचाई और निचाई की संख्या को तुल्य और स्थिर नहीं रहने देते। वेध से जाना गया है कि ये बादल ग्रह के पृष्ठ पर से प्राय: १५ मील तक ग्रह-पिण्ड को घेरे रहते हैं। अर्थात् ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि जब ग्रह पर कोहिरा इत्यादि है तो वहां वायु अवश्य है।

जिस प्रकार मङ्गल पर वायु है वा नहीं इसके सिद्ध करने के लिये ध्रुवखोली का काम पड़ा है उसी प्रकार ग्रह पर जल है वा नहीं इसकी मीमांसा करने में भी ध्रुवखोली के परिवर्तन का काम पड़ेगा। वायु की मीमांसा में इन खोलियों के वर्णन में केवल इतनाही कह कर छोड़ दिया गया है कि श्वेत खोलियों में परिवर्तन होता रहता है। पर जल के सिद्ध करने के लिये इस खोली का थोड़ा वृत्तान्त उपयोगी समझ कर नीचे दिया जाता है।

ग्रह की ध्रुवखोली यूरोप में चिर काल से प्रसिद्ध है। किसी इङ्गलैण्ड के कवि ने वर्णन में लिखा है।

'The snowy poles of moonless Mars'

(अर्थात् चन्द्र शून्य मङ्गल के वर्फ से ढके हुए ध्रुव)। पीछे से ग्रह के चित्रों से इसका और भी पता धीरे धीरे ज्योतिषियों को चलने लगा। ज्योतिषियों ने अनेक आपत्तियों के उपस्थित रहने पर भी ग्रह के ऐसे ऐसे सुन्दर चित्र लिए हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन चित्र लेने वाले ज्योतिषियों में सब से प्रख्यात ज्योतिषी, हरसल, विपर, माडलर, लाकेयर, फिलिप और डिलारु थे। पर सबसे उत्तम चित्र वह है जो इन ज्योतिषियों के पश्चात् लिया गया है। यह चित्र पिछले सब उतारे हुए चित्रों से

उत्तम है। इस चित्र का लेने वाला डावेस था। डावेस ने सन् १८५२, १८५८, १८६० और १८६२ में ग्रह के २२ चित्र उतारे थे।

ग्रह का चित्र लेना जैसा लोग चित्रों के देखने से स्वयं समझ सकेंगे, सहज न था। डावेस ने ग्रह का प्रति घंटे का चित्र उस समय लिया है जब कि ग्रह की ध्रुव-यष्टि भी नहीं मानी गई थी। प्राकटर साहेब ने डावेस के चित्रों के बल से ग्रह का एक नकशा तैयार किया था कि जिसमें साहेब ने देशान्तर इत्यादि चित्र के अनुसार स्थिर किया। उपरोक्त साहेब ने नकशे को ग्रह के चित्र पर रख कर ध्रुव-खोली का स्थान नियत किया था। ब्राडनिङ्ग साहेब ने १८६८ ई॰ में प्राकटर और डावेस के चित्रों के बल से मङ्गल का एक गोल बना कर इंगलैण्ड के ज्योतिषिक समाज में दिखाया था। इस के पूर्व फिलिप साहेब ने भी समाज को एक गोल बना कर दिखाया था। पर ब्राडनिङ्ग का गोल फिलिप के बनाए हुए गोल से बहुत बढ़ कर था।

३ जून सन् १८९४ ई० को बेध करके देखा गया कि ग्रह के दक्षिण ध्रुव पर की खोली ५५ अंश देशान्तर तक ग्रह के पृष्ठ पर फैली हुई है। एक अंश का मान ग्रह के पृष्ठ पर ३७ मील के तुल्य है। इसलिये ध्रुवखोली का दक्षिण ध्रुव पर विस्तार २०३५ मील था। ७ जून को और भी विचित्र दृश्य देख पड़े। अचानचक इस श्वेत खोली में तारे की तरह दो चमकीले स्थान दिखाई पड़े। थोड़े काल तक ये तारे चमकते रहे और उसके अनन्तर धीरे धीरे लोप होने लगें। उसी सन् की १२ वीं अक्टूबर को लोवेल साहेब ने जब १० बजे रात को देखा तो श्वेत खोली का बहुतही थोड़ा हिस्सा रह गया था और बाकी सब लोप हो गया था। उसी दिन फिर साहेब ने १ बजे रात को ग्रह को देखा तो श्वेत खोली को ध्रुव पर ६ अंश फैला हुआ पाया जिसका विस्तार ५० वर्ग मील के लगभग था। १३ वीं अक्टोबर को जब देखा गया तो सुफेद खोली का पता नहीं था। न जाने वह कहां लोप हो गई। इसके पहिले यह श्वेत खोली कभी लोप होती हुई नहीं दिखाई पड़ी थी। सन् १८९७ ई० तक यह ७ देशान्तर से ४ देशान्तर तक घटती हुई दिखाई दी

थी और बाद उसके बढ़ने लगी थी। उस समय ज्यों ज्यों श्वेत-खोली घटती जाती थी त्यों त्यों उसके चारो ओर चौड़ी चौड़ी काली धारियां दिखाई देने लगी थीं। इन धारियों में किसी का रङ्ग नीला और किसी का रङ्ग हलका नीला था। धारियों की चौड़ाई जहाँ तक देखी गई वहां तक उनकी चौड़ाई सब स्थान पर बराबर न थीं। कहीं धारियां ज्यादे चौड़ी और कहीं कम चौड़ी थीं। रङ्ग इनका या तो नीला या हलका नीला सब स्थानों पर था। २९० और ३३० देशान्तर के बीच दो बड़ी खाड़ियां दिखाई पड़ीं जिन में पहिले का रङ्ग धारियों के समान गहिरा नीला और दूसरे का नीला था। प्रायः धारियों की चौड़ाई दूसरे दूसरे देशान्तरों में पृथक पृथक थी। उत्तर की ओर जो पहिली खाड़ी थी वह हरे रङ्ग के स्थलों से घिरी हुई थी। नीला रङ्ग जो धारियों का है वह किस वस्तु का है इसकी मीमांसा करने के लिये पहिले ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों ने इसे द्रव कारबोनिक आसिड ग्यास समझा परन्तु पीछे से फ्यारडे (Farday) की युक्ति से यह बात असंभव जान पड़ी। यदी कहीं कारबोनिक आसिड् ग्यास का मङ्गलपृष्ठ पर होना सिद्ध हो जाता तो चन्द्र की भांति मङ्गल में भी जल का होना असंभव होता। इसलिये पृथ्वी की भांति मङ्गल के ध्रुव पर भी बर्फ जमी हुई है जो गर्मी और सरदी पाकर गलती और जमती रहती है। इस लिये सिद्ध होता है कि मङ्गल पर अवश्य जल है।

मङ्गल के पृष्ठ का अवयव जानने के लिये लोवेल साहेब ने फ्लागस्टाफ के यन्त्रालय में इस ग्रह के बारह चित्र नवेम्बर सन् १८९४ में उतारे। इन चित्रों के लेने के पहिले श्यापेरिलम् ने सन् १८८८ ई० में इस ग्रह का एक बहुतही सुन्दर चित्र लिया था। इस चित्र से फ्लागस्टाफ के उतारे हुए चित्रों को परस्पर मिलान करने पर बहुत से विशेष नवीन स्थान मङ्गल पृष्ठ पर विदित हुए हैं। इन बारहो चित्रों का सविस्तर ब्योरा इस छोटे लेख में कथमपि नहीं आसकता है इसलिये लेख में केवल विशेष उपयोगी वस्तुओं ही का सारांश लिखा गया है।

मंगल के दो चित्रों से सिद्ध होता है कि यह पृथ्वी की भांति

पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है। इसके पृष्ठ पर बहुत से ऐसे प्रकाशवान स्थान देखे गए हैं कि जिनके चारो ओर काली धारियां हैं। इन धारियों को जितनी ही सावधानी से वेध कर के देखा गया है उतनीही ये धारियां सुडौल ज्ञात होती हैं। इन धारियों को वेध करने वाले मंगल के पृष्ठ पर की बड़ी बड़ी नहरें बतलाते हैं। यह के मध्य स्थल में पुच्छल तारे की भांति एक डमरूमध्य है। इस डमरूमध्य के चारो ओर भी काली लकीरें हैं जो कि कुछ दूर जाकर दूसरी काली लकीरों से मिल गई हैं। इसी प्रकार मंगल के पृष्ठ पर और बहुत सी काली लकीरें हैं जिनसे कहीं त्रिभुजाकार कहीं चतुर्भुजाकार औरकहीं वृत्ताकार प्रकाशवान स्थल घिरे हुए हैं। कहीं कहीं बहुत सी लकीरें इधर उधर से आकर एकही स्थान पर मिल गई हैं अर्थात् मंगल का पृष्ठ प्रायः चारखाने कपड़े की भांति इन्हो लकीरों से भरा हुआ है। इन काली धारियों के बीच के स्थान कई एक स्थानों पर मैले तांबे के रंग के हैं जिन्हें वेध करने वाले उपजाऊ स्थल अर्थात् उर्वरा भूमि बताते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि ध्रुव-खोली के गलने से कभी कभी गहिरा नीला रंग दिखाई देता है। वह जान पडता है कि मंगल का ध्रुवीय सागर है जो अधिक सरदी पाकर जम कर वर्फ हो जाता है। ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों के मत से अब वह समुद्र नहीं है, चाहे इसके पूर्व वह समुद्र रहा हो। प्रोफेसर पिकरिंगस ने उन गहिरी नीली धारियों को पोलारिसकोप से देख कर यह सिद्ध किया कि उनमें जल नहीं हैं। ३१, मई सन् १८९४ ईसवी में जब कि श्वेत खोलियां बडी विस्तृत दिखलाई पडी थीं उस समय ध्रुवीय-समुद्र का रंग गहिरा नीला था, जिससे यह ज्ञात होता है कि यदि समुद्र वहां पर है तो वह बहुत गहिरा है; उस समय उसका विस्तार ३५० मील का था जो कि धीरे धीरे देखते देखते लोप हो गया। इस प्रकार इस समुद्र के लोप हो जाने से प्रायः और और स्थान जो पृष्ठ पर इसी प्रकार दृश्य होकर लोप हो जाते हैं उन्हे समुद्र कहना असंभव जान पडता है। लोवेल ने सन् १८९४ ईसवी में पहिले पहल यह देखा कि काले स्थान ज्यों के त्यों हैं अर्थात् उनमें कुछ भी परिवर्त्तन न हुआ।

परन्तु थोड़े दिनों के अनन्तर यह देखा गया कि गहिरे काले भाग कम काले और उज्वल भाग अधिक उज्वल हो चले। ज्यों ज्यों उनमें परिवर्त्तन होता जाता था त्यों त्यों उनके रंग बदलते जाते थे। कभी ये नीले हरे होकर फिर नारंगी के रंग की तरह हो जाते थे। पहिले जो खाडियां जान पडती थीं अब वे बहुत ही काली दिखलाई देने लगीं। इसी प्रकार उसके पिण्ड पर और कितने स्थान अपना अपना रंग परिवर्त्तन करने लगे। इस से स्पष्ट है कि रंग के बदलने का मुख्य कारण जल है। यदि जल है तो कहां से आया इसे आगे कहेंगे। बहुतों के मत से केवल जलही रंग बदलने का कारण नहीं है। वे कहते हैं कि गहिरा हरा रंग पत्तियों का है, जो पृथ्वी की पत्तियों की तरह पतझड आने तक अपना रंग परिवर्त्तन किया करती हैं। यही मत प्रायः अब दृढ माना जाता है। इस लिये स्पष्ट है कि यदि गहिरा हरा रंग जल का नहीं है तो मंगल पर जल बहुत ही कम है।

मंगल पृथ्वी से छोटा है इस लिये इसके पिण्ड के अवयवों में बहुत शीघ्र परिवर्त्तन होता है। यद्यपि पृथ्वी के पश्चात् इसका जन्म हुआ है, तथापि यह पृथ्वी से अधिक जर्जर अर्थात् वृद्ध हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि छोटा पदार्थ अपनी उष्णता शीघ्र ही बाहर निकाल देता है। ज्यों ज्यों यह वृद्ध होता जाता है त्यों त्यों उसके पृष्ठ पर के समुद्र सूखते जाते हैं। और पानी केवल पृष्ठ के नीचे कन्दराओं में रह जाता है। इससे स्पष्ट है कि कुछ दिन में मंगल का पृष्ठ भी जल रहित हो चन्द्र के समान मरुस्थल हो जायगा। अभी अवस्था मालव और मरुस्थल के बीच में है अर्थात् समुद्र सूख कर मरुस्थल नहीं हो गए हैं। बहुत से सूखे समुद्र तल अभी आस पास के स्थलों से नीचे हैं जिससे बाहरी पानी उनमें इकट्ठा हो सकता है। जान पडता है कि श्वेत खोलियां ही मंगल वासिओं को पानी के लिये एक मात्र आधार हैं। श्वेत खोली जब ऋतु पाकर गलती है तो पानी आकर्षण बल से पूर्वापरीय व्यास की ओर दौडता है और इस प्रकार सब स्थानों पर जल पहुंच जाता है।

यदि मंगल पर कोई जीव बसते हों तो विशेष संभव है कि दिन दिन जल के नाश होने से एक दिन जल बिना उन सब जीवों का नाश हो जाय। क्योंकि बिना जल जीव कथमपि नहीं जा सकते। ऐसी अवस्था में जब कि मंगल के पृष्ठ पर जल बहुतायत से नहीं पाया जाता तो वहां के रहने वालों ने अवश्य कोई न कोई युक्ति अपने प्राण बचाने के लिये निकाली होगी। प्रायः पृथ्वी पर जिन स्थानों पर पानी की संकीर्णता रहती है दूर की नदिओं से नहर काट काट कर उन स्थानों को सींचते हैं। इसलिये मंगल-वासी भी ध्रुवीय श्वेत खोली से नहर काट कर संपूर्ण उपयोगी स्थानों में पानी ले जाते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। श्वेत खोली के अतिरिक्त वहां और स्थान में जल की संभावना नहीं पाई जाती। इसलिये कदाचित् नीली धारियां जो संपूर्ण पृष्ठ पर फैली हुई हैं, इन्हीं नहरों की जल रेखा हों, जिन्हें वहां के मनुष्यों ने पानी ले जाने के लिये बनाया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

वेध से तांबे के रंग वाली धारियों में देखा गया है कि वे जाल के समान बहुत सी सीधी काली धारियों से भरी हुई हैं, ये काली धारियां गहरे नीले रंग के स्थलों से निकल कर सीधे स्थल देशों के बीचो बीच चली गई हैं जहां पर ये पहुंच कर और और सीधी काली धारियों से मिली हुई हैं। ये धारियां एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत तो सरल-रेखाकार और बहुत सजातीय वक्र-रेखाकार हैं। देखने से उनकी चौडाई भी अधिक नहीं ज्ञात होती है। प्रायः वे ३० मील के लगभग चौडी हैं। केवल थोडी सी काली धारियां ऐसी हैं कि जिनकी चौडाई लगभग १५ मील के है। सब से विचित्रता इन काली धारियों में यह है कि उनकी चौडाई एक छोर से दूसरी छोर तक तुल्य है। केवल जहां से ये निकलती हैं वहां पर, कुछ दूर तक ये कुछ अधिक चौडी हैं। कहीं कहीं इन काली धारियों की लम्बाई बहुत ही अधिक है। सब से लम्बी का मान ३५४० मील है, इससे छोटी २४०० मील और इस से भी छोटी १४५० मील है। सब से छोटी का मान २५० मील है। इन धारियों में कुछ को छोड कर और सब प्रायः वृत्ताकार हैं।

पहिले पहल इन नहरों को श्कापेरिली साहेब ने सन् १८७७ ई० में देखा था। इस विचित्रता के प्रकाश करने पर पहिले किसी ने उसका विश्वास न किया। सन् १८७९ ई० में उपरोक्त साहेब ने फिर वेध करके देखा कि पहिले जहां एक नहर देखी गई थी वहां अब दो समानान्तर नहरें हो गई हैं। ऐसी अवस्था एक दो स्थान की न थी पर बीसों स्थानों पर यही दृश्य देखा गया। तब वर्षों तक उपरोक्त साहेब को छोड कर दूसरा इन बातों पर विश्वास न करता था। पर इसके पश्चात् बहुत से ज्योतिषियों ने वेध कर साहेब के वाक्य को समर्थन कर पुष्ट किया। नहरों की संख्या फ्लागस्टाफ के वेधालय से १८३ सिद्ध हुई है।

जितना ही सूक्ष्म रीति से नहरों का वेध किया जाता है उतनाही स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि नहरें स्वाभाविक नहीं हैं किन्तु बनाई हुई हैं। क्योंकि यदि ये स्वाभाविक प्रकृति से उत्पन्न हुई होतीं तो –

(१) वे इतनी सुडौल कथमपि न होतीं।

(२) एक ओर की बहुत सी नहरें दूसरी ओर की बहुत सी नहरों से कथमपि एकही स्थान पर न मिलतीं। कभी कभी देखा गया है कि जहां पर पहिले नहरें थीं वहां पर अब कुछ नहीं दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि वे किसी ऋतु में देख पड़ती हैं और किसी में नहीं।

वास्तव में इन सब धारियों को पानी की नहरें मानना असंभव समझ पड़ता है। पहिले तो यह कि ये सब धारियां एक ही समय पर अपने रङ्ग का परिवर्तन नहीं करतीं। दूसरे यह कि इतनी चौड़ी नहरें बनाना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है इसलिये वे सब जल की नहरें कथमपि नहीं है। संभव है कि वे बहुत से उपजाऊ स्थल हों जो अपना रङ्ग परिवर्तन कर सकते हैं। और छोटी छोटी नहरें उनके चारो ओर सींचने के लिये कटी हों। यह अनुमान पहिले पहल प्रोफेसर पिकरिङ्ग ने किया था। वास्तव में बुद्धि से भी यही समझ पड़ता है कि वे सब जल की नहरें नहीं हैं किन्तु वे जल की नहरों के समीप के उपजाऊ स्थान हैं। वेध से देखा गया है कि केवल

नहरों के स्थान अपना रङ्ग बदलते हैं पर उनकी चौड़ाई में कुछ भी विकार नहीं होता। उपजाऊ स्थान के समीप जल की नहरें अतिशय कम चौड़ी होने के कारण दूरबीन से देख नहीं पड़ती हैं।

उज्ज्वल स्थान जिनका रङ्ग कुछ लीलो लिए हुए है और जो समस्त मङ्गल की भूमि पर फैला हुआ है, वे सब मरुस्थल जान पड़ते हैं। पृथ्वी पर के मरुस्थल बेल्यून पर चढ़ कर आकाश से देखने से फीके पीले रङ्ग के दिखाई देते हैं। इन स्थानों और नहरों में ऐसा सम्बन्ध है कि जहां ये स्थान है वहां अवश्य दो एक नहरें आकर मिली हैं। इस प्रकार ये नहरें उज्वल और काले स्थानों को मिला देती हैं। जहां पर उज्ज्वल चिन्ह हैं वहां पर नहरें हैं इससे अवश्य है कि इनमें कुछ न कुछ परस्पर संबन्ध है।

जहां केवल एक ही नहर इधर उधर से आकर एक स्थान पर मिलती है वहां पर संयोग-स्थान वृत्ताकार दिखाई देता है। पर जहां पर दो समानान्तर नहरें इधर उधर से आकर मिलती हैं उस स्थान का रूप गोल कोने वाले तारे के सदृश है। बहुत से उज्वल चिन्हों का व्यास १२० मील से लेकर १५० मील तक है और छोटे चिन्हों का व्यासमान ७५ मील के लगभग है। ये चिन्ह भी नहरों की भांति कभी कम और कभी अधिक प्रकाशवान् दिखाई देते हैं। नहरों की तरह इनके रङ्ग के परिवर्तन से यह सिद्ध किया गया है कि मरुस्थल के बीच के ये शाद्वलस्थल (Oasis) हैं।

उज्वल स्थल की भांति मङ्गल के काले स्थलों में भी बहुत से चिन्ह दिखाई देते हैं। ये चिन्ह उज्वल स्थलों की भांति वृत्ताकार नहीं किन्तु त्रिभुजाकार हैं। ये चिन्ह वहां पर देखे जाते हैं जहां से ये नहरें निकलती हैं। ये स्थल जहां से नहरें निकलती हैं पानी के खजाने नहीं हैं कि जहां से पानी निकल कर और स्थानों पर जाता है। परन्तु नहरें अवश्य इस स्थान से होकर जाती हैं और अन्य स्थानों की तरह ये भी उपजाऊ स्थान अथवा वन हैं।

ऊपर यह दिखा चुके हैं कि–

(१) मनुष्य की जीवन संबन्धी सभी उपयोगी वस्तु मङ्गल के

पृष्ठ पर हैं यदि मङ्गल पर मनुष्य हों तो उनके जल का आधार केवल नहर ही हैं।

(२) इसके पृष्ठ पर बहुत से चिन्ह अर्थात् स्थान हैं जो कि उपजाऊ ज्ञात होते हैं। इस लिये यदि पृथ्वी की भांति वहां पर भी मनुष्य इत्यादि जीव रहते हों तो कोई आश्चर्य्य नहीं।

मनुष्य शब्द से मेरा यहां पर यह अभिप्राय नहीं है कि सम्यक् प्रकार से वे पृथ्वी पर के मनुष्य के आकार के हों। चाहे पृथ्वी के मनुष्य से उनका आकार कैसाही भिन्न क्यों न हो पर वे अवश्य पृथ्वी पर के मनुष्य की भांति बुद्धि, बल, इत्यादि रखते होंगे।

भारतवर्ष के ज्योतिष-सिद्धान्त-वेत्ता इसे भौम कहते हैं जिस का पाणिनि-व्याकरण से अर्थ पृथ्वी का पुत्र हुआ। इसलिये भारतवासियों के मत से भी स्पष्ट है कि माता का कुछ न कुछ अंश और स्वभाव पुत्र में अवश्य रहता है अर्थात् पृथ्वी की भांति मङ्गल पर भी मनुष्य इत्यादि जीव और दूसरी वस्तुओं का होना सर्वथा संभव है। जितना ध्यान यूरोप में चन्द्र की ओर व्यर्थ झुका था यदि मङ्गल की ओर झुका होता तो संभव है कि अब तक इस ग्रह के विषय में बहुत कुछ ज्ञान हुआ होता। संभव है कि एक दिन ऐसा आवेगा कि पृथ्वी पर के लोग मङ्गल वासियों से सङ्केत द्वारा वा और किसी प्रकार से बात चीत करेंगे॥

इतिहास* ।

(पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा अनुवादित ।)

कोऽन्यःकाल मतिक्रात नतु प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥†
राजतरंगिणी ।

(१) यह विषय बहुत गंभीर है । इस विषय पर जितना लिखा जाय उतना थोड़ा ही है । क्योंकि प्रथम तो यह विषय आप ही बहुत बड़ा है इसके सिवाय इसके अंग उपांग भी अनेक हैं । वह इस प्रकार कि, इसके लेखक को उचित है कि वह संपूर्ण जगत के इतिहास को हस्तामलकवत् ज्ञात कर लेवे; ऐसा

---

* अब आज कल हमारे यहां पठन पाठन की चर्चा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । यह बात हमारे होनहार मंगल एवं कल्याण का पूर्वरूप है । इस दशा में हमारे कृतविद्य लोगों का प्रयत्न यदि एकसा चलता रहेगा तो संभव है कि थोड़े ही दिनों में विद्या से हम लोगों को भी वह फल प्राप्त होने लगेगा जिसे अपर विद्यातत्व-पारदर्शी लोग आज पा रहे हैं ।

आत्मश्लाघा लोलुप तथा स्वार्थी विद्वान् उतने पूज्य और मानार्ह नहीं हो सकते जितने आत्मकर्त्तव्यज्ञ तथा परोपकारी विद्वान् सर्व्वसाधारण के माननीय तथा प्रेमपात्र हो सकते हैं । कई लोग ऐसे विद्वान् होते हैं जो अपने ज्ञान का फल आप ही चखते हैं; और कई लोग ऐसे विद्वान् होते हैं जो अपने ज्ञान का फल दूसरों को भी चखाते हैं । विष्णु कृष्णशास्त्री इनमें से दूसरे वर्ग के विद्वान् थे । अर्थात् आपने अपनी विद्या द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया था उसे आपने अपनी ही भलाई में व्यय नहीं किया, किंतु आपने उसका व्यय इतनी उदारता के साथ किया कि जिससे प्रत्येक उत्साही मनुष्य लाभ उठा सके । यही कारण है कि आज दिन वह आबाल वृद्ध के प्रातःस्मरणीय हो रहे हैं, और उनसे बढ़ के जो कोड़ियों स्वार्थी विद्वान् हो गए हैं उनका कोई आज नाम तक नहीं जानता ।

भरोसा है कि चिपलूणकर जी के लेख के इस अनुवाद को पढ़ हमारे आधुनिक विद्वानों में से एक दो तो अपनी विद्या द्वारा सर्व्वसाधारण को लाभ पहुंचाने के लिये प्रोत्साहित होंगे ।

† मनोहर (सृष्टि के) निर्माण करने वाले कवि और प्रजापति के सिवाय व्यतीत काल की घटनाओं को प्रत्यक्षरूप से प्रदर्शित करने के लिये अन्य कौन समर्थ है ।

करने से उसे जो प्रधानतः बड़े बड़े सिद्धांत दीख पड़ेंगे उन्हें उसे उल्लिखित करना चाहिए ; अनंतर प्रत्येक मुख्य मुख्य राष्ट्र के इतिहास को सविशेष अपने विचार क्षेत्र में लेकर उसे उसका उल्लेख करना चाहिए । उसी प्रकार भूवर्णन और कालक्रम के–कि जो इतिहास के चक्षु कहे जाते हैं–विषय में, देशों की अवस्था विशेष के फलों के विषय में अर्थात् अमुक अमुक देश की रचना अमुक अमुक प्रकार की होने के कारण इस इस प्रकार के परिणाम उत्पन्न हुए ; विद्या और कलाओं के विषय में अर्थात् उनकी उन्नति किस किस प्रकार से उत्तरोत्तर होती गई ; तात्पर्य्य यह की लोगों की रीतिभांति, रहन सहन, चाल चलन आदि छोटी मोटी बातों के विषय में भी इतिहास में उल्लेख होना चाहिए। सारांश; इतिहास अर्थात् इतिवृत्त। आदि से लेकर आजलों जो जो घटनाएं हुई हैं उन सबके विषय में उल्लेख जिस ग्रंथ में पाया जाता है उसका नाम इतिहास है।

(२) इस शब्द की व्युत्पत्ति किंचित् कौतूहलोपादक है अतः प्रथम यहां पर उसका वर्णन करते हैं। यह शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है ; 'इति ह, आस' इनका अर्थ "इस प्रकार से हुआ" ऐसा है।* तब तो इन शब्दों का अर्थ "पिछली घटनाओं का वृत्तान्त" यही हुआ। पर मूल के और अब के अर्थ में संप्रति यह अन्तर हो गया है। इस शब्द का मूल का अर्थ पुराणांतर्गत उपकथा अर्थात् अप्रधान वार्त्ता था; जैसी कि भिन्न भिन्न प्रसगों पर ऋषियों ने धर्मराज को प्राचीन राज्यों की कथा वार्त्ताएं सुनाई थीं। परन्तु संप्रति इस शब्द का प्रयोग अंगरेज़ी के "हिस्टरी"† शब्द के अर्थ में किया जाता है। इससे यह बात स्पष्टतया निर्धारित होती है कि प्रथम के लिये प्रमाणस्वरूप पुराणांतर्गत ऋषियों के केवल वाक्य ही हैं किन्तु दूसरे के लिये उनसे कहीं अधिक बलिष्ट अनेक प्रमाण अपेक्षित हैं।

* इन शब्दों में "ह" केवल अव्यय है। इसका प्रयोग वेदादि प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है।

† लेखक ने "बखर" शब्द का प्रयोग किया है। मराठी में "बखर" शब्द का अर्थ आधुनिक इतिहास शब्द के ऐसा ही होता है।

(३) ऊपर 'इतिहास' शब्द का जो पुराना अर्थ कहा गया है उससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि अर्वाचीन अर्थ में वह शब्द जिन ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त हो सकता है वे ग्रन्थ प्राचीन समय में हमारे यहां नहीं थे अर्थात् ग्रीक और रोमन लोगों में सप्रमाण एवं यथार्थ इतिहास लिखने की जिस प्रकार आगे प्रथा पड़ गई उस प्रकार की प्रथा अपने यहां कभी भी प्रचलित हुई होगी सो नहीं जान पड़ता। एक प्रकार से यह एक बड़ी कौतूहलास्पद बात है। क्योंकि जो प्राचीन हिन्दू लोग उस समय समस्त राष्ट्रों में प्रत्येक विषय में अग्रगण्य थे; जिनके यहां विद्या ने तो मानो पूर्ण रूप से अवतार ही लिया था; उन लोगों द्वारा इसी एक अंग की उपेक्षा होनी क्या कुछ कम आश्चर्य्य की बात है? है सचमुच यह ऐसी ही। तथापि उसके न होने के कारण स्वरूप में, हम समझते हैं यहां पर कतिपय बातों का उल्लेख किया जासकता है। इतिहास का प्रारंभ कब होने लगता है, इस विषय का जब हम किंचित् विचार करने लगते हैं तो यह ज्ञात होता है कि, जिस समय राष्ट्रों में बड़े बड़े युद्ध, बड़ी बड़ी राजक्रांति आदि बड़ी बड़ी घटनाएं होती हैं तभी उसका प्रारंभ होता है। एथेन्स, रोम और इंग्लैंडादि के लोगों में; उसी प्रकार मुसलमान मुगल, और मराठे आदि लोगों में भूतपूर्व घटनाओं के वृतान्त के लिखने की प्रथा ऐसेही प्रसंगों से प्रचलित हुई। अस्तु; यह सब यदि सत्य है, तो प्राचीन हिंदू लोगों के समय में इतिहास ग्रन्थों का अभाव क्यों रहा इसका कारण बहुतांश में ज्ञात हो सकता है। उनके देश की चतुःसीमाएं प्रायः अलंघ्य होने के कारण प्राचीन चीनी लोगों की नांई हमारे पूर्व्वज भी अपने स्थान में ही सुख शान्ति के साथ बने रहे। ग्रीक और रोमन आदि लोगों को जिस प्रकार अपने पड़ोसी लोगों से सदा लड़ना भिड़ना पड़ता था, वैसे यहां के लोगों को लड़ने भिड़ने के अवसर उपस्थित न होने के कारण, प्राचीन हिन्दू लोगों को अपर राष्ट्रों के साथ कभी युद्ध करना ही नहीं पड़ा। अब यह बात सच है कि यहां के राजे रजवाड़ों में परस्पर युद्ध होते होंगे पर वह युद्ध इतिहास रूप से वर्णन करने के योग्य होते होंगे ऐसा कुछ नहीं जान पड़ता। क्यों-

कि उस समय के संस्कृत के जो कुछ ग्रन्थ आज दिन उपलब्ध हो सकते हैं, उनमें ये उल्लेख पाए जाते हैं कि उस समय अनेक राजागण स्वतन्त्रता पूर्व्वक राज्य करते थे; पर उन ग्रन्थो में यह बात कहीं नहीं पाई जाती कि किसी एक राजा ने सब राजाओं को पराजित करके अपने लिये सार्व्वभौमत्व प्राप्त किया हो। सारांश, इस कथन से यही बात निष्पन्न होती सी जान पड़ती है कि उस समय तुमुल युद्ध, बड़ी राज्यक्रान्ति आदि जो इतिहास की सामग्री हैं उनका अभाव होने के कारण इतिहास लिख रखने की प्रथा यहां प्रचलित नहीं हो सकी होगी। इसके सिवाय दूसरा एक बड़ा भारी कारण यह भी जान पड़ता है कि हम लोगों की आसक्ति जितनी निवृत्तिमार्ग की ओर रहती है उतनी वह प्रवृत्तिमार्ग की ओर नहीं पाई जाती। सब जग मिथ्या है, संसार के यावत् व्यवहार अनित्य हैं; यह सब ईश्वरी माया का खेल है।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै रामचरण छत्तीन।

ऐसे ऐसे विचारही सदा जिनके मन में विद्यमान रहते हैं, जिनकी चित्तवृत्ति सदा परमार्थही की ओर संलग्न रहती है ऐसे लोगों को रक्तपात तथा राज्यों के हेर फेर आदि के वर्णन कर नर-स्तुति करने की यदि घृणा होगई हो तो इसमें आश्चर्य्यही क्या है? * तात्पर्य्य यह कि हमें अपने देश में इतिहास कर्त्ता न होने के ये दो गुरुतर कारण जान पड़ते हैं।

(४) ऊपर जो यह लिखा जा चुका है कि प्राचीन हिन्दू लोगों में इतिहास लिखने की परिपाटी नहीं थी इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इस विषय का परिचय प्राप्त करने के लिये हमारे पास कोई साधन ही नहीं हैं। इस लेख के आदि में जो पद्य लिखा गया है उससे हमारे विज्ञ पाठक गण सहजही में जान सकते हैं कि हमारे पूर्वज लोग इतिहास की महिमा को नहीं जानते थे ऐसी बात नहीं है। हां, यह बात भलेही हो कि संस्कृत में इतिहास के अच्छे

---

* कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। शिर धुनि गिरा लागि पछिताना।
तु० रा० बाल कांड।

ग्रन्थ न हों, पर मूल पूर्व घटनाओं को लिख रखने का हम लोगों को चाव ही नहीं था यह बात सर्वथैव निर्मूल है। इस लेख के आदि का श्लोक जिस ग्रंथ से उद्धृत किया गया है वह "राजतरंगिणी" ग्रंथ ही इस विषय का एक बड़ा भारी प्रमाण है। इस ग्रंथ में काश्मीर देश के राजाओं का वर्णन आदि से लेकर उस देश के अकबर के आधीन होने तक का पाया जाता है। इस इतिहास को भिन्न भिन्न पंडितों ने अपने अपने समय पर्य्यन्त ला पहुंचाया है। संस्कृत के ग्रंथ लेखकों का समय निर्द्धारित करने के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो सकता है। उक्त उदाहरण से हमारे विवेकी पाठकगण जान सकेंगे कि हमारे पूर्व्वज लोगों को इतिहास लिखने का चाव नहीं सा था यह बात नहीं हैं। हां यह बात अवश्य रही होगी कि इस ओर उन लोगों की प्रवृत्ति अधिक नहीं रही होगी। पर तो भी उक्त जैसे ग्रंथ प्राचीन काल में कुछ कम नहीं लिखे गए होंगे। आज दिन हमारे वे ग्रंथ काल के उदर में यद्यपि लीन होगए हैं। तथापि संभव है कि उनमें से कुछ ग्रंथ कहीं उपलब्ध हों। हमारा यह अनुमान यदि सत्य भी हो जाय तो भी इससे हम लोगों को तादृश लाभ की संभावना नहीं है क्योंकि आज कल अनुसंधान और आविष्कार करने का ठेका तो हम लोग दूसरों को ही दे चुके हैं!

(५) अपने देश का प्राचीन इतिहास हमें उक्त ग्रंथों से तो ज्ञात होता ही है पर उनके अतिरिक्त और भी साधन हैं जिनके द्वारा हमें वह ज्ञात हो सकता है। प्राचीन यीक लोग बड़े अनुसंधान प्रिय थे; उन्हें हमारे देश का यद्यपि बहुत कुछ ज्ञान नहीं था; तथापि उनके ग्रंथों में हमारे देश के उत्तर विभाग के लेख पाए जाते हैं। वे लेख यहां के प्राचीन इतिहास का परिचय कराने के लिये कुछ सहायक हो सकते हैं। मिस्र देश में टालेमी नाम का एक विख्यात भूगोलवेत्ता हो गया है, उसके ग्रंथों से, उसी प्रकार चीनी लोगों के ग्रंथों से प्राचीन भारत के विषय में बहुत कुछ बातें ज्ञात हो सकती हैं। इसी प्रकार भूतपूर्व्व जयस्तंभ ताम्रपत्र और गुफा मंदिरों द्वारा प्राचीन काल का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। इन के सिवाय "मुद्राराक्षस" "मृच्छकटिक" आदि ऐतिहासिक

नाटकों द्वारा भी प्रसंग विशेष पर प्राचीन इतिहास की कुछ बातें ज्ञात हो सकती हैं। तात्पर्य्य संप्रति हमें अपने देश के इतिहास का परिचय इसी प्रकार की स्फुट सामग्री से प्राप्त हो सकता है। आदि से शृंखलाबद्ध लिखा हुआ इतिहास यदि होता, तो उससे जैसे पूर्ण ज्ञान की संभावना थी वैसी अब बिलकुल नहीं है।

(६) इतिहास का अभाव हमारी प्राचीन विद्या का बड़ा भारी दूषण है। अब नीचे संक्षेप से इस बात का वर्णन लिखा जाता है कि यह शास्त्र प्रथम कहां उद्भूत हुआ और वहां से इसका कहां कहां और कैसे कैसे उत्कर्ष हुआ।

समस्त जग में जो ज्ञान फैला हुआ है उसकी उत्पत्ति के स्थान प्रधानतया दो हैं। एक भारतवर्ष; और दूसरा ग्रीस अर्थात् यूनान देश। पहिला देश जैसे एशिया महाद्वीप का नाका था, वैसे ही दूसरा यूरोप का था। अर्वाचीन काल में यूरोप के सब देशों में जो उन्नति हुई है उसकी मातृभूमि एकमात्र यूनान देश है। अब इधर विद्या कलादिकों की इंग्लैंड प्रभृति देशों में बहुत उन्नति हुई है और उत्तरोत्तर वह बढ़ती जाती है यह बात सच है पर जब हम इन सब के आदिपीठ का अनुसंधान करते हैं तो हम उक्त यूनान देश पाते हैं। सारांश यूरोप में इतिहास लिखने की जो परिपाटी प्रचलित हुई है उसका कारण उक्त यूनान देश ही है। इस देश में जो पहिला इतिहास लेखक हुआ है उसका नाम हिरोडोटस् था। जैसे होमर को लोग आद्यकवि कहते हैं उसी प्रकार इसको आद्य इतिहास-कार कहते हैं। यूनानी लोगों का पारसीक लोगों के साथ जिस समय घमासान युद्ध हो रहा था उसी समय इसका जन्म हुआ था। इसने दूर दूर के देशों में यात्रा करके अपने इतिहासोपयोगी बहुत सी सामग्री एकत्रित की थी और प्रथमतः यूनानी भाषा में इतिहास लिखा था। उसके देश में "आलिंपिक् गेम्स" नामक जो पांच पांच वर्ष में सार्वजनिक उत्सव होते थे उनमें से एक में उसने अपने उस इतिहास को अपने देश भाइयों को पढ़ सुनाया था। इस ग्रंथ का विषय देशाभिमान का होने के कारण अर्थात् उसमें यूनानी लोगों के पराक्रम के वर्णन के साथ साथ और भी अनेक कौतूहल की बातें

चतुराई से लिखी जाने के कारण वह ग्रंथ लोगों का बहुत ही प्रेम पात्र हो गया। उन लोगों को वह ग्रंथ इतना प्यारा लगा कि वहां पर एकत्रित हुए लोगों ने अपने यहां की नव विद्याधि देवताओं के नाम से उस ग्रंथ के नव सर्गों को लक्षण संयुक्त कर दिया। कहा जाता है कि इसी समय जब हिरोडोट्स अपना उक्त इतिहास लोगों को सुना रहा था, एक दूसरी चमत्कृतिजनक यह बात हुई कि, उस समाज में एक नव वर्ष का लड़का था वह उसके इतिहास को सुनकर इतना द्रवित हो गया कि उसके नेत्रों से आंसू प्रवाहित होने लगे। उस लड़के की उक्त अवस्था को देखकर हिरोडोट्स ने उसके पिता से यह भविष्य कथन किया कि यह तुम्हारा पुत्र बड़ा नामी इतिहासकार होगा। उसकी भविष्यद्वाणी वास्तव में सत्य हुई। वह छोटा बालक आगे यूनान देश का सुतरां समस्त जग का परमोत्कृष्ट इतिहासकार थ्यूसीडाइडीज हुआ। अस्तु; इसी प्रकार यूनान में और भी कई इतिहासकार हुए। उन सब में उक्त दोनो के समान विख्यात तीसरा इतिहासकार साक्रटीज़ का शिष्य ज़िनोफन हुआ। यूनानी लोगों के वीर्य्य और विभव का अस्त होने पर रोमन लोगों का उत्कर्ष हुआ। उस समय उनके यहां भी कई इतिहास लेखक हुए। उनके नाम ये हैं। लिव्ही, सालस्ट, सीज़र, प्लटार्क, टासिटस् इत्यादि। हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष लों राजलक्ष्मी रोमन लोगों पर प्रसन्न रही पर उसके अनंतर उसने उन्हें छोड़ कर अरब और तुरक लोगों को अपना कृपापात्र बनाया। इन अरबों की शूरता के अतिरिक्त उनकी निज की बातें बहुत कम पाई जाती हैं। इन लोगों ने अपना धर्म यहूदी और खिस्ती धर्म में कुछ न्यूनाधिक करके बना लिया था; उसी प्रकार से हिंदू और यूनानी लोगों की विद्या और कलाओं को लेकर उन्हें अपने नाम से प्रसिद्ध किया था। अन्यान्य बातों के सदृश इतिहास लिखने की परिपाटी भी उन लोगों ने जान पड़ता है यूनान से ही ली होगी। तात्पर्य्य यह कि इतिहास की इस प्रकार यूनान में उत्पत्ति हुई और वहां से वह सब जग में फैला। ऊपर यह बात उल्लिखित हो ही चुकी है कि आधुनिक अंगरेज़ लोगों ने इतिहास लिखने की परिपाटी उक्त यूनानी तथा रोमन लोगों से ही ली है; और संप्रति ये ही लोग विशेष

उन्नत होने के कारण इतिहास लिखने की उक्त परिपाटी इन्हीं लोगों में पाई जाती है। इसके सिवाय दूसरी एक बात यह भी है कि आज कल भूगोल का ज्ञान हो जाने के कारण अपर देशों के इतिहास भी इन लोगों ने लिख रखे हैं।

(७) इस विषय के प्राक्कथन के स्वरूप में जिन जिन बातों का वर्णन होना उचित था उनका यहां लों वर्णन किया गया। अब स्वयं इस विषय के संबंध से विचार करते हैं। प्रथमतः इतिहास से क्या लाभ होता है? आपाततः यह प्रश्न बहुत ही अनुचित जान पड़ता है और साथही यह भी जान पड़ता है कि ऐसा प्रश्न कोई करता ही नहीं होगा। क्योंकि इससे और कुछ लाभ न हुआ तो मनुष्य की निसर्गजात जिज्ञासा की तृप्ति तो होती है। यह क्या कुछ कम लाभ है? इस अंतिम लाभ के सिवाय इतिहास के पठन से और जो जो लाभ होते हैं उनका आगे यथास्थान उल्लेख किया ही जायगा। पर ऐसी अवस्था में भी ऐसे मनुष्य कम नहीं पाए जाते जिन्हें इतिहास में कुछ अर्थ नहीं जान पड़ता, अतः जो उसका तिरस्कार किया करते हैं, जिनके मन को ज्ञान का कभी स्पर्श ही नहीं हुआ, वा वैसा होने देने की ईश्वर की इच्छा नहीं जान पड़ती, वे लोग यदि उक्त जैसी सम्मति प्रकाशित करें तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। पर कौतूहल की बात तो यह है कि जिन की विचारशक्ति प्रौढ और प्रखर दीख पड़ती है, और जो समंजसता के लिये गण्यमान्य समझे जाते हैं, उनकी भी इतिहास विषयक अरुचि कई बार देखी सुनी गई है। इसके उदाहरण स्वरूप में अंगरेज़ों के परम प्रसिद्ध ग्रन्थकार जान्सन् का नामोल्लेख किया जा सकता है। इतिहास के विषय में और विशेषतः प्राचीन इतिहास के विषय में यह सदा अपना तिरस्कार ही प्रदर्शित किया करता। इस विश्वविख्यात ग्रंथकर्त्ता के कई विचार बड़े विलक्षण थे, उसमें यह भी एक उन कई दुराग्रहों में से था जो उसके साथ आजीवन पर्य्यन्त बने रहे थे। अस्तु। हमारे यहां भी यह कहने वाले लोगों का अभाव नहीं है कि हमें पिछली गई गुज़री बातों से क्या करना है? वे लोग गए आए पार पड़े। अब उनकी राम कहानी हमारे किस काम की? बाजीराव ने

दिल्ली को लेलिया, नाना फड़नवीस ने ऐसी चतुराई की, आदि बातों से हमें क्या लाभ ? हमारा मतलब तो आज कल की बातों से है। जिससे हमें न तो कुछ लाभ ही है और न कुछ हानि ही है ऐसी पुरानी बातों को संग्रहीत करने, तथा पुराने लेखों के पढ़ने आदि के लिये बिना कारण परिश्रम करने से क्या लाभ ? साहब लोगों को कुछ काम नहीं रहता, उन्हींके ये सब काम हैं ! ऐसे बेमतलब के काम कौन करते बैठे। उनसे लाभ ही क्या होगा ? ठीकही है ! जब लों आयुष्य है तब लों खालेना, पीलेना, दुपहरिया के आराम में अंतर नहीं पडने देना, सायंकाल के समय अच्छे कपड़े पहनकर फिरने को जाना, गंधी की दूकान पर जाकर थोड़ी देर बैठना, (उद्धारक वा सुधारकों में अग्रगण्य होना हो तो) पुस्तकालय में जाकर दो चार घड़ी इधर उधर की बातें करके आराम के साथ अपने घर आना; इस श्लाघ्य रीति से जो लोग सदा अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें बाजीराव से क्या मतलब और सिकंदर से क्या मतलब। अपने जीवन का जिस किसी को सदुपयोग करलेना हो उसे उचित है कि वह उक्त जैसे सद्गुरु के चरणों की शरण लेवे; क्योंकि संसार में यदि किसी ने तत्व को जाना है तो इन्होंने जाना है। फिर क्या देर है ? बाबा तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं।

जनि आश्चर्य्य करै सुनि कोई।
सत संगति महिमा नहिं गोई।
मज्जन फल पेखिय तत्काला
काक होहिं पिक बकउ मराला।

निदान इतिहास का नाम सुनकर भौंह चढ़ाने वाले उक्त दो प्रकार के लोग पाए जाते हैं। एक उक्त दुपहरिया में लेट लगाने वाले। इनकी सम्मति यथार्थ मे किसी अर्थ की नहीं होती; और उन की सम्मति को यदि कोई समादृत न करे तो उससे वह अपना अपमान हुआ सा भी नहीं मानते। उनका सुस्वादु भोजन, दुपहरिया का सोना, सुरती का सेवन, और गप शप करना आदि जब लों यथावत् निर्वाहित होता चला जाता है तबलों वह अपर किसी बात

को अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। यह हुआ एक वृंद और यह है भी बहुत बड़ा। दूसरा वृंद जान्सन् जैसे दुराग्रही और हठधर्मी लोगों का है। इनकी सम्मति अपर विषयों पर भलेही समादृत होती हो, पर जिन विषयों पर इन लोगों ने स्वप्न में भी दृक्‌पात नहीं किया, और जिन विषयों का मर्म जानने के लिये इनकी स्थूल बुद्धि स्वभावतः समर्थ नहीं है, उन विषयों पर प्रकाशित हुई उन की सम्मति को अनुचित मानने में कोई हानि नहीं है। बहुतेरे अंगरेज़ कवियों के ग्रंथों की जान्सन् की लिखी हुई समालोचनाएं जितनी मान्य हैं वा किसी संगीत के ग्रंथ की, यदि वह आलोचना करता तो वह जितनी मानार्ह हो सकती, उतनी ही मानार्ह उसकी वर्तमान विषय की सम्मति भी मानी जा सकती है। तात्पर्य यही है कि इन दोनों वृंदों की आलोचनाएं विचार क्षेत्र में लेने के योग्य नहीं हैं। अब आगे इतिहास के जो जो उपयोग हैं उनके विषय में लिखा जाता है।

(८) एक उपयोग का अर्थात् जिज्ञासातृप्ति का अभी ऊपर उल्लेख होही चुका है। ईश्वर ने इस मनोधर्म की मनुष्य में अधिक प्रबलता रखी है। इसकी वास्तविक शक्ति का यथार्थ ज्ञान उन्नति के समय में नहीं हो सकता। क्योंकि उन्नति के समय में मनुष्य के मन की नैसर्गिक गति उसके शरीर की नाईं समाज बंधनों के कारण बहुतांश में रुक जाती है: अर्थात् आदि में जैसी उसकी स्वेच्छा प्रवृति हो सकती है, वैसी सुधार के काल में नहीं हो सकती। विचार का स्थल है, कि गगन मंडल के लोगों से मनुष्य का क्या संबंध है? चाहे पृथ्वी फिरे, चाहे सूर्य्य फिरे, चंद्र चाहे स्वयं प्रकाशित हो, चाहे परप्रकाशित हो, ग्रहमाला का मध्य चाहे पृथ्वी हो चाहे सूर्य्य हो, तारे चाहे जितने हों, इसमें मनुष्य का क्या हिताहित है? अभी कुछ दिनों के पूर्व्व लोग मानते थे कि सूर्य्य फिरता है, पर अब यह माना जाने लगा है कि पृथ्वी फिरती है, तो इससे यह तो हुआ ही नहीं कि रोगी मनुष्य निरुज हो गए हों, वा अकिंचन लोग धनाढ्य हो गए हों, ? प्रचंड परिश्रम और अनुसंधान कर दूरवीक्षण यंत्र प्रस्तुत कर, नाना प्रकार के गणित कर, भिन्न भिन्न प्रमाणों को

एकत्रित कर गणक लोगों को वा सर्व्व साधारण को क्या लाभ हुआ?—सच है। अणुमात्र भी लाभ नहीं हुआ! सब मनुष्यों की अपेक्षा अधिकतर चतुर माने गए साक्रेटीज़ ने यही उपदेश अपने शिष्यवर्ग तथा सब लोगों को किया था। पर ऐसे पंडित प्रकांड के उपदेश को सुनकर क्या लोगों ने तद्विषयक जिज्ञासा छोड़ दी? सूर्य्य के बिंबों का चंद्र ने ग्रास किया, वा शुक्र सूर्य्य के आड़ में आया, कि लोगों में से कोई भारतवर्ष के लिये, कोई कुमर द्वीप (अमेरिका) के लिये, कोई दक्षिण समुद्र के लिये अभी भी दौड़ते हैं वा नहीं? जिज्ञासा से प्रेरित हो कर प्राणपण के साथ भी लोग आकाशयान पर आरूढ हो कर मंगल का इतिवृत्त जानने के लिये यात्रा करते हैं वा नहीं? अस्तु; इस कथन से यह निष्पन्न होता है कि मनुष्य मात्र में जिज्ञासा की अत्यंत उच्छृंखलता पाई जाती है। यह स्पष्ट है कि यदि इसका सर्वथैव अभाव होता तो आज दिन संसार की आद्यावस्था में आकाश पाताल का अंतर नहीं होने पाता। सारांश गगन मंडल के दूर दूर के गोलों के विषय में यदि मनुष्य के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो जिस गोल पर वह रहता है उसके भिन्न भिन्न प्रदेशों में कौन कौन सी घटनाएं हुईं उन्हें जान लेने के लिये क्या वह उत्कंठित नहीं होगा?

(९) इतिहास के जिस उपयोग का ऊपर वर्णन किया गया है वह सब की अपेक्षा यद्यपि प्रथम, सरल और छोटा है; तथापि इतिहास के मूलारंभ का वही बीज स्वरूप कहा जाता है। उससे बढ़िया और दूसरा उपयोग नीतिशिक्षा का है। इतिहास में सज्जनों का जय और दुर्जनों का पराजय यद्यपि निरंतर नहीं पाया जाता, तथापि उनका परिणाम लग भग इसीके पाया जाता है। इसके सिवाय दूसरी यह बात भी लक्षित होती है कि सत्यता के साथ बर्त्ताव करने पर भी जब सदा यह नहीं देखा जाता कि उसका परिणाम अच्छा ही होता हो तो फिर यह तो स्पष्टही है कि दुष्टता के साथ बर्त्ताव करने पर उसका परिणाम कदापि अच्छा नहीं होगा! मनुष्य का सर्वथा यदि हित हो सकता है तो वह इसी मार्ग का अनुधावन करने से हो सकता है; कुमार्ग से उसका संपादित होना

तो सर्व्वतोभाव असंभव है। ऐसे ही घोर आपत्ति के समय भी जिन का धैर्य्यबल डगमगाता नहीं वे महानुभाव विपत्काल में भी जिस सुख का भोग करते हैं वह सुख दुष्ट एवं कुत्सित मन के लोगों को अपनी भाग्योन्नति के समय भी प्राप्त नहीं होता। कहने का तात्पर्य्य यही है कि, इस संसाररूप महानाटक में आज पर्य्यंत कौन कौन से पात्र अपनी अपनी भूमिका को समाप्त कर निष्क्रान्त हो गए इस बात का चित्त पर यदि भली भांति संस्कार हो जाय तो विवेकी मनुष्य को भले और बुरे मार्ग का ज्ञान होने में कुछ देर नहीं लगती। सच्चा सुख, सच्चा समाधान और सच्ची प्रतिष्ठा किस बात में है यह भी उसे ज्ञात होने लगता है। सहस्रों लोगों का अनुभव उसे थोड़े से में प्राप्त हुआ सा जान पड़ने लगता है; उसके योग से उसका विचार तेत्र दीर्घ हो जाता है; और वह यदि तादृश बुद्धि एवं दृढ़ निश्चय का हो, तो तुरंत ही किसी को अपना आदर्श मान लेता है और जैसे नाविक लोग ध्रुव नक्षत्र के आधार पर अपनी नौका को चलाते फिराते हैं, वैसे ही वह भी अपने आदर्श पुरुष के चरित को अपने सम्मुख रख तदनुरूप अपनी जीवन यात्रा को संपादित करता है। तात्पर्य्य, इतिहास से इस प्रकार सदुपदेश प्राप्त होता है; यही कारण है कि "इतिहास प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा प्रदर्शित किया हुआ ज्ञान है"।

(१०) इतिहास से मन को उन्नति और प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। अर्थात् उसके निरंतर के पठन पाठन से चित्त शान्त एवं स्थिर रहता है, और साथ ही साथ वह उन्नत भी होता जाता है। इसका कारण स्पष्टही है। किसी विद्वान् ग्रंथकार का वचन है कि "इस संसार में जो जो महा पुरुष होगए हैं उनके जीवनचरितों को इतिहास कहते हैं।" अर्थात् ऐसे पुरुष जो कार्य्य करते हैं उन्हीं से इतिहास भरा रहता है उन्हें यदि उससे पृथक् कर दिया जाय तो उसमें रही क्या सकता है? कुछ भी नहीं रह सकता। सारांश आज पर्य्यंत इस धरातल के भिन्न भिन्न देशों में जो पुरुषरत्न हुए हैं उनका सत्समागम यदि सदा प्राप्त हो सके, तो इससे बढ़के और क्या लाभ हो सकता है? यूनान में प्लूटार्क नाम का एक नामी इति-

हासकार था; उसने अपने "श्रेष्ठजन चरितावली" नामक सर्व्व प्रसिद्ध तथा सर्व्वप्रिय ग्रंथ की भूमिका में लिखा है कि इस ग्रंथ में जिन श्रेष्ठ लोगों की उज्वल चरितावली लिखी गई है उसके मनन से मुझे जो लाभ हुआ है वह सर्व्वथैव अनिर्वचनीय है; किसी अनुचित कृत्य की ओर जब जब मेरा मन आकृष्ट होता, वा जब जब मुझे सदाचार विषयक अपना उत्साह कुछ क्षीण हुआ सा ज्ञान पड़ता, तब तब मैं इन लोगों के चरित पढ़ता; उनके द्वारा मेरी मनोवृत्ति पुनः पूर्व्ववत् हो जाती । अस्तु; सत्समागम की महिमा ऐसी ही है । हमारे भाषा तथा संस्कृत के कवियों ने इस सज्जन प्रशंसा के विषय में भिन्न भिन्न कथानक तथा दृष्टांतों द्वारा बहुत कुछ लिखा है। इन दृष्टांतों में से हमारे महाकवि बाबा तुलसीदासजी की लोहे पारस की प्यारी उपमा का यहां नामोल्लेख किया जा सकता है । * लोहा देखने में कितना खराब और कम कीमत का रहता है ! पर ज्योंही उसका पारस मणि के साथ संघर्षण होता है त्योंही उसे सर्व्वोपरि श्रेष्ठधातु सुवर्ण का यथार्थ नाम प्राप्त हो जाता है ! इसी प्रकार से मनुष्य का भला वा बुरा होना बहुधा उसकी उन अवस्थाओं पर निर्भर है जो उसे प्राप्त होती जाती हैं। किसी किसी की तो यह भी सम्मति है कि वह सब उन अवस्थाओं का ही फल है। अनुमान दो सौ वर्ष के पूर्व्व इंग्लेंड में लाक नाम का एक सुविख्यात तत्ववेत्ता था; उसीने यह सम्मति स्थापित की है। † इस सम्मति के पक्षपातियों का कथन यह है कि, मनुष्य का मन आदि में स्वच्छ दर्पण कैसा वा कोरे कागज़ कैसा शुद्ध रहता है। उस पर प्राक्तन अर्थात् आगे के भले बुरे किसी विकार का संस्कार नहीं रहता । वे आगे अपनी अपनी स्थिति विशेषानुरूप प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होते हैं और तदनुसार उसका मन भले वा बुरे कामों की ओर आकृष्ट होता है । अस्तु; यह जो हो सो हो । पर इसमें तो अणुमात्र भी संदेह नहीं है कि मनुष्य को आगे जैसी संगति और अवस्थाएं प्राप्त होती जाती हैं वैसे वैसेही बहुधा उसका मन भला वा बुरा होता जाता है । संस्कृत में एक वाक्य है:-

---

* शठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परसि कुधात सुहाई ॥

† प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते । भर्तृहरि ।

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति।

'जहां घांस पात कुछ नहीं हो वहां यदि आग गिर पड़े तो स्वयं बुझ जाती है।' सारांश इसी प्रकार से मनुष्य के अच्छे और बुरे गुणों का पूर्ण रूप से विकाश होने के लिये उस प्रकार की अवस्था के अनुकूल होना उसे परम आवश्यक है। विचारने की बात है कि संप्रति हमारे यहां शिवाजी वा हैदर जैसे राज्यकर्त्ता क्यों नहीं उत्पन्न होते? अथवा नाना फडनवीस जैसे राजनीतिज्ञ पुरुष क्यों नहीं उत्पन्न होते? इसका कारण किसी पर अविदित नहीं है। वह यही है कि वैसे गुण यदि किसी मनुष्य में हों तो भी उनका विकाश होने के लिये वर्त्तमान अवस्था में यत्किंचित् भी अवकाश नहीं है। इस प्रतिपादन से यह निष्पन्न हुआ कि किसी गुणविशेष का उत्कर्ष होने के लिये मनुष्य को तदुनुकूल स्थिति की नितांत आवश्यकता है। वैसे मनुष्य के सत्समागम का लाभ प्राप्त होना यह भी उक्त स्थितिविशेष में से एक प्रधान बात है। इस धरातल पर जो जो नामी पुरुष हो गए हैं उनको यदि वैसा सत्समागम प्राप्त नहीं होता तो वे वैसे कदापि नहीं होते। अब एक बिलकुल इधर का ही उदाहरण लीजिए। इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध ग्रंथकार जान् स्टूअर्ट मिल को, जिसे हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए, यदि उसके पिता का सत्संग प्राप्त न हुआ होता तो यह कब संभव था कि उसकी बुद्धि को इतनी प्रगल्भता प्राप्त हो जाती। निःसंदेह उसकी बुद्धि को इतनी परिपक्वता कदापि प्राप्त नहीं होती। जब कि वह बुद्धिमान् था तब तो वह किसी न किसी प्रकार से निःसंदेहही प्रसिद्ध होता; पर इतनी योग्यता उसे अन्यथा कदापि प्राप्त नहीं होती। इस बात को इस ग्रंथकार ने "आत्मरचित चरित में" स्वयं स्वीकृत किया है। इस ग्रंथ में वह लिखता है कि पच्चीस वर्ष के पूर्व्व जन्म ग्रहण कर के जितना ज्ञान मैं संपादित करता उतना मैंने आज अपने पिता की शिक्षा से प्राप्त कर लिया। अस्तु; इसी प्रकार से प्राचीन काल के शिकंदर, हनिबल, सिपिओ प्रभृति तथा अर्वाचीन काल के अपने यहां के जेठे बाजीराव, टीपू सुलतान आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। तात्पर्य्य संगतिविशेष का फल अचिंत्य होता

है इसका कारण जानने पर विदित होगा कि वह तादृश गहन नहीं है। जन्म लेकर मनुष्य को संसार के जब थोड़े बहुत व्यवहार ज्ञात पड़ने लगते हैं तब उसे कुछ न कुछ कार्य्य अवश्यमेव करना ही पड़ता है। वह संसार में सर्व्वथा निर्व्यापार कदापि नहीं रह सकता। यह यदि ऐसा ही है तो फिर उसे क्या करना चाहिए? निकटवर्त्ती पड़ोसियों की जो बातें वह देखै सुनैगा उन्हेंही वह करेगा। और है भी यह बात ऐसीही। यही कारण है कि लड़के बच्चों के चित्त पर जितना उनके माता पिता के गुणों का संस्कार होता है— उनमें से भी विशेषतः माता के—उतना अन्य के गुणों का संस्कार नहीं होता। तात्पर्य्य अनुकरण की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति यदि इस प्रकार स्वाभाविक एवं बलवती पाई जाती है, तो यदि बाल्यावस्था से ही उसे इतिहास और चरित पढ़ने का चाव लग जाय तो न जाने उससे उसे आगे कितने लाभ हों। सज्जन तथा महानुभाव पुरुष के निरंतर के सत्समागम का लाभ सहस्रों मनुष्यों में से किसी एक ही को प्राप्त हो सकता है। अवशिष्ट लोगों को प्रायः इसके विपरीत ही सदा प्रसंग होते हैं। ऐसी अवस्था में यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे लोगों के संसर्ग से जो परिणाम हठात् होते हैं, उन्हें नष्टकर चित्त पर सदाचार तथा यथार्थ औदार्य्य को प्रतिबिंबित करने के लिये ऊपर कहे साधन के अतिरिक्त दूसरा और कौन सा साधन है? इसके सिवाय दूसरी एक बात यह भी है कि उक्त जैसे महात्मागण ईश्वर की कृपा से किसी देश में एकही बार उत्पन्न होते हैं। और तब उनके जीवनक्रम को देखकर और और लोग भी उनका अनुकरण कर योग्यता को प्राप्त होते हैं। पर उस काल के बीततेही सब बातें विस्मृति की ओट में होजाती हैं। इतिहास और जीवनचरित लिखने की परिपाटी यदि न रही तो दस पचास वर्ष में उनको जानने वाला एकभी मनुष्य नहीं पाया जाता! तो फिर आगे होनेहार लोगों के चित्त में उत्साह क्यों कर उत्पन्न हो? और देश की प्राचीन श्रेष्ठता क्यों कर रहे? इतिहास की निंदा करनेवाले जिन लोगों का ऊपर वर्णन किया गया है उनसे इतनाही पूछना चाहिए कि इतिहास से और दूसरा कोई लाभ नहीं है तो यही एक

क्या कम लाभ है ? होमर कवि आकिलीस के पराक्रम का यदि वर्णन नहीं करता तो शिकंदर का होना कब संभव था ? व्यास यदि पांडवों के चरित का वर्णन नहीं करते तो यह क्या कभी संभव था कि शिवाजी यवनों से हिंदुओं की राज्यश्री को पीछे लेलेता। शिकंदर का इतिहास यदि उपलब्ध नहीं होता तो सीज़र काहे को उत्पन्न होता? और सीज़र का इतिहास यदि नहीं होता तो नेपोलियन क्यों कर उत्पन्न होता सारांश अनुकरण का फल बड़ा विलक्षण है। पर उन पुरुषों के अनंतर उनका स्मरण किसी को भी रहता नहीं। इसीलिये इतिहास की आवश्यकता है और वह इसीलिये कि यदि देश की दशा बिलकुलही बदल जाय तो भी, इतिहास को पढ़कर आगे पीछे किसी को न किसी को उससे उत्साह और प्रेरणा प्राप्त होती है। यूनान, रोम, और अब इधर, इंग्लैंड, फ्रान्स आदि देशों के राज्य जो इतने दिन टिके इसका यह निःसंदेह एक कारण हो सकता है। पर कोई कहेंगे कि, रण-शूर तथा राजनीतिज्ञ पुरुष सभी देशों को कहां अनुकूल हो सकते हैं सचमुच अनुकूल नहीं हो सकते। पर इससे क्या इतिहास का उपयोग कुछ कम हो सकता है ? पृथ्वी पर आज दिन सहस्रों और लाखों लोग दूरवीक्षण यंत्र द्वारा गुरु के उपग्रह तथा शनि की कक्षा को बारंबार देखा करते हैं; तो क्या उन्हें यह ज्ञान पड़ता है कि यह उपग्रह तथा कक्षादि अपने अधिकार में आ जांयगे नहीं। उपग्रह और कक्षा को देखकर विश्वनिर्म्माता चतुर शिल्पी का वैभव यदि उनके मन पर प्रतिबिंबित हो जाय तो यह क्या लाभ उक्त उपग्रह तथा कक्षा के अधिकार में आजाने की अपेक्षा शतगुणित अधिक नहीं है? तद्वतही नेपोलियन वा शिवाजी के पराक्रम को पढ़कर यदि उसे ज्ञान पड़े कि, देखो मनुष्य की बुद्धि का प्रभाव कैसा है !—कभी कभी एकही मनुष्य के हाथ में कितने लोगों के कल्याण और नाश करने की करामात रहती है ! वह इस प्रकार कि इतना बड़ा यूरोप आधीन हो जाने पर भी उस नेपोलियन की मनस्तुष्टि नहीं हुई, और अंत में एक डेढ़ वर्ष के भीतर ही उसकी क्या दशा हुई ! बड़े बड़े राजे जिसके वशवर्त्ती हो थर थर कांपते थे वही दैव दुर्विपाक वश अनंत जलराशि समुद्र के एक भीषण द्वीप में जा पड़ा और जो शरीर जीवित

अवस्था में समूचे यूरोप को अपने आतंक से भय चकित कर डालता था, उसेही एक शिला के नीचे से खोद लाकर उसी की राजधानी में समारंभ के साथ समाधिस्थ करने के लिये उसीके शत्रु की आज्ञा लेनी पड़ी। हा हंत! लाखों मनुष्यों को नष्ट कर उसने क्या प्राप्त किया! इतनी विशाल बुद्धि के साथ उसमें परोपकार की इच्छा यदि अणुमात्र भी होती तो संसार का उससे कितना न हित हुआ होता! अब शिवाजी के चरित को देखिए! बाप ने मा के साथ जब उसे पुनवडी में रखा था तब वही दादाजी कोंडदेव ने उसे जो थोड़ा बहुत लिखा पढ़ा दिया था उतनेही ज्ञान से आगे उसने कैसा अकांड तांडव किया! जो लोग पीछे भी कभी प्रसिद्ध नहीं हुए थे और जो आगे शीघ्रही पुनः अप्रसिद्ध हो गए, जिनके न तो डील डौल से ही कुछ सामर्थ्य जान पड़ता था और न बुद्धि से ही, ऐसे लोगों में अपने को उपयोगी होने वाले गुणों को पहिचान कर उसने अपना परमप्रिय साथी बनाया, उन्हींके बल से हिंदुओं का जो राज्यभानु अनुमान एक हजार वर्ष से अस्ताचलावलंबी हो गया था, मालव के पर्वत पर उसका पुनः अरुणोदय हुआ। समस्त धरातल पर जिस नगर की श्रेष्ठता प्रसिद्ध हो चुकी थी, और जो मुगलों की राज्यश्री का सौभाग्य चिन्ह था, उस नगर को उसने यथेच्छ दो बार लूट लिया। बीजापुर को तो योहीं चुटकी बजाते बजाते उसने पीस डाला, और अभिमान से उन्मत्त हुए मुगलों को उसने ऐसा उच्छाद दिया कि उन्हें यह भासित होने लगा कि न जाने शिवाजी एक है वा दो हैं। बलिहारी है इस सामर्थ्य की। यह सामर्थ्य इसीलिये प्रशंसनीय है कि इसका बहुत सदुपयोग हुआ। तात्पर्य्य विशाल बुद्धि की अपेक्षा सदाचार का प्रेम विशेष हितावह है। मनुष्य के मन का ऐसा कुछ चमत्कार देखा जाता है कि "लाभाल्लोभः प्रवर्त्तते" जैसे जैसे लाभ होता जाता है वैसे वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है। ऐसी अवस्था में तो यही ठीक जान पड़ता है कि जितना है उसीसे संतुष्ट होकर रहने वाला श्रमजीवी मनुष्य भी बड़े राजा की अपेक्षा सुखी रहता होगा। इस प्रकार की चतुराई की अनेक बातें यदि उसके मन पर प्रतिबिम्बित हो जायं, तो क्या उसे उच्चपद मिलने

की अपेक्षा अधिक लाभ नहीं होगा? सारांश इतिहास से मन को शांति और प्रगल्भता प्राप्त होती है, यह एक उससे महान् लाभ होता है।

लङ्कापतेः संकुचितं यशोयत् यत्कीर्त्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवाद्यकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥*
बिल्हण।

(११) इतिहास का चौथा उपयोग मन का रञ्जन है। भिन्न भिन्न देशों की घटनाओं के वृत्तान्तों को जानने और उनका मनन करने से पूर्व्व लेखानुसार जिज्ञासा वृत्ति की तुष्टि तो होती ही है, पर यदि वह इतिहास तादृश शैली से लिखे हुए हों तो उन के पढ़ने से पाठकों को आनन्द भी प्राप्त होता है। इस प्रकार के ऐतिहासिक ग्रंथ यूनानी लैटिन् और पारसी भाषा में पाए जाते हैं इस प्रकार से अब इधर अंगरेज़ी भाषा में ह्यूम, गिबन् और मेकाले आदि के ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। ऐसे इतिहासों की भाषासरणी, यथायोग्य ग्रन्थरचना, कथानक की गठन, गम्भीर विचार, बीच बीच में भांति भांति की घटनाओं का परिचय देने की विचित्रता, आदि के योग से सब प्रकार के पाठकों को वे मान्य होते है। जिन्हें केवल भाषा ही सीखनी होती है, उन्हें उसका परम रमणीय रूप उनमें मिल सकता है, जिन्हें विषय की विवेचना का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है उन्हें वह उस में से प्राप्त हो सकता है, केवल कथा वार्त्ता के जो प्रेमी होते हैं उन्हें उपन्यासों के सदृश उनमें कौतूहल बोध होता है, जो तत्व-जिज्ञासा प्रिय होते हैं उन्हे परिपक्व तथा गम्भीर विचार उनमें उपलब्ध हो सकते हैं, और जिन्हे चमत्कारिक एवं कौतूहल जनक कथा वार्त्ताओं का संग्रह करने की इच्छा होती है उन्हें उनमें से वह सहज में मिलजाता है। सारांश इस प्रकार से

* लंकापति रावण तथा रघुराज श्री रामचंद्र की थोड़ी बहुत जो कीर्ति आज दिन लोगों को ज्ञात हो रही वह सब आदि कवि वाल्मीकि की कृपा का ही फल है। तात्पर्य्य बड़े बड़े राजाओं को भी उचित है कि वे लोग कवि की अवहेलना नहीं करें।

इतिहास भिन्न भिन्न रीतियों से मन का रञ्जन करता है। उपन्यासों को पढ़ती बार जैसे परिश्रम बोध नहीं होता किन्तु उनसे मन बहल जाता है, उसी प्रकार से प्रायः आधुनिक कई उत्कृष्ट इतिहासों से वह बहल सकता है, और यही कारण है कि अब इधर इतिहास के पठन पाठन की प्रवृत्ति अधिकाधिक हो वह सब को सामान्यतः जितना विदित रहता है उतना पूर्व्वकाल में कदापि नहीं रहा होगा। यह बात उभय प्रकार से लाभदायक हुई। प्रथम तो इसलिये कि इतिहास का ज्ञान सर्व साधारण को उपयोगी है; और दूसरे इसलिये कि उनके योग से पहिले उपन्यास और नाटक आदि की ओर ही जो लोगों की रुचि अधिक थी वह कम हो गई। मन बहलाव के लिये दूसरा कोई प्रकार अनुकूल न होने के कारण पहिले लोगों की रुचि उपन्यासों की ओर हो अधिकाधिक आकृष्ट होती थी; और इसके योग से मुख्यतया नवयुवकों को उनसे बहुत हानि पहुंचती थी। क्योंकि उन्हें पढ़ने वाले बहुधा नवयुवक हुआ करते थे, और उनके लेखक भी वैसे ही; फिर क्या देखना है? उस अवस्था में अन्तःकरण की वृत्ति नितांत चंचल रहती है यही कारण है कि अद्भुत एवं असंभव बातों में मन मग्न हो शृंगार वीरादि रसों में जो उनमें अतिशयोक्तियों के साथ वर्णित रहते हैं—तल्लीन हो जाता था। "डान क्विक्ज़ोट[1]" वा "रासेलस" के ज्योतिषी की जो दशा हुई उसी प्रकार की बहुधा इन पाठकों की दशा होजाना संभव था। अर्थात् विलक्षण कल्पना और चमत्कारिक तरंगों के मन में सदा प्रतिबिंबित होजाने के कारण ये लोग लौकिक व्यवहार के लिये किसी काम के नहीं रहते। इसके

---

* इस विश्वविख्यात ग्रंथ को स्पेन देश के एक ग्रंथकार ने जब वह दिवानी जेल में था अपने मन बहलाव के लिये लिखा था। इस ग्रंथ के नायक का नाम ही इस ग्रंथ को दिया गया है। इसने "नाइट" लोगों की कथाएं इतनी अधिक पढ़ीं कि उनके मारे यह पागल होगया और इसके चित्त में वही बात जम गई कि मैं भी इनके सदृश पराक्रम करूं, उन पराक्रमों को करने के लिये घर से निकलने पर उसे जिन जिन आपत्तियों का लक्ष्य बनना पड़ा उनका इस ग्रंथ में वर्णन किया गया है। इसमें हास्य रस चारों ओर ओत प्रोत भरा हुआ है।

सिवाय उपान्यासों के पठन पाठन से मन बिगड़ कर निःसत्व होजाता है। इनके उदाहरण स्वरूप में हिन्दी के कई उपन्यासों का नामोल्लेख किया जा सकता है। इंग्लैंड में सर वाल्टर स्काट के पूर्व्व जो कई उपन्यास लेखक हुए हैं उनमें जो बड़े नामी थे, उनके ग्रंथ भी अश्लील थे। पर इस अश्लीलता की जिसे अंतिम सीमा देखनी हो "हेपट्यामेरान्" और "डिक्यामेरान्" नामक ग्रंथों को देखे पहिले ग्रंथ का रचयिता बोकाशियो नाम का एक इटालियन है और दूसरे को उसीका अनुकरण कर एक फरासीसी बीबी ने रचा है। पहिले ग्रंथ की रचना का समय ध्यानास्थित करने के योग्य है। फ्लारेन्स नाम के नगर में एक समय भीषण महामारी हुई थी। उस समय वहां की सात स्त्रियां तथा तीन युवा पुरुष ऐसे दस जने नगर के बाहर एक बाग में कुछ दिन लों रहे थे। वहां उन लोगों ने परस्पर के मन बहलाव के निमित्त जो कौतूहलोत्पादक कथाएं कहीं सुनीं उन्हीं का संग्रह स्वरूप यह ग्रन्थ है। दूसरे ग्रन्थ की निर्माणकर्त्री तों उक्त कथनानुसार एक ललना ही है, इस ग्रंथ में उसने कई बातें आत्मानुभव की लिखी हैं! अस्तु। इन ग्रंथों का इतना सूक्ष्म परिचय यहां देने से यही अभिप्राय है कि इन दो ग्रंथों द्वारा समस्त सुधार का आगर जो योरोप, अखिल सदाचरण का निधान जो इसाई धर्म्म, अशेष सद्गुणों की खान जो वहां की कुलस्त्रियां वे सब किंचित् हमारे पाठकों के ध्यान में आजायँ! पर यह बात इटालियन और फरासीसी लोगों के विषय में हुई कि जो सब योरोप में बड़े नख़रेबाज और कामी माने जा चुके हैं। अब हमारे अंगरेज़ लोग, जो उक्त लोगों को सदाचार और नीति के निधान मानते हैं, इन पुस्तकों को कहां तक तिरस्कृत करते हैं यह देखना है। इसके लिये दोही बातों का प्रमाण बस होगा, पहिला यह कि, उनका आद्यकवि जो चासर है उसीने "डिक्यामेरान् की कई बातों को काव्य के रूप में वर्णन किया है। इससे यह सहज ही में ज्ञात हो सकता है कि उस इटालियन ग्रंथ का सदाचारप्रिय अंगरेज़ लोगों में कितने शीघ्र और कितना अधिक प्रचार हुआ। दूसरी बात यह कि अभी इधर ड्रैडन और पोप ने भी

वही बात की है * । अस्तु; यहां लेखनी बहुत कुछ दौड़ गई; पर हम समझते हैं कि उक्त बातों का ज्ञात होना हमारे किसी पाठक को अनभिष्ठ नहीं होगा तात्पर्य्य मन का बिगड़ना यह उपन्यासों से होने वाला एक बड़ा भारी अनर्थ है । दूसरा अनर्थ मन की दुर्बलता है । केवल उपन्यास ही पढ़ने की जिसे एक बार रुचि लगजाती है उसे फिर दूसरे विषयों के ग्रंथ पढ़ने की इच्छा नहीं होती । उपन्यास चट पट पढ़े जाते हैं और उनमें ऐसी कोई बात नहीं रहती कि जिसे समझने के लिये कुछ कठिनता उपस्थित होती हो; अतः पाठक समझने लगता है कि विद्या की सीमा का अंत यहीं है ऐसा समझ कर उच्च श्रेणी के जो शास्त्रीय ग्रंथ होते हैं उन्हें पढ़ने के लिये वह उत्साहित ही नहीं होता । क्योंकि उनको समझने के लिये पाठक को अपना सिर लड़ाना पड़ता है, क्योंकि वे क्लिष्ट और गहन होते हैं; और वह इससे होता नहीं । एक बार ऐसी आदत पड़ गई तो फिर वह टूट नहीं सकती, तात्पर्य्य यह है कि आवश्यकता से अधिक यदि पाठक की उपन्यासों में आसक्ति हो जाय तो वह मन को हानिकारक होती है । उनके निरंतर के सहवास से मन नितांत निःसत्व हो जाता है और फिर उससे परिश्रम के काम नहीं हो सकते ।

पर मनोरंजक इतिहासों द्वारा उक्त तीनों अनर्थ दूर हो जाते हैं और साथ ही उपन्यासों का कार्य्य भाग भी सिद्ध होजाता है । उनमें अर्थात् ऐतिहासिक ग्रंथों में केवल सत्यही लिखना पड़ता है, एतावता भूत राक्षस तथा 'नाइट' आदि की विलक्षण एवं अद्भुत बातें उनमें नहीं आतीं, इससे यह अभिप्राय नहीं है कि उनमें अद्भुत रस कहीं फटकने ही नहीं पाता । क्या नेपोलियन जैसे वीरों, बेकन जैसे तत्वज्ञों, और वाट जैसे कल्पकों के चरितों में अद्भुत रस की कुछ ऊनता पाई जाती है ? पर हां दोनों में कुछ भेद अवश्य रहता है । और वह भेद कैसा रहता है उसे अब देखिए । उपन्यासों को पढ़-

---

* चासर और ड्रेडन के ग्रंथ सहज में नहीं मिल सकते उनमें भी पहिले के तो ऐसे जटिल और दुर्बोध हैं कि वे सहज में बोधगम्य नहीं हो सकते । एतावता जिन्हें उक्त बातों का प्रत्यय प्राप्त करना हो उन्हें उचित है कि वे पोपके January and May नाम के काव्य को पढ़ें ।

कर जैसे कई लोग भ्रमिष्ट होगए वैसे इतिहासों को पढ़कर क्या कोई कभी होंगे? दूसरी बात मन का बिगड़ना है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि इतिहास के पठन पाठन द्वारा मन बिगड़ नहीं सकता। तीसरी बात मन की क्षीणता है। इतिहास पढने से मन क्षीण नहीं होता यह तो निर्विवाद बात है। हां उससे यह अवश्य होगा कि उसके पढने की अभिरुचि जैसे बढ़ती जायगी वैसे वैसे पाठक का मन विशाल एवं विचारक्षम होता जायगा। अधिक क्या कहें, पाठक को इसके पढ़ने की अनिवार्य्य रुचि लगगई यह उक्त दोनों का एक बड़ा भारी चिन्ह है। सारांश इतिहास सब प्रकार से हितकारी है। उपन्यासों सदृश उससे किसी प्रकार की हानि होने का अणुमात्र भी भय नहीं है। इसके सिवाय सबसे गुरुतर बात यह है कि इतिहास अक्षर प्रति अक्षर सत्य होने के कारण उसकी बातों का जैसे चित्त पर संस्कार हो सकता है वैसे उपन्यासों की बातों का चित्त पर संस्कार नहीं हो सकता।

(१२) इतिहास से पांचवा उपयोग राजनीतिज्ञ पुरुषों को है। वास्तव में इतिहास का प्रधान उपयोग यही है, एतदर्थ ही इतिहास लेखक पूर्व्ववृत्त लिख रखते हैं। व्यक्तिगत मनुष्य को जिस प्रकार चरित से उपयोग होता है उसी प्रकार राजनीतिविशारद को इतिहास से लाभ होता है। अर्थात् हिंदी में जो कहावत है "अगला गिरा पिछला हुशार" इसके अनुसार भूतपूर्व्व मनुष्यों का अनुभव जैसे भावी लोगों के काम आता है; उसी प्रकार इस धरती पर आज पर्य्यंत जो अनेक राज्य हो गए हैं उनका अनुभव वर्त्तमान लोगों के काम आता है। राज्य की हितसाधक बातें कौनसी हैं, हानिकारक कौनसी हैं, उन पर विपत्ति आजाय तो उनका निवारण किस प्रकार से किया जाय, कलह विरोध किस कारण उत्पन्न होते हैं, प्रजा को प्रसन्न एवं सुखसंपन्न रखने के मार्ग कौन से हैं कायदे कानून किस प्रकार के, रहने चाहिए, आदि सैकड़ों बातें भूतपूर्व्व इतिहास द्वारा वर्त्तमान राजा लोगों को ज्ञात हुई हैं। जैसे कोई बहुत पुराना बड़ का पेड़ जब बहुत बढ़ जाता है और उससे सैकड़ों नई जड़ें लटक लटक कर पेड़ बन जाती हैं और आदि पेड़ के स्थान में हो जाती हैं, उसी प्रकार से

रोम के सुविस्तृत राज्य से योरोप के वर्त्तमान अनेक राज्य उत्तरोत्तर उत्पन्न हुए। भाषा और रहन सहन आदि का मूल जैसे वह राज्य है, उसी प्रकार वर्त्तमान राष्ट्रों की राज्यव्यवस्था की नींव भी वही राज्य है। यह बलिष्ट आधार यदि नहीं होता, तो योरोप की अवस्था आज किस प्रकार की रहती सो कह देना सरल काम नहीं है। विचार का स्थल है कि पंद्रहवीं शताब्दी में यूनानी और रोमन विद्या का पुनरुज्जीवन होकर उसका समूचे योरोप में विस्तार होतेही उस महादेश की समस्त जातियों को सहसा किस प्रकार की शक्ति प्राप्त होगई ! तब से हर एक बात में वहां के लोगों का आतंक समस्त धरती पर जो बैठ गया है उसका अनुसंधान करने पर मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि पूर्व्वोल्लिखित प्राचीन राष्ट्रों ने ग्रंथों में जो अमूल्य ज्ञान भंडार एकत्रित कर रखा था सो सहसा उनके हाथ चढ़ गया। राज्यनीति, सैन्यव्यवस्था, शासन और दंडविधि आदि सब उक्त पुराने लोगों के समय में ही पूर्णता को पहुंच चुकी थीं, अतः वे सब आधुनिक लोगों को सुसिद्ध ही प्राप्त हुईं। यह क्या उन्हें कोई सामान्य लाभ हुआ ? प्राचीन काल में नवशेरवां नाम के पारस देश के एक राजा ने अपने एक वकील को "भारतवर्ष" में, विशेष कर इसी काम के लिये भेजा। हमारे संस्कृत के हितोपदेश का फारसी भाषा में अनुवाद कराया; रोम की सेनेट सभा ने उसी प्रकार अपने यहां के तीन वकीलों को एथेन्स को भेज वहां से सोलन के कानून मंगवाए, सुनते हैं लैकर्गस भी स्पार्टन लोगों को राज्यव्यवस्था के नियम बना देने के अभिप्राय से एशियामाइनर, मिश्र आदि दूर दूर के देशों से होता हुआ भारत में भी आया था;-तात्पर्य्य राज्यनीति विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्कालीन लोगों को इस प्रकार के भगीरथ प्रयत्न करने पड़ते थे। और वे लोग उस ज्ञान की योग्यता को जान कर करते थे। फिर अब वर्त्तमान समय की सहस्रों युक्तियों के योग से वही बहुमूल्य ज्ञान यदि सबको सुलभ हो गया है, तो क्या यह कुछ सामान्य लाभ है ? पीछे इतिहास के जिन विरोधियों का उल्लेख किया गया है वे इतना भी विचारा नहीं करते कि, जैसे मूल के बिना वृक्ष की स्थिति नहीं हो सकती; वा जैसे नींव के सिवा घर नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार से प्राचीन

स्थिति के बिना किसी जाति को तत्समय की नई अवस्था प्राप्त नहीं होती । ऊपरी बातों का योंही विचार करने वाले की दृष्टि मूल कारण पर्य्यंत न पहुंचने के कारण उसे जान पड़ता है कि, संप्रति जो रूप दीख पड़ता है वह स्वयं सिद्ध ही है; न तो कोई इसका आदिकारण ही है और न कोई इसका आधार स्वरूप ही है। इस मूर्खता को अपने चित्त में धारण कर के ऐसे लोग अपनी अज्ञता को, अपनी अरसिकता को, और अपने आलस को इतिहास के तिरस्कार के आँखे से छिपाना चाहते हैं। अस्तु; तात्पर्य्य यह है कि यदि किसी को किसी जाति के विषय में संपूर्ण एवं साद्यंत ज्ञान लाभ करना हो, तो उसे उस जाति की केवल उसी समय की स्थिति को देखने भालने से वह ज्ञान कदापि प्राप्त नहीं हो सकता आदि से कैसे कैसे हेर फेर होते गए, इत्यादि बातों को जब वह पूर्णतया जान लेगा, तभी उसको उस समय का स्थिति के विषय में यथार्थ, ज्ञान हो सकेगा । वैसेही उसकी भावी अवस्था के विषय में उसे यदि अनुमान करना हो, तो वह भी उक्त संपूर्ण सामग्री के बिना उससे नहीं हो सकेगा ।

(१) इतिहास का अंतिम उपयोग मनःपुष्टि है । अर्थात् उसके निरंतर के पठन तथा मनन से मन की भिन्न भिन्न शक्तियां प्रगल्भता को प्राप्त होती हैं । प्रथम स्मरणशक्ति को लीजिए । संवत् मिति, स्थानों के नाम, मनुष्यों के नाम, और पूरा पूरा वृत्तांत, इत्यादि का पूर्ण रूप से स्मरण रखने के कारण यह शक्ति काम में लाई जाती है और इसी से वह क्रमशः बढ़ जाती है । दूसरी कल्पना शक्ति । इतिहास अर्थात् गत घटनाओं का वृत्तांत होने के कारण उसे यथास्थित करने के लिये कल्पनाशक्ति को काम में लाना पड़ता है । जिस समय का, जिस देश का इतिहास पढ़ना हो, उसकी अवस्था विशेष को पूर्णतया ध्यानावस्थित किए बिना वह कदापि समझ में नहीं आता; अतः उसकी प्राप्ति के लिये पाठक की कल्पनाशक्ति बहुत प्रखर होनी चाहिए, यह प्रखर कल्पना और अत्यंत परिपक्व वा सूक्ष्म बुद्धि एकही वस्तु नहीं है । यही कारण है कि जिस प्रकार कविता, उपन्यास और नाटकादिकों का तिरस्कार करने वाले बड़े बड़े बुद्धिमान् भी

पाए जाते हैं, उसी प्रकार पीछे कहे हुए जान्सन् जैसे इतिहास को तुच्छ मानने वाले विद्वान् भी पाए जाते हैं। पर बात यह है कि इस अवहेलना से वे लोग निज की जितनी हानि कर लेते हैं, उतनी उक्त काव्यादिकों के अधिदेवता की हानि नहीं होती ! न तो उनके मनोहर सौंदर्य्य में अणुमात्र भी ऊनता आती है और न उनके यथार्थ रसिकों में से किसी एक की भी उनसे लवमात्र भी श्रद्धा भक्ति हटती है। हां इतना अवश्य होता कि यह अवहेलना करने-वाले कल्पना शक्ति में पंगु समझे जाकर वृद्धतरुणी न्याय से उपहास के योग्य माने जाते हैं। पुरूरवा राजा के दृष्टिपथ में उर्वशी के प्रथमतः आतेही उसके निर्म्माता ब्रह्मा को उस राजा ने जो कुछ कहा था वही बात ऐसे पंडितों के विषय में एक निरालेही रूप से चरितार्थ होगी * ! अस्तु; सारांश इतिहास का–उस में भी विशेषतः दूर के देश का अथवा काल का–यथावत् ज्ञान होने के लिये, और उसकी पूर्णतया अभिरुचि उत्पन्न होने के लिये पाठक की कल्पनाशक्ति को जागृत रहना चाहिए। पाठक की कल्पना शक्ति यदि जागृत नहीं रही तो पाठक इतिहास के पात्र विशेष से न तो तादात्म्यही प्राप्त कर सकता है और न उसे इतिहास की उस घटना विशेष का प्रत्यक्ष सा भासही हो सकता है। अभिप्राय यह है कि यह शक्ति इतिहास बाचने वाले में निसर्गजात होनी चाहिए। वह उसमें रही तो फिर वह इतिहास पठन के साथ साथ वृद्धि लाभ करती जाती है। इतिहास में भांति भांति के देश, पुरुष और प्रसंगों के वर्णन होने के कारण कल्पनाशक्ति को निज के विचारणार्थ यथेच्छ क्षेत्र प्राप्त हो

---

* अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चंद्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्म्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥
भावार्थ–इसको निर्म्मित करने के समय या तो चंद्र प्रजापति हुआ होगा, वा एकमात्र शृङ्गार रस में निरंतर रम्यमाण होने वाला साक्षात् मदन प्रजापति हुआ होगा, वा वसंत प्रजापति हुआ होगा। क्योंकि सदा वेद के पठन पाठन से जिस की बुद्धि को जड़ता प्राप्त हो गई है, और विषयों से जिसकी प्रीति हट चुकी है उस बूढ़े ऋषि (ब्रह्मा) से ऐसे मनोहर रूप की क्योंकर रचना की जा सकती है!

जाता है; और उसके योग से उसकी स्वभावतः वृद्धि होती जाती है। और इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इतिहास की घटनाएं सब अक्षरशः सत्य होने के कारण—क्योंकि जब वह वैसी हों तभी वह इतिहास हो सकता है—उपन्यासों की असत्यता के कारण उनसे मन को जो एक प्रकार का खेद होता है वह इससे नहीं होता। देखिए, "सहस्र रजनी चरित्र" में सिंदवाद के भिन्न भिन्न प्रवासों के वृतान्तों को पढ़ने से मन को बड़ा भारी कौतूहल ज्ञान पड़ता है, और साथही कल्पना शक्ति उसमें मग्न हो जाती है पर ज्यों ही उसका पढ़ना पूरा हो जाता है त्योंही यह बात चित्त में आती है कि यह सब वृत्तांत हैं तो वास्तव में बड़े चित्ताकर्षक, पर आदि से अंत लों सब झूठे हैं। पर वही कोलंबस के प्रवासों को पढ़िए, और देखिए कि मन की क्या अवस्था होती है। पहिले के प्रवासों को आज लों लाखों मनुष्यों ने पढ़ा होगा, और उसी प्रकार से दूसरे के प्रवासों को भी पढ़ा होगा पर पहिले प्रवासों को पढ़तेही आज ले ऐसा नहीं हुआ कि कोई नौका प्रस्तुत कर सिंदवाद के समान हीरे लाने के लिये गया हो पर दूसरों का परिणाम क्या हुआ सो किसी से छिपा नही है विशेषतः हिंदू लोगों को तो उसका परिणाम जताने की कोई आवश्यकता हीनहीं है। उसी जगत्प्रसिद्ध पुस्तक में अलाउद्दीन के महल का वर्णन है; और इतिहास में ताजमहल का वर्णन है। पर दोनों को पढ़कर पाठक के चित्त में कैसी भिन्न प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है! इसी प्रकार यक्ष और राक्ष लोगों की अद्भुत कृति का वर्णन भी उसमें लिखा गया है, पर उससे इतनाही होता है कि थोड़ी देर के लिये चित्त बहल जाता है। इससे अधिक और कुछ नहीं होता। अब इधर, वायु के समान चलने वाली रेलगाडी, तेल बत्ती बिना जलनेवाले दीप, एक खटका बंबई में तो दूसरा तत्क्षण लंदन में इस प्रकार मनोवेग से काम करने वाली विद्युत, गजकाय पत्थरों को एक पर एक रच कर बनाए हुए मनुष्यकृत पर्वत—कि जो अब जितने पुराने ज्ञान पड़ते हैं उतनेही हिरोडोटस को भीज्ञान पड़े थे,-कोसों लों खोद खोद कर गुफाओं में बनाए हुए विशाल मंदिरपुंज कि जिन्होंने अपनी प्रचंडता के योग से निष्ठुर, मत्सरी और दुराग्रही यवनों को हरा

विज्ञान विषय।

अर्थ शास्त्र

ज्योतिष शास्त्र

(६) सन् १९०४ के पदक के लिये जो विषय नियत थे उनमें से भूगर्भ विद्या पर एक लेख आया है जिस पर विचार करने के लिये एक कमेटी नियत की गई है।

(७) १७ महाशयों का नाम दो वर्ष का पूरा चन्दा न देने के कारण सूची "ख" में लिखे गए हैं।

(८) राजासाहब भिनगा ने सभा से यह इच्छा प्रगट की है कि यदि सभा हिन्दी में २०० पृष्ट की एक स्त्रीशिक्षा की पुस्तक लिखवा कर छपवावे और उसमें उनके चुने हुए विषय रहें तो वे ३००) रु० सभा को उसके सहायतार्थ दे सकते हैं। सभा ने इसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया है।

नवीन अधिकारप्राप्त सभासद।

---

२६ मार्च १९०४-पं० उमाधर पाठक, जि० पटना।

२४ सितम्बर १९०४-पं० जगन्नाथ मिश्र, गोंडा।

२९ अक्तूबर १९०४-पं० धरनीधर वैद्य, सागर (२) पं० राजनारायण मिश्र बी० ए०, हरदोई।

२६ नवम्बर १९०४-(१) बा० दामोदर सहाय सिंह, जमुई (२) पं० केदारनाथ शर्म्मा, काशी (३) लाला मथुरा दास त्रेण, बटाला (४) बा० सुमेरचन्द, बटाला (५) बा० हरि गोपाल रानू राम, बटाला (६) ला० मोती राम बी० ए०, बटाला (७) पं० रामलाल शास्त्री, बटाला (८) राय शिव सिंह भंडारी, बटाला (९) पं० दीवान चन्द, देहरादून (१०) मिस्टर टहलराम गंगराम, देरा इस्माइलखां (११) मिस्टर सच्चिदानन्द सिंह, प्रयाग (१२) पं० परमानन्द तिवारी, होशंगाबाद।

३१ दिसम्बर १९०४–(१) पं० मानिक राम तिवारी, काशी (२) पं० हरदेव प्रसाद शर्म्मा, अजमेर (३) रायमूलराज, लाहौर (४) ला० कुन्दन लाल, लाहोर (५) पं० देवराज पंचानन, जोधपुर (६) बा० युगलकिशोर अखौरी, सारन (७) पं० शिवनन्दन पांडे, गोरखपुर (८) पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, कानपुर (९) पं० ब्रजनाथ बी० ए०, खुरजा (१०) बा० ब्रजपालदास सराफ, मुज़फ्फरपुर (११) बा० दुर्गासाह नखवाल, ज़ि० नैनीताल (१२) पं० महावीर प्रसाद मालवीय, मिर्ज़ापुर (१३) बा० शम्भु दयाल, हरदोई।

२८ जनवरी १९०५–(१) बा० शिवप्रसाद गुप्त, काशी (२) बा० लक्ष्मीनारायण सिंह, काशी (३) पं० गणेशी लाल पांडे, सागर (४) बा० गौरीशंकर वैश्य, मुज़फ्फरनगर (५) पं० गुरुसेवक उपाध्याय, गाज़ीपुर (६) पं० बैजनाथ पांडे, जगदलपुर (७) बा० वासुदेव गोयनका, कलकत्ता।

२५ फ़रवरी १९०५–(१) बा० जगन्नाथ प्रसाद सिंह, ज़ि० दरभंगा (२) ठाकुर श्रीराम एल० एम० एस०, नगीना।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

(त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक—श्यामसुन्दर दास, बी. ए.
सहकारी सम्पादक—किशोरी लाल गोस्वामी

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषाज्ञान के, मिटत न हिय को सूल
करहु बिलंब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल। निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जु सबको मूल
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार। सब देशन सों लै करहु, भाषा मांहि प्रचार
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न। राजकाज दरबार में, फैलावहु यह रत्न

हरिश्चन्द्र।

भाग ६ } जून सन् १९०५ ई० { संख्या ४

विषय तथा लेखक।

(काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)
वार्षिक मूल्य १) रु०

बनारस
मेडिकल् हाल् प्रेस में मुद्रित।

Issued 15th June. 1905.

सभा-सम्बन्धी समाचार।

(१) सभा के मासिक अधिवेशन इस प्रकार हुए—

२५ मार्च १९०५—१२ महाशय सभासद चुने गए, अनेक पुस्तकें स्वीकार की गईं और पण्डित केशवराम भट्ट की मृत्यु पर शोक प्रगट किया गया।

२९ अप्रैल १९०५—११ महाशय सभासद चुने गए, एक सभासद (पण्डित रघुनाथ शर्म्मा २२, काशी) का इस्तीफा स्वीकार किया गया, कुंअर रघुनाथ सिंह (अतरौली, अलीगढ़) की मृत्यु की सूचना दी गई तथा अनेक पुस्तकें स्वीकृत हुईं।

२७ मई १९०५—९ महाशय सभासद चुने गए, अनेक पुस्तकें स्वीकृत हुईं, मिस्टर इ. एच. रडीची, आई. सी. एस (कमिश्नर बनारस) आनरेरी सभासद और बाबू मोतीचन्द (काशी) स्थायी सभासद चुने गए तथा राय बी. सिंह वर्म्मा की मृत्यु की सूचना दी गई। ९३ वें नियम में "फरवरी" के स्थान पर "जून" यह परिवर्तन स्वीकार हुआ।

(२) ग्रन्थोत्तेजक पारितोषिक के लिये जो विषय नियत किया गया था उस पर लेख आने का समय ३१ दिसम्बर १९०५ तक बढ़ा दिया गया है।

(३) सभा ने एक पत्र बंगाल गवर्न्मेंट के पास भेजा है जिसमें इस बात का विरोध किया है कि भाषापाठ्य पुस्तकें हिन्दी में न लिखी जाकर बिहार प्रान्त की भिन्न भिन्न बोलियों में लिखी जांय।

(४) पुस्तकालय के अंग्रेज़ी विभाग के नियम बनाए गए हैं जो वार्षिक रिपोर्ट के साथ में प्रकाशित किए जांयगे।

(५) काशी के रईस बाबू मोतीचन्द ने ५००) रुपया और डिस्ट्रिक्ट और म्युनिसिपल बोर्डों ने २५०) २५०) रु० इस लिये सभा को दिया है कि सभा ने जो प्रति वर्ष पाप्युलर लेक्चर्स (सुबोध व्याख्यान) कराना निश्चय किया है उनके लिये मैजिक लाल-

कर उनसे उनके दुष्ट हठ को छोड़वाया;—इत्यादि मानवी बुद्धि तथा प्रयत्न के अद्भुत प्रभाव जब मनुष्य देखता है, तब उसे उक्त झूठी बातें लड़कपन की जान पड़ने लगती हैं! कहने का तात्पर्य्य यह है कि, मनुष्य के मन को नैसर्गिक सत्य ही प्यारा लगता है, अतः सच्चे इतिहास की ओर उसकी प्रवृत्ति जितनी सहज और जितने प्रेम से होती है उतनी वह काल्पित उपन्यासों की ओर नहीं होगी। यही कारण है कि मनुष्य की कल्पना इतिहास वृत्तान्तों में बड़े चाव के साथ निःशंकतया रममाण होती है; क्योंकि उनमें असत्यता का यत्किंचित् दोष भी न होने के कारण उनमें यथेच्छा विहार करने के लिये उसे आलस्य ही नहीं आता। तद्वत् इतिहास के अधिकांश विषय प्रत्यक्ष इंद्रियगोचर होने के योग्य रहने के कारण उनका चित्त पर जितना उत्तम संस्कार हो सकता है उतना उत्तम वह कल्पित कथाओं के विषयों का नहीं हो सकता। सारांश कल्पना शक्ति का रंजन करने के विषय में उपन्यास और इतिहास में इतना अंतर पाया जाता है। इससे यह प्रतिपादित हुआ कि इतिहास के पढ़ने से वृद्धि लाभ करने वाली दूसरी मानसिक शक्ति कल्पना है। तीसरी विचार शक्ति है। कहना नहीं होगा कि यह विचारशक्ति इतिहास के ज्ञान से बढ़ती है। और तो क्या, पर इसके विषय में केवल इतना लिखना भी 'सूर्य्य तेजः पुंज है' "पानी में प्रवाहित्व धर्म्म है" इत्यादि वाक्यों के सदृश अत्यंत प्रसिद्ध अर्थ का अनुवाद करने के समान अनुचित जान पड़ता है। तो भी वह क्यों बढ़ती है और क्योंकर बढ़ती है इसके विषय में किञ्चित् विस्तृत वर्णन आवश्यक बोध होता है। पहिली बात तो यह है कि इतिहास में भिन्न भिन्न प्रकार की बातों का वर्णन होने के कारण मन के कोष में बहुतेरी नई नई बातों का संग्रह हो जाता है। यह बातें तर्क लड़ाने वा किसी प्रतिपाद्य विषय को विचित्र करने अथवा उसको विशदता देने के काम में बहुत उपयोगी होती हैं। इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इतिहास में भिन्न भिन्न पात्रों के भिन्न भिन्न गुण दोष, भिन्न भिन्न स्वभाव और भिन्न भिन्न कृति स्पष्टरूप से प्रदर्शित की हुई रहती हैं। अतः मानवी स्वभाव के अनेक प्रकार के चित्रविचित्र रूप पाठकों

के दृष्टिपथ में आकर उनसे उनको व्यवहार में अत्यंत उपयोगी एवं मार्मिक अथच पूर्ण ज्ञान होता है। नाना प्रकार के देशों के लोगों की स्थिति, राज्य व्यवस्था, रीति भांति, रहन सहन और धर्म्मादि विषयक विश्वास का ज्ञान होने से मनुष्य की ज्ञान दृष्टि दूरलों जा सकती है। उसके योग से बुद्धि की गति बढ़कर वस्तुमात्र के विषय में उसे पहिले की अपेक्षा विशेष रूप से यथार्थ ज्ञान होने लगता है। निरंतर एकही स्थिति विशेष दृष्टि के समीप होने के कारण बुद्धि जो कुसंस्कार से संकुचित हो जाती है उसे दूर करने के लिये दोही मार्ग हैं एक तो यह कि नाना देशों में भ्रमणकर पर राष्ट्रों के विषय में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेना; और उससे किंचित् ऊन तथा दूसरा मार्ग यह है कि वैसा जिन लोगों ने किया है उनसे बात चीत करके वा उनके लेखों को पढ़कर उस ज्ञान को प्राप्त कर लेना। इनमें से पहिला मार्ग और दूसरे की पहिली व्यवस्था बहुत कम लोगों को अनुकूल हो सकती हैं; अत: सर्व साधारण को उपयोगी होने वाला एक यही मार्ग है कि वह इस ज्ञान को इतिहास, देशान्तर वर्णन, और प्रवास वृत्तांतों को * पढ़कर प्राप्तकरें। इनका यथोचित अभ्यास करने से, कूपमंडूक वा गूलर के कीड़े के समान सदा अवस्था रहने के कारण मूर्खता तथा दुराग्रह की जो भावनाएं चित्त में स्वभावत: प्रतिबिंबित हो, कालांतर में मन के साथ कीलित हो जाती हैं, वह दूर हो जाती हैं। संसार में यदि कोई चतुर हैं तो हमी हैं; संसार में किसी की रीति भांति अच्छी हैं तो वह हमारी ही हैं; समस्त सुधारों का शिखर हमारा ही देश है; सच्चा और सदाचरण प्रवर्तक हमारा ही धर्म्म है, दूसरे लोगों के धर्म थोथे और दूसरे लोग भ्रष्ट, हमारी

---

* आनंद का विषय है कि श्रीयुत ठाकुर गदाधर सिंह जी की कृपा से "चीन में तेरह मास" और डाक्टर महेंदुलाल गर्ग की कृपा से "चीन दर्पण" यह दो प्रवास वर्णन ग्रंथ आज दिन हिंदी में पाए जाते हैं। यह उभय ग्रंथ बहुत योग्यता के साथ लिखे गए हैं। हिंदी का मंगल चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह उक्त उभय ग्रन्थों को अवश्य पढ़े। "चीन में तेरह मास" १॥) में इस पते से मिल सकता है—श्रीयुत ठाकुर गदाधर सिंह दिलकुशा लखनऊ। और "चीन दर्पण"—१।) में इस पते पर मिलता है—डाक्टर महेंदुलाल गर्ग (पल्टन २४) झेलम पंजाब। (डाक्टर साहब का पता इंग्लिश में लिखना चाहिये)।

भाषा उत्तम; हमारी विद्या हमारी कलाएं विश्ववंद्य हैं; और कहां लों कहा जाय, हमारे खाने पीने की रीति हमारे कपड़े पहनने ओढ़ने की रीति, हमारी मुंह धोने की रीति सर्वतोभाव उत्तम; इसी प्रकार की जो निराधार एवं संकुचित चित्त की बातें होती हैं वह सब नष्ट होकर इतिहास के प्रसाद से निजके विषय में और अपर राष्ट्रों के विषय में पाठकों को यथार्थ ज्ञान हो जाता है। अपनी सुबृहत् मानवजाति, कि, जो संपूर्ण धरातल पर फैली हुई है, उसका कोई राष्ट्र कितना ही ज्ञानसंपन्न एवं बृहत् क्यों न हो पर वह उसका केवल कोणैक देश ही कहा जायगा, जब सब के साथ उसकी पर्य्यालोचना की जायगी तभी संभव है कि उसका यथार्थ ज्ञान हो सके। मानव स्वभाव के नित्य एवं शाश्वत रूप का, उसके कृत्रिम (बनावटी) अर्थात् देश काल विशेष जन्य रूप से पृथक् करण करने के लिये मन को सब राष्ट्रों का आकलनक रना चाहिये। कहने का तात्पर्य्य यह है कि इतिहास मन के इक प्रदेश को विस्तृत कर, उसके संकीर्ण बिचारों तथा भ्रमों को दूर कर देता है; और निज के तथा अपर के विषय में मन में यथार्थ बुद्धि को उत्पन्न कर दूसरों के साथ मित्रभाव का बर्त्ताव करना वह हमें सिखाता है। यह भी उसके अध्ययन से एक बड़ा भारी लाभ होता है। अंगरेजों का राज्य इस देश में इतने दिन रहा, और आगे भी बहुधा इसी प्रकार चिरकाल लों अबाधित चला जायगा, इसका एक प्रधान कारण उक्त बात के संबंध से यही पाया जाता है कि उनमें और मुसलमानों में जो एक प्रचंड भेद देख पड़ता है उसके सिवाय और कुछ नहीं है। उक्त निरूपण में यह भी लिखा जा चुका है कि इतिहास के योग से राज काज के विषय में विचार शक्ति बढ़ती है। पर वह स्वयं राजकर्त्ताओं के संबंध से ही कहा गया है। अब आगे यह पदर्शित करना है कि जिसमें हाथ में थोड़ी बहुत कुछ भी राज्य सत्ता नहीं रहती ऐसे आराम से घर पड़े रहने वाले मनुष्य को भी इतिहास से उस प्रकार का मार्मिक ज्ञान हो जायगा। संप्रति इंग्लैंडादि देशों में ऐसे प्रकार के विचार करने वाले और ऐसे विषयों पर ग्रंथ लिखने वाले लोग सब राजनीतिज्ञ ही होते हैं ऐसा नहीं है।

तो उक्त जैसे विलास प्रिय लोग भी ऐसे विचारों में मग्न रहते हैं। इस से यही निर्द्धारित होता है कि यह विषय केवल राजपुरुषों का ही नहीं है, एक सामान्य मनुष्य के लिये भी वह विचारार्ह है। राज्य प्रकरणों में उत्तम कौनसा, अथवा अमुक अमुक देश को कौनसा विशेष लाभदायक है, प्रजावर्ग को राजा ने बिलकुल अपने अधीन रखना चाहिये वा उन्हें स्वतंत्रता देनी चाहिये, यदि देनी चाहिये तो कहां लों; राज्य के हितार्थ अनीति करनी चाहिये वा नहीं; यदि अनीति की जाय तो उसका परिणाम क्या होगा; देश की स्थिति विशेष के परिणाम सर्व्वसाधारण के मन पर तथा उन की अवस्था पर क्या होते हैं; राज्य का धर्म्म विभाग से कहां लों संबंध रहना चाहिये; धर्म्म के विषय में राजा को प्रजा पर सखती करनी चाहिये वा नहीं; इस प्रकार के शतशः विषय सर्व्वसाधारण से संबंध रखने वाले पाए जाते हैं: अतः इन विषयों पर इङ्गलैंड आदि देशों में निरंतर चर्चा हुआ ही करती है। अठारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रान्स देश में जो बड़ी भारी लोट पोट हुई उस समय समूचे यूरोप और अमेरिका में बड़ी हल चल मच गई थी; और जिसके देखिये उसके मुंह से यही बात सुनाई देती थी कि प्रजासत्तात्मक राज्य अच्छा होता है वा एक राजक राज्य अच्छा होता है। उस समय उस गुरुतर विषय पर शतशः ग्रंथ लिखे गए; पर वह सब अब काल के उदर में लीन हो गए। केवल विख्यात वक्ता बर्क का "फ्रान्स की राज्य क्रांति पर विचार" नामका एक मात्र ग्रंथ आज दिन सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ उस प्रकांड तत्वज्ञ की विशाल गवेषणा का पूर्ण रूप से परिचय देता है। इस ग्रंथ के संबंध से ध्यान में रखने के योग्य एक विशेष बात यह है कि पिछले इतिहासों के अनुभव से इसमें जो कई भविष्य लिखे गए थे वे आगे ठीक ठीक वैसेही हुए। अस्तु; उक्त अन्तिम बात एक ऐसी बात है कि जो इतिहास की गुरुता को सर्व्वसाधारण के चित्त पर पूर्ण रूप से अंकित कर देती है; और साथ ही वह इस बात को प्रदर्शित करती है कि सर्वसाधारण को, और विशेषतः राज्यकर्त्ताओं को इतिहास के ज्ञान से कितना अमूल्य लाभ हो सकता है। कोई

कोई तो निःशंक हो यहां लों कहते हैं कि कुछ काल के अनंतर इतिहासज्ञों को भूत पूर्व्व अनुभवों की सहायता से अमुक अमुक देश की क्या दशा होगी यह भविष्य कथन करने की शक्ति भी प्राप्त हो जायगी । इसके सिवाय एक और दूसरा भी प्रकार है कि जिसके योग से विचारशक्ति बढ़ती है । वह यह कि, समस्त जग के आदि से आज पर्य्यन्त के इतिहास को सहसा विचारक्षेत्र में लेने से परमेश्वर का वैभव उसमें देख पड़ता है । अत्यन्त प्राचीन राष्ट्रों की आदिम अवस्था कैसी थी और वह आगे धीरे धीरे कालक्रमानुसार कैसी होती गई, और ऐसा होते होते अब जग का किस अवस्था को आकर पहुंच गया इस विषय का जो यथायोग्य विचार करेगा उसे तत्क्षण ज्ञान हो जायगा कि संसारचक्र की प्रवृत्ति उन्नति की ओर है । इस कथन से, और जंगली लोगों ने रोमन राज्य को मटियामेट कर डाला, ईसा मसीह की जन्मभूमि के निमित्त करोड़ों योरोपियन लोगों ने अपनी जान दे दी पर अन्त में मुसलमानों से परास्त होकर उन्हें पीछे हटना पड़ा, फ्रान्स देश में बड़ीभारी हलचल हुई उसके कारण उसकी और उसके साथ साथ समस्त योरोप की मिट्टी ख़राब हुई, आदि बातों से आपाततः विरुद्धता बोध होती है; पर इन्हीं अनर्थों के आगे परिणाम कैसे हुए इसका जो यत्किञ्चित् विचार करेगा उसे यह तुरंत ही ज्ञात होजायगा कि वह अनर्थ केवल तात्कालिक ही थे । वास्तव में उनसे जग का चिरकालिक कल्याण हुआ है । संप्रति पृथ्वी के उन्नत देशों की जो स्थिति है उसमें और उनकी चार पांच सौ वर्ष के पूर्व्व की स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर पाया जाता है ऐसा यदि कहा जाय तो स्यात बाहुल्य नहीं होगा । आजकल एक सामान्य पुरुष को भी ऐसी सैकड़ों बातें और युक्तियां अनुकूल हो गई हैं, जो उस समय एक बड़े बादशाह को भी अनुकूल नहीं थीं । आज कल छोटे छोटे बालकों को कई ऐसी बातें मालूम हैं कि जो उस समय के बड़े बड़े पंडितों तथा तत्वज्ञों को भी विदित नहीं होंगी । प्राचीन काल में पक्षवायु ग्रस्त शरीर के समान देशों की दशा थी ; अर्थात् एक भाग के सुख दुख की वार्त्ता का ज्ञान दूसरे

भाग के लोगों को होने का बिलकुल कोई मार्ग ही नहीं था। एतावता पास पास के देश तक परस्पर के विषय में उदासीन रहा करते थे। यूनानी और पारसीक लोगों के युद्ध अनेक बार प्राण पण से हुए; पर ग्रीक और रोमन आदि लोग और दूसरी ओर हिंदू आदि लोग नितान्त निश्चिन्त थे। तद्वत् ही हानिबल ने रोम के राज्य को हला दिया, वा इधर ब्राह्मण लोगों ने बौद्ध लोगों को तिब्बत चीन और लंका में भगा दिया, पर यूनानी लोग अपने स्थान में स्वस्थ हो बने रहे। पर अब जो कौतूहल होता है उसे देखिए। अमेरिका में लोग कलह करते हैं-पुनः मेल कर लेते हैं; और उन के संबंध से पाताल बासी बंबई के सेठ साहूकार लोग उस उनके कलह के कारण सहसा कोट्याधीश हो जाते हैं और उस कलह के एक दम शान्त होते ही घरो घर दिवाले पटके जाते हैं। तात्पर्य्य विद्युत का तार जैसे संप्रति पृथ्वी के एक छोर पर हिलाने से वह उसके दूसरे छोर लों हल जाता है, उसी प्रकार से एक भाग का सुख दुख अब तुरंत ही दूसरे भाग को ज्ञात हो जाता है; अथवा ऊपर कही हुई उपमा यदि यहां ली जाय तो निरोगी मनुष्य के शरीर के किसी अंग को प्राप्त हुआ ज्ञान जैसे तत्क्षण सर्व्वत्र फैल जाता है वैसी यह बात भी होती है। अस्तु; सारांश जब यह सब बातें ध्यान में आती हैं और उससे जब इस बात का बोध होता है कि जग उत्तरोत्तर सज्ञान और सुखी होता जाता है तब धर्म्मशील पुरुषों को बहुत कुछ आशा होती है और ईश्वर में उनकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है।

यहां लों इस अथाह विषय का पाठकों को किंचित् दिग् दर्शन कराया गया। इस विषय का यथायोग्य वर्णन करना सामान्य व्यक्ति का काम नहीं है, उसके लिये ग्रंथावलोकन बहुत होना चाहिये, संसार का अनुभव भी बहुत होना चाहिये, और इसके अतिरिक्त विषय प्रतिपादन करने की शैली का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। यह सब आवश्यक गुण वर्त्तमान लेखक में हैं ऐसा उसे विश्वास नहीं होता। यह सब गुण पाठकों के लिये भी आवश्यक हैं। हम नहीं समझते कि आज दिन हमारे पाठक सर्व्वतो भाव

तद्गुणसम्पन्न हो चुके हैं। पाठकों का ज्ञान और उनकी विचार क्षमता जैसी-जैसी उन्नत होती जाती है उसी प्रकार से उनकी सेवा करने के लिये उस प्रकार के ग्रंथकार भी उत्पन्न होते जाते हैं; अतः जब हमारे यहां के पाठकगण इंग्लैंड के पाठकों के सदृश हो जायंगे तब हमारे यहां बर्क, मेकाले, और मिल के समान ग्रंथकर्त्तागण भी अवश्यमेव उत्पन्न होंगे। कहना नहीं होगा कि यह दोनों बातें परस्पर सापेक्ष हैं। सारांश संप्रति की अवस्था के अनुसार हमारे हिंदी के पाठकों के लिये वर्त्तमान निरूपण बस है ऐसा हम समझते हैं। इस लेख में इतिहास के जिन उपयोग और लाभों का वर्णन किया गया है उन्हें हमारे पाठकों में से यदि थोड़े लोग भी योग्य रूप से समझलेंगे तो हम समझलेंगे कि हमारे इस अनुवाद का श्रम व्यर्थ नहीं गया।

रीवां राज्य के एक कवि रामनाथ प्रधान का

जीवनचरित्र

और

उनकी राजनीति ।

(पण्डित भवानीदत्त जोशी बी. ए. लिखित)

प्रायः १४ शताब्दी हुए जब कुछ बघेल वीर क्षत्रिय सन्तान गुजरात राज्य के अधिकारी पूर्व की ओर देशविजय की लालसा और निज क्षत्रिय धर्म का प्रतिपालन करने की अभिलाषा से आए और बहुत काल तक देश प्रदेश जीतते रहे अन्त को उन्होंने बघेलखण्ड में अपना राज्य स्थापन किया। उनके साथ ही कुछ वैश्य लोग आए थे। राज्य में प्रधान लेखक के पद पर रहने और उसका काम करने से उनको "प्रधान" की उपाधि मिली उसी से उनके वंश के लोग जो अब यहां हैं सब प्रधान नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं प्रधानों में से एक नन्दराम थे जिनके पुत्र जिन्दारामजी हुए। जिन्दारामजी के पुत्र ठाकुररामजी हुए जो श्रीमान् महाराजा जयसिंह जू देव के समय में उनकी सेवा में अपने पितरों के पद पर नियत थे। इनके सात पुत्र हुए जिनमें से प्रथम ज्येष्ठ दो तो अल्पकाल ही में युवावस्था में परलोकगामी हुए शेष पांचों के नाम क्रम से ये हैं-रामनाथ (कवि) रामलाल जो राज्य के अश्वगजादि शाला के खास कलम हुए, श्यामलाल जो राज्यदीवान दीनबन्धु पांडेजी के यहां खास कलम रहे और बलदेव औ। बद्रीप्रसाद। इनमें रामनाथ जी का जन्म संवत् १८५७ में रीवां राजधानी में हुआ।

बचपन में यह ऐसे चञ्चल और अनोखी प्रकृति के थे कि इनके घर के लोग इनसे प्रीति नहीं रखते थे। कुछ अवस्था होने पर इसी भांति जब शिक्षा की ओर इनकी प्रवृत्ति न हुई और मूर्ख बने रहे

तब और भी घर बाहर सब के अप्रिय हुए। इनका शरीर कुछ छोटा तो था पर गठीला और मोटा भी था ऐसे कुछ रूपवान न थे। विवाह इनका रींवा से कुछ दूर व्योहारी गांव में हुआ था। विवाह के पूर्व ही जब लोग इनका तिरस्कार करते थे तब इसके पीछे तो और भी ये बोझ समझे गए जिसके कारण इनके चित्तमें अत्यन्त ग्लानि उपज आई। इनका यह नियम सा हो गया था कि घर में बहुधा कम रहते थे केवल खाने पीने के समय आ जाते थे। जब समाज के लोग इनको तुच्छ दृष्टि से देखते थे तो इन्होंने भी समाज से विशेष सम्बन्ध रखना नहीं चाहा। यहां तक कि यह बहुधा साधु, महात्मा, बैरागी, जो नगर में आता था उसके पास आया जाया करते थे। इनकी प्रवृत्ति इस प्रकार केवल साधु, सन्यासी, सांई, फकीर, की सेवा शुश्रुषा में लगी रहती थी। घर के लोगों ने जो कुछ अन्न दिया सो यही साधुओं को दे दिया करते थे। सब प्रकार से इस काम की ओर इनकी बड़ी रुचि हो गई थी। एक बार यहां एक सिंहलद्वीप के कोई साधू राधिकादास नाम के आए और बहुत काल तक यहीं स्थित रहे उनके पास यह बराबर रहा करते थे और सब भांति अपनी भक्तियुक्त सेवा से उनको प्रसन्न रखते थे। कुछ समय बाद नगरिया में एक सांई जी आए। वे बड़े अच्छे साधु थे। औरों की भांति स्वभावतः यह इनकी शुश्रुषा करते रहे। एक दिन उक्त सांई जी ने आम का अचार (संधा) किसी से मांगा। यह भी वहीं थे। इन्होंने सुना तो घर लाने को आए पर घर में कौन भला इनको प्रसन्नता से देता अतएव यह कहीं से उठा कर सांईजी के पास ले गए और उनको दिया। जब यह बात घरवालों को ज्ञात हुई तो उन्हों ने रामनाथ को बहुत धमकाया घुड़का और बहुत कटु कटु बातें कहकर उनके जी को दुखाया जिससे यह बहुत सन्तापयुक्त हुए। नियमपूर्वक जब दूसरे दिन सांई जी के पास पहुंचे तब उन्होंने इनके खिन्न मन होने का कारण पूछा। यह नहीं बतलाते थे पर जब सांई जी ने जान लिया तो इनसे कहा कि क्यों तुमने इस छोटी सी वस्तु के लिये इतना कष्ट उठाया और कटुवाणी सुनी। सांई जी को अपनी शक्ति से ज्ञात हो गया कि इनके घर के लोगों ने इस हेतु

से इन्हें धमकाया कि यह कमाकर कुछ नहीं लाते और वृथा दूसरे की कमाई पर पुण्य उदारता दिखाते हैं। यह जान कर उन्होंने रामनाथ जी को वरदान दिया कि अब से तुम्हारा सर्वत्र आदर होगा और कमाई स्वयं करोगे। तभी से जब इनकी अवस्था २२ वा २३ वर्ष की हुई ये कविता करने लगे। इनके फुटकर कवित्त बहुत से मिलते हैं जो इस समय के बने हैं। कुछ दिनों में दरबार में यह आने जाने लगे और थोड़े ही समय में मान पाकर कवियों में इनकी गणना होने लगी और महाराज विश्वनाथ सिंह जूदेव ने इनकी नौकरी १) रु० रोज की कर दी। उस समय १) रु० नित्य की नौकरी बड़ी भारी समझी जाती थी। राजा के ८ अमात्य कहे जाते हैं। उस हिसाब से यदि कोई इनके वर्ग का उस पद का अधिकारी था तो यही थे। तब से ये सदा राजमान्य में रहते आए। समय समय पर इनको विशेष प्रतिष्ठा मिलती रही। विशेषतः ये श्रीमान् महाराज रघुराजसिंह के दरबार में उनके युवराजावस्था ही से रहते थे और उनके कृपापात्रों में थे। वैसे इधर उधर के कवित्त तो इन्होंने बहुत लिखे पर सब से प्रथम ग्रन्थ जो इन्होंने रचा वह धनुषयज्ञ है। अभी तक उसकी प्रति मुझे उपलब्ध नहीं हुई इससे उसके गुण दोष के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं विदित हुआ कि वह कब बना और कब समाप्त हुआ।

इनका दूसरा ग्रन्थ रामकलेवा है जो आज दिन सर्वत्र सर्व साधारण में प्रसिद्ध है। सच पूछिए तो इसी ही से रामनाथ जी प्रख्यात हुए हैं। बहुत से इनको न जान कर इनको कोई बड़ा प्राचीन महात्मा समझ रामकलेवा का पाठ करते हैं। ग्रन्थ कुछ बड़ा नहीं है पर इसके ललित भक्तिमय भावों से भरपूर रहने से यह स्तोत्र पाठादि संस्कृत हिन्दी की पुस्तकों के समान सहस्रों बार नाना यन्त्रालयों में मुद्रित हो प्रकाशित हुआ है। इस रामकलेवा को इन्होंने अपनी ४५ वर्ष की अवस्था में बनाया। संवत् १९०२ ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दसहरा को श्री अयोध्या जी में बैठकर इसे आरम्भ किया और उसी संवत् के आश्विन की विजया दशमी को समाप्त किया। इसमें श्री राम विवाहोत्सव में पाणिग्रहण के उपलक्ष में

प्राय: जो कलेवा कराए जाने की रीति है उसी का वर्णन है। विशेष कर इसमें चौबोला छन्द ही हैं। वर्णनशक्ति इनकी कैसी सत्य और सुन्दर चित्रित करनेवाली थी वह इसी उदाहरण से जाना जायगा जहां कि उनके वस्त्र आभूषणादि शृङ्गार करने पर रूप और वेष का उल्लेख किया है।

जनक महल की जानि तयारी सेवक सब सुख पागे।
निज निज प्रभुहिं सँवारन लागे लै भूषन बर बागे॥ १८॥
रघुनन्दन सिर पाग जरकसी लसी त्रिभङ्गी बांधी।
तिमि नवरङ्गी झुकी कलंगी रुचि रुचि पेचन साधी॥ १९॥
कनिन कलित अति ललित मनिन की मंजुल मौर बिराजी।
सिन्धुर मनि के सजे सेहरा जोहि होत मन राजी॥ २०॥
ताके कोर कोर चहुंवोरनि लागीं रतननि पांती।
जगमग जोति होती चहुं दिसि ते लखि अखियां न अघाती॥ २१॥
कुंडल लोलै हलै कपोलै लगी अमोलैं मोती।
लेबदार जगमगहिं जराऊ जुगुल जंजीरन जोती॥ २२॥
जालिम जोर जौहरी जुलफैं जुवतिन जोवन हारी।
छूटी अलकैं दोहुं दिसि झलकैं मनहुं मैन तरवारी॥ २३॥
रतनारी कारी कजरारी अति अनियारी आंखैं।
रसवारी बरबस बसकारी प्यारी प्रानन राखैं॥ २४॥
अति अरबंगी रति रस रंगी चढ़ी त्रिभंगी भौंहैं।
मनहुं मदन की जुग धनु सोहैं जोइ जोहैं तेइ मोहैं॥ २५॥
तिलक रसाल विसाल भाल पर किमि बरनौं छबि ताकी।
जनु नव घन पै रीझि दामिनी नेम लियो थिरताकी॥ २६॥
अरुन अधर बिच दामिनि दुति दर दमकैं दसननि पांती।
सनमुख मुख करि जेहिं दिसि बोलैं अजब छटा छहराती॥ २७॥
जगमगात अति स्याम गात पर जरतारिन को जामा।
ताके कोर कोर चहुं वोरनि गूंथे रतननि दामा॥ २८॥
पीत सुफेंटा सुछवि समेटा कमर लपेटा राजै।
नवल भटू को करन लटू को कंध पटूको छाजै॥ २९॥
कोरन लगीं करोरन मोती कोरन लगीं किनारी।

अतिसै झलकैं लगै न पलकै लखि ललकैं सुरनारी ॥ ३० ॥
सिंधुर मनि के पड़े चौलड़े मनिन माल बहु सोहैं ।
कठुला कंठ विजायट बांहन देखत ही मन मोहैं ॥ ३१ ॥
बड़े बड़े नग जड़े सुभग अति कनक कड़े कर माहीं ।
छबि उमड़े उर अड़े तियन के गड़े मदन मन माहीं ॥ ३२ ॥
मनिमय कंकन सुखप्रद रंकन वंकन करबिच बांधे ।
जनु पुर जुवतिन मन जीतन को जंत्र वसीकर साधे ॥ ३३ ॥
मनिमय ढ़ालैं बिरचित जालैं कसी सुपुर करवालैं ।
कंचन ढालैं बंधी बिसालैं सजी सबुज उरमालैं ॥ ३४ ॥
सरही पीत जरकसी पनहीं मनहीं मनैं सोहाती ।
नूपुर पद जुत दिये महाउर देखत देह भुलाती ॥ ३५ ॥
बदन सकल सुख सदन राम को कोटि मदन मद मारै ।
दरसत उर बरसत रस सब के जनु तन धरे सिंगारै ॥ ३६ ॥
बीरिनि खात बतात सखन सों जब प्रभु जेहि दिसि बोलैं ।
सन मन भूलि जात सब ताको लेत प्रान मन मोलैं ॥ ३७ ॥

पाठकों के हृदय में पूरा प्रभाव होने के लिये इसको पूर्णरूप से उद्धृत कर दिया है । इनकी शेष कविता भी सब इसी ढंग की है, यही लालित्य और पदमैत्री उत्तम कोमल भाव सर्वत्र विकसे हैं । रामनाथजी ने गुरुमंत्र तो रीवां राज्य के राजगुरु से अरवाड़ घाट में लिया था पर यह बड़े वैष्णव सखत्व भाव मानने वाले रामोपासक थे यही जान पड़ता है । इस रामकलेवा में क्या प्रायशः सभी ग्रन्थों में उनके सखी भाव से भक्तिमय भाव प्रकाशित हैं । विना स्वयं ऐसे मत को माने यह गाढ़ भक्ति रस पूर्ण भावना की उक्तियां कैसे हृदय से उत्पन्न हो सकती हैं । जनकपुर के स्त्री ललनागण सखीभाव के अधिष्ठाता हो निज प्रिय प्रभु रूप स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के वार्त्तालाप में परस्पर सम्बन्ध का निरूपण किया जा रहा है जैसे सिद्धि आदि स्त्रियां यह कहती हैं कि यद्यपि हम स्त्रियों में अर्थात् सखी भावाभिमानियों को दोष बहुत हैं पर स्नेहमय भक्ति से हीन नहीं हैं ।

"हम तिय नीच मीच की मूरति सदा असावहि भावैं।
पै लगि प्रीति करैं हम जासों तेहि तन मन दै राखैं ॥ ३ ॥
पति पितु बंधु पुत्र परिजन ते रहैं सबन तें न्यारी।
पै कछु बीच न राखहिं तासों बांधहिं जासों यारी ॥ ४ ॥
हमतें नीच न अब जग रघुबर तुम तें ऊंच न कोई।
पै हिय प्रीति जो तोलि लीजिये गरू हमारी होई ॥ ५ ॥
सुनि इमि आरत बैन तियन के तरुन करुन रससाने।
कोमल चित्त कृपाल रघुनन्दन प्रीति रीति भल जाने ॥ ६ ॥
बोले बचन भक्तभयभञ्जन सुनहुं तियहु सब कोई।
अब मैं कहौं सुभाउ आपना तुम्हैं न राखहुं गोई ॥ ७ ॥
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक इनतें और न भारी।
तिन हूं तें तुम अधिक पियारी सुनि सिधि राजकुमारी ॥ ८ ॥
जो कोउ प्रीति करै मोरे पर होइ जो जान अजानौ।
प्रान समान सदा तेहिं राखौं ऐगुन एक न मानौं ॥ ९ ॥
मेरी है यह बानि लाड़िली प्रीतिवंत जन जानै।
नतु खोजत वागे मोहि प्रानी करि करि जप तप ध्यानै ॥ १० ॥
जिन जिन प्रेमिन केरि जगत मैं सुनियतु बड़ी बड़ाई।
तिन तिन मैं बिचारि जो देखी सब मैं एक खोटाई ॥ ११ ॥
हिमि तन दहै कहै न कबौं कछु पुनि तेहि लखि सुख मानै।
ऐसो दरद कमल के दिल को कहो भानु का जानै ॥ १२ ॥
तरसत रहत दरस बिन पाए नित ताकत तेहि पाहीं।
अस चकोर की प्रीति चन्द के नेकु चुभी चित नाहीं ॥ १३ ॥
घुमड़ी छटा देखि प्रीतम की नाचत दादुर मोरा।
ताकी ओर तनक नहीं ताके ऐसो मेघ कठोरा ॥ १४ ॥
पीउ पीउ करि जोन पपीहो प्रान त्याग करि दीह्यो।
पीउ के जीउ दया नहिं आई वर हत्या सिर लीह्यो ॥ १५ ॥
सरबस त्यागि परी तेहि के बस छाड़ति नहिं दिन राती।
ऐसी मीन की देखि मिताई जल की फाटि न छाती ॥ १६ ॥
जात पतंग समीप दीप के मोहि जोति छबि माहीं।
तेहि तन दाहत मैं कृसान के भई दया कछु नाहीं ॥ १७ ॥

ऐसे बहुत प्रीतिवालेन की देखौ चाल अधीरा ।
एक तो प्रान देत वाके पर एक न बूझत पीरा ॥ १८ ॥
अस नहिं प्रीति हमारी प्यारी सुनौ सिद्धि सुखधामा ।
अपने प्रीतिवान प्रानी को पल भरि तजौं न ठामा ॥ १९ ॥
छोट मानि मोरे प्रीतम को जो कोउ गरब दिखावै ।
अति सें बड़ा बनाऊं ताको ब्रह्महु माथ नवावै ॥ २० ॥
सिगरे लोकन मांह लाड़िलो सबतें तेहि पुजवाऊं ।
ब्रह्मादिक की कौन चलावै मैं तेहि माथ नवाऊं ॥ २१ ॥

* * * *

जो निज मन समेटि सब तरह तें बांधहि मम पद प्रीती ।
ताके साथ दास सम डोलों अस हमार है रीती ॥ २६ ॥

* * * *

ते तुम सबै प्रेम की मूरति सूरति की बलिहारी ।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहि प्रानहुं तें प्यारी ॥ ३६ ॥

* * * *

पुनि धरि धीरज अली भली विधि जोरि पंकरुह पानी ।
सिद्धि आदि सब राज कुमारी बोली अति मृदुबानी ॥ १ ॥
धन्य भाग्य हमरो रघुनन्दन हमतें बड़ कोउ नाहीं ॥
बूड़त रहीं जगत सागर में राखि लीन गहि बांहीं ॥ २ ॥

इस उपरोक्त उदाहरण से कवि के हृदय के भाव सहज रीति से सुन्दर पदों में प्रकाशित हैं । अनेक दृष्टान्तों से उपासक की अनन्य भक्ति पर उपास्य की दया और अनुग्रहशून्यता दिखा कर यह उसी मिस स्पष्ट कर दिखाया कि रामोपासना में उपासक उपास्य का परस्पर बहुत ही स्नेह सम्बन्ध और उपास्य को अपने उपासक भक्त की यदि वह सत्य हो तो बड़ा ही ध्यान और मान रहता है यहां तक कि स्वयं उपास्य रूप श्री भगवान् रामचन्द्र जी कहते हैं कि "ब्रह्मादिक की कौन चलावै मैं तेहि माथ नवाऊं" । यह विश्वास और दृढ़ भक्ति रूप भगवच्छ्रद्धा रामनाथ जी की है कि जिससे उनके द्वारा यह बचन प्रगट हुए ।

रामकलेवा यद्यपि कोई भारी विषय लेकर नहीं बनाया गया एक साधारण देशरीति के अवसर का वर्णन इसमें है पर यह शृङ्गाररस मिश्रित भक्तिभाव परिपूर्ण सरल शुद्ध ललित रचनां का एक लघु ग्रन्थ है। वस्तुओं के वर्णन की शक्ति इनकी राजसभा में सभ्य रहने से बहुत ही विशेष है साधारण कवि ऐसा नहीं कर सकते ॥

तीसरा ग्रन्थ इनका रामहोरीरहस्य है जो रामकलेवा का अनुक्रम कहा जा सकता है। प्रणाली इसकी उसी ढंग की है विषय यद्यपि दूसरा है अर्थात् चौथी चार जो विवाह के अवसर में होती है उसमें सरहज सालियों से जो होली बर आदि होती है उसी रहस्य का रसमय वर्णन है। इसमें पद मैत्री और भी अधिक है और शृङ्गाररस तो अधिक होना ही चाहिए। शिष्ट समाज में किस प्रकार यह रहस्य होता है वा होना चाहिए उसका उल्लेख इसमें देख लीजिए।

"धरि धीरज तहं सिद्धि अमोली मृदु बोली हंसि बोली।
डारि निहारि डारि टोना कछु लाल कियो तित भोली॥ १॥
तुम रघुनन्दन बंदन लायक मुददायक अभिरामा।
अञ्चल वोट दृगंचल चोटैं करिहैं चंचल बामा॥ २॥
सरल रह्यो वह शम्भु सरासन ललन दलन जेहि कीनो।
भौंह कमान कठोर तियन को तकत करत बलहीनो॥ ३॥
बड़े २ प्रबलन तुम जीत्यो करि छल बल बहु भांती।
अबलन जीतब कठिन लाड़िले जब लरिहैं दै छाती॥ ४॥
सुनि सरहज के बचन सलोने अति रसीले रंगभीने।
मृदु मुसक्याय चाय भरि रघुबर बोले प्रेम प्रवाने॥ ५॥
जौन भौंह धनुष मिलिबे हित सिवधनु किय दुई टूका।
तन बल रहै जाय की प्यारी तामें परी न चूका॥ ६॥
बड़े २ बीरन जो जीते तदपि नहीं सुख पाए।
ललिन लड़ाई लेन लाड़िली तुम्हरे महल सिधाए॥ ७॥
परम पियारे संभु हमारे जो तुम उर दरसैहैं।
सो कर कमल चढ़ाय लाड़िली करि प्रसन्न बर लैहैं॥ ८॥

रघुनन्दन के बचन श्रवन सुनि सिद्धि कुंवरि मुसक्यानी ।
बोली चन्द्रकला तेहि अवसर परम चतुर मृदुबानी ॥ ९ ॥
लखन लाल यहि काल न बोलहु कैसे रह्यौ चुपाई ।
धौं बिन काबू देखि कामिनी हिय में गयो डेराई ॥ १० ॥
लखन कह्यौ हंसि सुनहु सलोनी चन्द्रकला तुम नामा ।
हम चकोर रस चाखन चाहैं डर को कहूं न कामा ॥ ११ ॥
बोली कमला सुनहु भरत जी कैसे आप भुलाने ।
कहां परे बनिता मंडल में तुम तो साधु सयाने ॥ १२ ॥
धरि मृगछाला लै कर माला जपो एकंतहि जाई ।
नहिं तो घेरि घेरि सब भामिनि करिलैहैं निज भाई ॥ १३ ॥
भरत कह्यौ तुमहीं भूलति हो हम तो नाहिं भुलाने ।
बड़े विरागी सुनि विदेह को तिन घर कौन पयाने ॥ १४ ॥
हमें तुम बैठि एकांतहि प्यारी आसन उचित जमैहैं ।
तुम्हरे उरहिं राखि कर माला जपि जपि रैन बितैहैं ॥ १५ ॥

* * * *

लखि तेहि कोरी राज किसोरी लै झोरी उठि दौरी ।
मूठिन चपल गुलाल चलावत घेरि लिये चहुंवोरी ॥ २४ ॥
ललकारे पुनि सखन लखन प्रति बहु कुमकुमनि पवारे ।
कोउ के भुज कोउ के कपोल तकि कोउ के कुच बिच मारे ॥ २५ ॥
मूंठिन प्रति मूंठिन चलाय कै चमकहिं चपल कुमारी ।
पहल पहल भो राजमहल में मची अबीर अंधियारी ॥ २६ ॥
हो हो होरी हो हो होरी बोलहिं हो हो होरी ।
गावन वारी गावन लागीं दै दै हाथ हथोरी ॥ २७ ॥
निरखन आईं नगर नागरी ते सब चढ़ीं अटारी ।
लखि कौतुक छज्जन ते छाड़े केसरि रंग पिचकारी ॥ २८ ॥
राजकुमर कुमकुमनि चलावैं पिचकारी सुकुमारी ।
निज पर लखी परै न काहु को मची धूम धुधुकारी ॥ २९ ॥
अबिर अंधेरी घिरी घनेरी कोउ न परत तहं हेरी ।
रंग निसानी धुंधु पटानी दरसी कछुक उजेरी ॥ ३० ॥
तब रघुनन्दन सिद्धि बदन महं दौरि मल्यौ मृदु रोरी ।

सोउ अति चपल लपटि लालन को गाल गुलाल मलोरी ॥ ३१ ॥
भीगे पागे लटपट बागे लपटि भुअंगनि लागे ।
रंगी अबीर अनोखी अलकैं हलकैं कुंडल आगे ॥ ३२ ॥
परसि कपोल अमोल राम को प्रेम मगन भै प्यारी ।
बार बार पट सों मुख पोंछति करति प्रान बलिहारी ॥ ३३ ॥
लखि प्रसन्न मुख पान खवावति सरहज प्रान पियारी ।
सुंदरि की आरती दिखावति बिहंसति अवध बिहारी ॥ ३४ ॥

यक यक गोरी सो २ भोरी मूठि करोरिन मारी ।
को केहि बूझै नेक न सूझै अस छाई अंधियारी ॥
रामचन्द्र मुखचन्द्र चन्द्रिका तऊ न छिपी छिपाई ।
मनों सांझ सावन घन भीतर जागी जोति जोन्हाई ॥

इन ग्रंथों के अपेक्षा इनके बनाए ये छोटे मोटे ग्रंथ हैं-राजनीति, कलि प्रपञ्च, बारहमास माहात्म्य, और भी स्फुट कवित्त अपने प्रभु राजाओं के तथा और २ विषयों के इनके हैं पर वे कहीं पूरी तौर से संग्रहीत नहीं हैं। राजनीति तथा कलिप्रपञ्च के कवित्तों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनको संसार का अच्छा अनुभव था वे जिस बात को देखते थे उसको बड़े ध्यान से बिचार कर उसमें गुण दोष विवेचना करलेते थे-यद्यपि यह साधु संतों के बीच अधिक रहते थे पर राज दर्बार में रहने से इनको हर प्रकार के मनुष्यों के चलन व्यवहार को देखना पड़ा जिसे इन्होंने छन्द में लिखकर चिरकाल तक स्थिर कर दिया है—राजकवि होने से ये जैसे तैसे कवियों को कुछ नहीं गिनते थे जैसा कि इस अर्ध कवित्त से विदित होता है।

"एक तो प्रधान दूजे बांधौपति दीन्ह्यो मान
तीजे गुनमान कहो कैसे दीन भाषेंगे।
देखे कवि राउ होत नो गुनी उराउ जिन्हैं
ऐसे उमण्ड कवित्त जय भाखैंगे ॥

इनकी मृत्यु सं० १९१७ चैत्र बदी द्वितीया को रीवां ही में हुई। मरने के पहिले ये अयोध्या की तय्यारी कर रहे थे जहां से

इनको विशेष प्रीति थी। यह बहुधा अवसर पाने पर महीनों अयोध्याजी वास करते थे-इनके पुत्र हनुमान प्रसाद जी हुए जिनको भूतपूर्व महाराजाधिराज मिहनी ने अपने राज्याभिषेक में सुवर्णपद आदि देकर सम्मानित रक्खा-हनुमान प्रसाद जी के दो पुत्र गोविन्द प्रसाद व जयहर्ष हुए॥

अथ राजनीति कवित्त रामनाथ प्रधान के बनाए।

भूपलक्षण।

देव दुज तोषैं प्रजा प्रान सम पोषैं वृक्ष,
कीन्हें पर रोषैं ना समोषैं मानि प्यार है।
काहू को न लेखैं न्याव डीलन परेखैं काम,
काजी पै बिसेखैं काम देखै बार बार है॥
भाखत प्रधान मान चाकर को राखे बिना,
बिगरे न माखैं कोऊ भाखैं जो हजार हैं।
साजि कै समाजै करै ऐसो राज काजै ताहि,
जानी नरराजै यह राम अवतार है॥ १॥

ब्राह्मन पै माखै प्रीति भाँड़न सो राखैं,
देत वेस्यन को लाखै नेत भाखै यही सार है।
प्रजा द्वार रोवैं आप दोऊ जून सोवैं बिनै,
कीन्हें गुसा होव टेड़ जोवैं बार बार हैं॥
जाकी नीक नारि जानै ताही को सकोच मानै,
भाषत प्रधान आनै ये कौन बिचार है।
नीति नहिं पाले घाले याही रीती चाले ताहि,
जानी महिपाले जम आले जानदार है॥ २॥

दिवान लक्षण

राज नीति जानै बड़ो छोट पहिचानै लाभ,
हानि अनुमानै काज ठानै सावधान है।
तजि कै गुमान बिन्ती सुनै सब लोगन की,
दीन्हे बिन दीन्हे भूरि राखै सनमान है॥
भाखत प्रधान सेवा सहे नहिं सेवक की,
रीझि खीझि दोऊ करिवे में जान है।
सांचो स्वाम काजी राखै रैयत को राजी सदा,
ऐसे कामकाजी पर राजी या जहान है॥ ३॥

साची कहे माखैं सील काहू सो न राखै धन,
ठाकुर को चाखैं बैन भाखैं स्वामकाजी के ।
आठो जाम सेवा लेत मागे मुहुं फेर लेत,
मंत्र मे अचेत हैं निकेत दगाबाजी के ॥
भाखत प्रधान पीर जानै नाहिं रैयत की,
औगुनी गुनी को सदा माने एक दाजी के ।
साचे जालसाजी बने झूठही मिजाजी सदा,
जाहि न सुजान ऐसे पाजी कामकाजी के ॥ ४ ॥
भूपै खुसी राखै तिन्हैं देखे अति माखै जे,
उनको रुख राखैं तिन्हैं भाखैं भले चाल के ।
आप खात गाटैं सेर रॉडन के काटैं रोज,
चाकर को डाटैं कहैं नाटैं साच स्वाल के ॥
बिन्ती सुने स्वास लेत कहैं खर्च को सकेत,
आपनो चुकाय लेत आगे एक साल के ।
स्वारथ के साजी बोलैं स्वाम काजी अस,
देखे बहु पाजी कामकाजी कलिकाल के ॥ ५ ॥

सरदार लच्छण ।

जंग में सुजान बीर बंश में बखान बड़ो,
महा मतिमान मंत्र जानै राज कारन के ॥
समै परे माखैं त्रास काहू को न राखैं पात,
साहो को न झाखैं बैन भाखैं नीति धारन के।
सरन न त्यागैं दान जुद्ध में न भागैं कबों,
भाखत प्रधान प्रीति पागैं नाहिं दारन के ॥
स्वामी काज राचे बैन बोलै न असाचे कबि,
ऐसे गुन जाचे ठीक साचे सरदारन के ॥ ६ ॥
ज्वानी मद भूले देह भारी देख फूले मानि,
आपको अतूले बाड पोंछे हथियारन के ।
सूधो कहे ऐठे बात बोलते अचैठे धरे,
रैयत के पैठैं साथ बैठैं मतवारन के ॥

निमकहराम काम स्वामी के न आए कबौं,
भाखत प्रधान चाम चाटैं पर द्वारन के ।
मन के मिजाजी विप्र साधु के अकाजी सदा,
ऐसे गुन राजी दीख पाजी सरदारन के ॥ ७ ॥

मुसद्दी लच्छण ।

लिखैं अंक साचे जनु ब्रह्म रेख खाचे स्याम,
कागज में राचे लख जाचे जाम जाम के ।
रैयत हआब आब राखि के उगाहैं बाब,
चाकर हिसाब खाब देत दाम दाम के ।
सहसा न रोषै बात सब की समोषैं सदा,
भाखत प्रधान पोषैं दुज धाम के ।
गुन के अमद्दी सच मान के मरद्दी ऐसे,
चाहिये मुसद्दी राजगद्दी ढिग काम के ॥ ८ ॥
चिट्ठा न चुकावैं राज फाजिल सुनावैं दिनौ,
रातहू धवावैं न देवावैं कछू दाम को ।
खूसैं लेइ घूसैं तऊ रैयत पै रूसैं धन,
ठाकुर को लूसैं मूसैं मुलुक तमाम को ॥
झूठे लिखि राखै करै ताहू पर साखै कोटि,
भाखत प्रधान अभिलाखै पर वाम को ।
स्वामी के न काम को करैया बदनाम को सो,
राखिये न पास ऐसे कायथ गुलाम को ॥ ९ ॥

व्यौहर लक्षण ।

देत ना सकेत पालि पालि कै रिनी ते लेत,
त्यागत न हेत नेत बाधे है जो वान को ।
राजा रंक क्रूर सूर सबही सो भाखै पूर,
राखै न गरूर निज संपति के सान को ॥
दाम को न भाखै आब रिनिया की राखै सदा,
भाखत प्रधान अभिलाखत कल्यान को ।
संकट कटैया सदा साकरे सहैया भैया,

लीजिये रुपैया ऐसे ब्योहरे सुजान को ॥ १० ॥
कोऊ जो न लेइ तऊ ठगि कै बलाइ देइ,
पठवै पयादा रोज पूजिबे करार के ।
जोरी ब्याज बट्टा भूरि चोगुनो बढावै सूर,
कागद बनावै पूर झूठही लिखार के ॥
भाखत प्रधान कान काहू की न राखैं कछू,
काफर कसाई जेठ भाई दगादार के ।
बैरी परवार के लुटैया घर द्वार के,
सो करज न काढो ऐसे ब्योहार गमार के ॥ ११ ॥

पंचलक्षण ।

स्वारथ औ परमारथ माहिं जथारथ बात अहै सब जानी ।
रंक और राउ को एकहीं भाउ निसंक नियाव निपाटहि छानी ॥
संकट प्रान परेहू प्रधान तऊ मुख आन न भाखत बानी ।
कांचन और लखै न कबौं अस पाँचन को परमेश्वर मानी ॥ १२ ॥
आवै निआउ न दाउ कछू लहि संपति पांचन में गनि जाहीं ।
राजदुवार लखैं जेहि चार तेही रुख ढारि प्रसंग बताहीं ॥
भाखै प्रधान चलै यहि रीति अनीति अधर्म के मूरति आही ।
पूरि अभागी भई तिन की जिन के घर पाच ये भाखन जाहीं ॥१३॥

बैदलक्षण ।

रोगिन कान सुनै जो कहूँ सहसा निज डीलनही उठ धावै ।
जाय के ताहि भरोस दै भूरि सो नारी निहारि के रोग मिलावै ॥
देत सुधा सम ते रस है मुरदो मुख में परे प्रान जिआवै ।
भाखै प्रधान ये बैद सुजान जो कालहु के करते धरि ल्यावै ॥ १४ ॥

जाय सो बलावै ताहि बातन टरकावै देव,
लोग ते सो आवै ना सुनावै रोग नाम है ।
भेद न बतावै तास पानी लै पियावै,
व्रत डेढ़ से करावै कहै ताही में अराम है ॥
भाखत प्रधान सान चोगुनी धनंतर ते,
एक बार देखि के न झाके तासु धाम है ।

आपु न करै अराम रोगी को कहै निकाम,
ऐसे बैदराज को दूरि ते प्रनाम है ॥ १५ ॥

आँक धतूर घमोइ भरे कखरी पुटकी जग बैद कहावैं ।
जानै नाहीं कछु रोग के लच्छन सीत भये पर माठा पिआवैं ॥
हीरा चहै महा ब्राह्मण सो गुन ताके प्रधान कहां तक गावैं ।
कुत्सित वैदन की करनी यह बैतरनी लैके घर आवैं ॥ १६ ॥
पीठ पिराय तौ पेटहि टोवहि पेट पिराय तौ नारी निहारैं ॥
दै पुरिया पहिले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारैं ॥
बीस रुपैया सगुन्न लै लेहि न देहि जबाब न त्यागत द्वारैं ॥
भाखै प्रधान ये बैद कसाइहि दैब न मारै तो आपुही मारैं ॥ १७ ॥

नारीलक्षण ।

सीलता भरे हैं नैन भाखती सुधा से बैन,
ऐन काज करे में सचैन चपलासी हैं ।
रति में बिलासी पति प्रेम की पियासी सब,
भाति ते सुपासी धाम राजती रमासी हैं ॥
रहै न उदासी सदा दासी सम जोरैं हाथ,
भाखत प्रधान परलोक की प्रकासी हैं ।
कीन्हें तप खासी भाग जागै नर जासी ताहि,
मिलती उमासी ऐसी नारि सुखरासी है ॥ १८ ॥
सासु के बिलोके सिंघिनी सी जमहाइ लेहिं,
ससुर के देखे बाघिनी सी मुख बाउतीं ।
ननद के देखे नागिनी सी फुसकारै जेठि ,
देवर के देखे डाकिनी सी डर पाउतीं ॥
भाखत प्रधान मोछा जारती परोसिन के,
खसम के देखे खाउ खाउ करि धाउतीं ।
कर्कसा कसाइनी कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये,
करम के फूटे यह ऐसी नारि आउतीं ॥ १९ ॥
रोये रहैं रार करैं घर को न कारबार होत,
भिनसार द्वार द्वार लरि आउती हैं ।

सासु जो बहू के जात नेकहू सिखावैं बात,
तौ वै पीसि पीसि दात दून गरिआउती हैं ॥
भाखत प्रधान या गनै कौ जेठ देवर कौ,
खसमै के खान को खबीसिन सी धाउती हैं ॥
कुल की कुठारनी उखारनी कुटुम्बन की,
ऐसी नीच नारिनी ते कलहा कहाउती हैं ॥ २० ॥

पाखंडीलक्षण ।

जाति को छपावै औ पुजावै साधु ब्राम्हन सों,
त्यागयौ देखावैं मनौ सिद्ध झालखंडी के ।
देखैं जहां राजा राउ चौगुनौ देखावै भाउ,
झूठे के प्रेमी नाउ रोवैं हेत रंडी के ॥
पूजा पाठहू समेत करैं सब लोभै हेत,
आनै उपदेस देत बागे वेष दंडी के ।
मानै है गुमान कैसे मिले भगवान जैसे,
भाखत प्रधान ऐसे लछन पाखंडी के ॥ २१ ॥

दंभीलक्षण ।

धोती सेत हाथे बेत फूंकि फूंकि पाँउ देत,
जग में पुजावै हेत कीन्हे स्वाँग भारी हैं ।
कौड़ी के गुलाम सदा लौंडी के चटैया चाम,
कहैं हमैं सीताराम छात छातकारी हैं ॥
गुर ना गोविंद वांचै सातौ जातिहू सो जाचै,
भाखत प्रधान मानौ साचे उपकारी हैं ।
सिद्धता के बाधे जाल दुनियै देखावै चाल,
दंभिन के ऐसे ख्याल चीन्हत खेलारी हैं ॥ २२ ॥

पढ़ैया के लच्छण ।

काव्य कोस के अरोध जौलौ नहिं आवै बोध,
तौलौ नहिं छांडै सोध जुक्ति लै जनैया की ।
मधुर उचारै रस भावहू बिचारै व्यंग,
पद ते निकारै उक्ति धारै समुझैया की ॥

थोरो देख पावे पंथ सिगरो लगावै ग्रंथ,
ताहू पै प्रधान कीर्ति गावै पढ़वैया की।
समुझि के बोलैं स्वाल अर्थ में राखैं ख्याल,
भाखैं कवि ऐसी चाल चतुर पढैया की ॥ २३ ॥
अरथ न ऊझै ना कथा प्रसंग सूझै कछू,
बाचत अरुझै रीति बूझै ना बुझैया की।
केतो घोष राखै तऊ आनौ तान भाखै जो,
सिखावै ताहि माखै मान राखै समुझैया की ॥
घोखत में सोवै पोथी ढोऊ जून टोवै अर्थ,
पूछे मुख जोवै घाप खोवै पढ़वैया की ॥
पद में न राखै ख्याल झूठैं मूंड़ मोरै गाल,
भाखै या प्रधान चाल चूतिया पढैया की ॥ २४ ॥

गुलाम लक्षण ।

नेह नीच नारिन सो प्रीति विवचारिन सो,
पूछत कहारिन सो भेद धाम धाम के ॥
नैन सैन मारैं घाट बाट में खबारैं दूतो,
बोलैं उतै ठारैं और निहारैं अंग वाम के ॥
तर्रि बनावैं खोरि खोरि फिरि आवैं राति,
दोहा ते सुनावै ते जगावैं बान काम के ॥
गर्वहि गहे ते ऐठिं जात है कहे ते ऐसे,
भाखत प्रधान येते लछन गुलाम के ॥ २५ ॥

साँचे के लक्षण ।

कारज वो कीन्हे आस कोऊ जन आवै पास,
बोलैं ना निरास ताकी बिनै सुन लेत हैं ॥
संपति विहीन दीननिगुनी गुनी प्रवीन,
सब को यकीन राखि साधत सुनेत हैं।
भाखत प्रधान जोन जौन जाको कहि देत फेरि,
पलटै न हेत सत्य सीलता के सेत हैं ॥
गेह जान देत निज देह जान देत जानहू को,
जान देत ना जोबान जान देत है ॥ २६ ॥

लायर लक्षण ।

आजु जो कहैं तो आठ मास लौं न लागै ठीक,
कालि जो कहै तो एक साल लों बलावहीं ॥
पाँच दिन कहैं पाँच बरष बिताइ देइ,
पाख जो कहैं तो लै पचासै पहुँचावहीं ॥
भाखत प्रधान जो वा साहू पै न त्यागै द्वार,
आपु न लजात फेरि वाही को लजावहीं ॥
ऐसे सत्य भाखी सरदार हैं देवैया जहाँ,
काहे को पवैया तहां जीवत लौं पावही ॥ २७ ॥

मीत लक्षण ।

बातै ना सुनावैं करतुति कै देखावैं सत्रु,
आय जो सतावै तौ बचावै राखि पानी सो ॥
औगुन को गाड़ै गुन चार्यौ ओर माड़े जाहि,
साकरे न छोड़ै सोक आड़े बुद्धिवानी सो ॥
भाखत प्रधान सान राखै परमाथ की,
भाखै ना जथारथ की भाखै राड़ रानी सो ॥
चाहै। चातुराई गुन आई जो बड़ाई बड़ी,
कारिये मिताई बरिआई दमि प्रानी सो ॥ २८ ॥

दरबारी लक्षण ।

सबै की सुनीजै बात पूछे ते कहीजै सीख,
बड़ेन सो लीजै काम कीजै सुख सोता है ॥
करै दरबारै रहै ठाकुर को प्यारै रुख,
सभा की निहारै औ सम्हारै गूड़ गोता है ॥
भाखत प्रधान मान राखे रहो सब ही को,
राज के समीपिन को जानिये न कोता है ॥
औगुनी गरूर होय केतो बेसहूर पै,
या भूप के हजूर को मजूर गरू होता है ॥ २९ ॥
चुगुल चबाई चोग चूतिया चिपोंग खोग,
लाबर लपोच लुच्चा लालची लुटेरे हैं ॥

गाउदी गरूरदार गव्बर गमार गाँडू,
गप्पई गुलाम गुंडा आदि जे घनेरे हैं ॥
भाखत प्रधान येऊ रहैं दरबार ही में,
धन के खवैया ये न स्वाम काज केरे हैं ॥
धीर बुद्धिमान लोक बेद में सुजान ऐसे,
राज के निसान प्रानी मिलत निबेरे हैं ॥ ३० ॥
नकटा निलज्ज औ निपान नीच निराचार,
निर्दै निंदक लबार नाहट नेबाती हैं ॥
अलसी अधर्मी औ अखोदर गबाज चोर,
अघटी अबाहिज अलाल आप घाती हैं ॥
भाखत प्रधान जेते कपटी कुचाली कूर,
काफर कलंकी पूर कुमती कुजाती हैं ॥
केतो बड़ि जाँइ राजद्वार अधिकार पाय,
इनके सुभायेन की चाल नहिं जाती है ॥ ३१ ॥
फूले फिरैं ऐठे गात सूधो बात में रिसात,
मारे जात लात पै बतात औडिदारी को ॥
डोमौ ते निकाम काम कै के बिङे ल्यावै दाम,
ताहू में गुलाम ठमा माने पनियारी को ॥
भाखत प्रधान ऐसी पाजिन की बाढी सान,
कहाँ लौ करै बखान तिनके गमारी को ।
कुटना कलंकी धूत कोरहा कुकर्मी कूत,
कांगडा कूमूत तेऊ मरै बड़वारी को ॥ ३२ ॥
करनी चमारन की संगति गवाँरन की,
चाल मतवारन की ताही में भुलान है ।
भाखैं मजबूती खात रोजै चार जूती सबै,
नीच करतूती पै सपूती को गुमान है ॥
भाखत प्रधान ऐसे गीदर गुलाम जेऊ,
भागि बस पाय जात राजघर मान हैं ।
लालच के मारे यार चूतिया सराहै तिन्हैं,
सज्जन सुजान लेखैं स्वान के समान हैं ॥ ३३ ॥

आदमी न चीन्हे यह को है कौन लायक को,
सबही सो बाधे फिरै गर्व ही को बाना है ।
जानै ना गवार जानिबे की चार बातैं भारि,
नाहक बनाये फिरै झूठै महताना है ।
भाखत प्रधान राखै कपटै को हेल मेल,
ऊपर ते आपन औ भीतर बिराना है ॥
जेवै जग जाये नर ऐसही सुभायेन के,
काहिबे को मर्द तिन्है जानिये जनाना है ॥ ३४ ॥
कौड़ी चार पावै तौ चमारहू को छाडै नाहिं,
जाति को चोखाई चाह्यो औरनि जगावहीं ।
भंगी मतवार खासे नंगा साहिभार आगे,
पीछे नख भार द्वार द्वार नित धावहीं ॥
भाखत प्रधान ऐसे नकटा निलज्जन को,
सज्जन सुजान सब भाँतिन बचावहीं ।
चलनी को चाम और घोरे की लगाम ऐसे,
सदा के गुलाम काम काहू के न आवहीं ॥ ३५ ॥
एक एक कौड़िन को फोरैं मूड द्वार द्वार,
दिनौ रात दौरैं गमी सादी न बचावहीं ।
लेत लेत यहन कुदान ना अघान कबौं,
बरषी सराध खान हेत रोज धावहीं ॥
भाखत प्रधान याही भांति धन जोरें खूब,
अब तो मिजाज बड़े लोगन देखावहीं ।
चालतो गँवारी डोलि राखैं सरदार पै,
हूकै भिखारी बड़वारी कहाँ पावहीं ॥ ३६ ॥
बड़ेन सो यारी बड़ी बात पै तयारी चाल,
चलैं पनियारी परनारी ना पतीजिये ।
साधुन सो मित्रता अमित्रता असाधुन सो,
विद्या में बिचित्रता देखाय मानि लीजिये ॥
भाखत प्रधान सान चाहो जो सुजानन में,
तजिकै गुमान पाँव याही पंथ दीजिये ॥ ३७ ॥

बिप्रबंस रावन गनायौ गयौ राक्षस में,
छत्री बंस कौसिक कहायौ बिप्र जाती है।
दासी पूत बिदुर ते लेखे गये साधुन में,
भई जुरजोधन की पापिन में ख्याती है॥
भाखत प्रधान भई कुब्जा पटरानिन में,
गनी गै कसाइन में कंस की जमाती है।
ऊंच नीच जाती होय कोन हूँ वे पाँती पै,
या करनी बिकाती है ना जाति गनी जाती है॥ ३८॥

ठाकुर के लक्षण।

थोरेन में तोषै चूक कोटिन समोषै दान,
मान में अदोषै सदा पोषै सेवकान को।
सहसा न माखै आब आपदा में राखै जके,
देत में न लाखै चूकि भाखै न जुबान को॥
छोट औ बड़े की दर जानै पहिचानै चाल,
भाखत प्रधान उर आने न गुमान को।
धनको न धान को न राखी मोह प्रान को,
पै कबहूं न त्यागी ऐसे ठाकुर सुजान को॥ ३९॥
थोरन में रोषै एक बाँधे रहैं दोषै कबौं,
सेवा में न तोषै चूक घोषै लरकाई की।
बिन्ती किये माखै खान पान को न भाखै आब,
समै में न राखै सान भाखै ठकुराई की॥
झूठ कहैं हाजिर हैं ताके पर राजी सदा,
भाखत प्रधान सिरताजी है ढुठाई की।
केतो जाहिरे वा होति केतेन की के वा तहां,
करिये न सेवा ऐसे ठाकुर कसाई की॥ ४०॥

चाकर के लक्षण।

बोले न बेकाज सदा सेवै राखि कै इलाज,
देखिकै मिजाज काज करै नित स्वामी को॥
जैसो रुख जानै तहाँ तैसो काम ठानै गुन,

सभा में बखाने नहिं आनै लोन्ह रामी को ॥
गरब न ल्यावै बात बिगरी बनावै सदा,
भाखत प्रधान त्यों बचावै बदनामी को ॥
देकै मान बार बार राखी प्रान ते पियार,
कबहूँ न त्यागी यार ऐसे अनुगामी को ॥ ४१ ॥
देखै कुकाम न काम कछू बिनती सब जाम करै अति माखी ॥
ठाकुर को न ठिकान गुनै नित आपनो स्वारथ के अभिलाखी ॥
भाखै प्रधान ये कूर कुसेवक काम की दार तरेरहिँ आँखी ॥
काकर से कसकैं हिय में अस चूतिया चाकर को नहिं राखी ॥ ४२ ॥
खीभि के काम करैं नित ही नहिं रीभि की बात कबों बनि आई ॥
ठाकुर ते जो करैं बिनती जनु ऊपर बाघ पर्‌यो बिरुभाई ।
रोज लरैं दरबारिन सों गुन ताके प्रधान कहां तक गाई ॥
बैठि सभा फुसकारहिं साँप सो यों सठ सेवक को न टिकाई ॥ ४३ ॥

भंडारी के लक्षण ।

सावधान आठो जाम स्वामी को सरेखै काम,
देखै न कुकाम काम करैं न गवारी को ॥
धनी मन जानै बड़ा छोट पहिचानै लाभ,
हानि अनुमानै काज ठानै होसियारी को ॥
भाखत प्रधान पालै प्रान के समान कोस,
सुन्दर सुजान छान करहिं लिखारी को ॥
बनै औ बिगार कोष भार राखै बार बार,
दीजिये भंडार ऐसे सुघर भंडारी को ॥ ४४ ॥
स्वामी को न देखै काम सोवै परे आठो जाम,
निमकहराम बाना बांधे मतवारी को ॥
संपति भंडार को न करत सँभार एको,
रचिकै सिँगार वेष धरै सरदारी को ॥
भाखत प्रधान खान पान में सयान बड़ा,
निपट नियान मान राखै ऐंठदारी को ॥
गरवी गँवार करै प्रभु को न कारबार,
दीजे न भंडार ऐसे भड़ुवा भंडारी को ॥ ४५ ॥

गवैया के लक्षण ।

स्वामी औ सभा को सब जानै जहाँ जौनी रीति,
तैसो गान ठानै देखि सुन्दर समैया को ॥
ऐसो सुर गावै कान परते झुकावै सब,
लोगन रिझावै जौन मूरख जनैया को ॥
लेत जब तानै तुम्बरौ को लघु मानै गुन,
भाखत प्रधान जस गानहि दैवैया को ॥
सुन्दर सुजान सीलदार सरदार प्यार,
राखौ दरबार ऐसो चतुर गवैया को ॥ ४६ ॥
गुनी न सराहै गान आपै रंग में भुलान,
सभा मह ठानै तान मान कै जनैया को ॥
राग जो अलापैं गदहौ के सुर ढापैं सुनि,
प्रानो कान चापैं मूड चढ़त सुनैया को ॥
भाखत प्रधान पावै केतहू इनाम दाम,
तऊ बदनाम नाम करत दैवैया को ॥
गरबी गँवार सरदार को न प्यार ऐसो,
राखौ दरबार में न गँडुवा गवैया को ॥ ४७ ॥

पंडित के लक्षण ।

विद्या को निधान लोक वेद में सुजान बड़ो,
मतिमान मोद दायक गुनीन को ।
काहू पै न माखै स्वाम काज अभिलाखै पच्छ,-
पात नहिं राखै सत्य भाखै लै यकीन को ॥
भाखत प्रधान बे प्रमान की सुनै न बात,
करहि समान यत्न दीन औ अदीन को ।
दीजे वेस बास कबौं कीजे ना निरास ताहि,
राखो निज पास ऐसे पंडित प्रवीन को ॥ ४८ ॥
धरम बिहीन काम क्रोध के अधीन सदा,
मूढ़ मति हीन डसा राखे है प्रवीन को ।
धर्म को न लेस धर्म मान को बनाये बेस,
भाखैं मनो सेस उपदेस लै मुनीन को ॥

लीने बिना लांच कबौं सभा में न बोले सांच,
भाखत प्रधान गुन खंडत गुनीन को ।
लीन औ अलीन को विचारै न अकीन को,
सो राखिये न पास ऐसे पंडित मलीन को ॥ ४९ ॥

ज्योतिषीलक्षण ।

जौन करतार लिख दीनी है लिलार अंक,
ताको के विचार करि देत भलो ज्ञान को ।
सागर सुखाय ध्रू सुमेर टरि जाय पै या,
वचन न जाय जो न बोलहि प्रमान को ॥
भाखत प्रधान जानै सास्त्र के निदान सबै,
करहि बखान भूत भावी वर्तमान को ।
दीजै दान मान को न कीजै अपिमान को,
सो राखौ निज पास ऐसे जोतसी सुजान को ॥ ५० ॥
सास्त्र को न जानै सार जैसो जहां देखै चार,
ताही अनुसार भाखै राखै न विचार को ।
लाभ कहै हानि होत हानि कहै लाभ होत,
ताहू पै उद्दोत चाहै राजदरबार को ॥
भाखत प्रधान कबौं धोख्यो न फुरी जबान,
नाहक गुमान ठानै आपु करतार को ।
खात नेग चार को न जानै जोग वार को,
सो राखिये न पास ऐसे जोतषी लबार को ॥ ५१ ॥

कवित्त के लक्षण ।

व्यंग औ भाव कढैं पद तें मृदु अच्छर मीठे लगैं श्रुतिमाहीं ।
नूतन उक्ति अनूपम जुक्ति सुकाव्य के अंग समेत सुहाहीं ॥
भाखै प्रधान भरे सब भूषन दूषन देत कोऊ तेहि नाहीं ।
यों कविता चतुरै कवि की कवि लोग सुनै बिन मोल बिकाहीं ॥५२॥
अर्थ न चोखो कटै पदते कड लागै सुनै बरनै मृदु वाही ।
उक्ति ते छीन न जुक्ति नवीन कवीन के रीति ते हीन सदाही ॥
भाखै प्रधान भरे सब दूषन कोऊ सुनै ना गुनै तेहि काहीं ।
यों कविता कवि मूरख की कवि कौतुक मानि हसैं चहुंपाहीं ॥५३॥

काहू को अर्थ नीको पद ना जुरत ठीको,
काहू को पदहि नीको अर्थ सुख नाहीं है।
काहू को अर्थ पाठ दूनौ में तरंगी न ताई,
काहू को रुचताई दूनौ में लखाई है॥
भाखत प्रधान कवितान के अनेक भेद,
जानत सुजान स्वाद गने ना सिराही है।
केरा सम पेल सम दाख औ दरीमा सम,
आम के बदाम के समान ते सुहाही है॥ ५४॥

कपूत सपूत के लक्षण ।

बाप की रजाय राखैं गारिहू दिये न माखैं,
कबहूं न भाखैं बैन निज करतून के।
देत में न रोषैं चारि सब की समोषैं परवार,
निज पोषैं भले तोषैं एक सूत के॥
भाग्य बढावैं गुन गर्ब ना देखावैं विप्र,
साधु ना सतावैं मन भावैं सब भूत के।
रच्छन अपच्छन के तच्छन करैया काज,
भाखत प्रधान ऐसे लच्छन सपूत के॥ ५५॥
बाप को कछू गनै न बोलत तरेरे नैन,
गुरहू सो भाखै बैन कपट कुसूत के॥
आप पेट पोषै परवार को न तोषैं सीख,
दीन्हें पर रोषैं चूक घोषैं सब भूत के॥
गर्ब भरी आखैं सूध काहू सों न भाखैं प्रीति,
पाजिन सो राखैं रस चाखैं संग कूत के॥
हीन करतूत के मवासी छली भूत के,
सो भाखत प्रधान ऐसे लच्छन कुपूत के॥ ५६॥

चोपदार लक्षण ।

देसी परदेसी की सभा की समै जानै सबै,
ताही अनुसार पेस राखै दरबार में॥
जैसो रुख जानै तहां तैसो काम ठानै छोट,

बड़ो पहिचाने सनमाने बड़े प्यार में ॥
भाखत प्रधान सावधान रहैं आठौ जाम,
स्वामी को मिजाज मान जाने वारवार में ॥
सुमति सुजान सीलदार सरदार प्यार,
ऐसो चोपदार सदा चाही राजद्वार में ॥ ५७ ॥
जिन्हें कहैं रोकैं तिन्हें जात में न टोकैं जिन्हें,
कहत न रोकैं तिन्हें टोकैं बार बार में ॥
जिन्हें न बोलावैं तिन्हें सभा में ले आवैं,
जिन्हें भूपहू बोलावैं न जनावै सरकार में ॥
भाखत प्रधान जानै स्वामी को मिजाज नाहिं,
कुकुर से भोंकि धावैं देखत दुवार में ॥
गरवी गँवार सरदार को न प्यार ऐसो,
पाजी चोपदार को न राखी दरबार में ॥ ५८ ॥

वैराग के लक्षण ।

संपति तीनहुं लोकन की जिनने मन ते मल मूत सो त्यागी ।
कानन में बिचरै सुख सों मुख सों हरि नामहि की रट लागी ॥
छूट गई जग की दुविधा तन माने मुधा बसुधा बड़भागी ॥
खासे निहंग असंग विहंग से भाखै प्रधान ये सावै विरागी ॥ ५९ ॥

भक्त के लक्षण ।

देखैं चराचर में हरि रूप सुरंक औ भूप बराबर जाने ॥
बैरिहु को दुख देत नहीं अरु अपने को त्रिन ते लघु माने ॥
रामकथा सुनि कै हरषैं बरषैं जल नैन तजैं तन भानै ॥
प्रेम असक्त विषै ते विरक्त तेई हरिभक्त प्रधान बखाने ॥ ६० ॥

ज्ञानिन के लक्षण ।

ब्रह्म सरूप अहै सिगरो जग ब्रह्म ही है सब पौन औ पानी ॥
मैं अरु मोर औ तोर अहै यह माया को रूप लियो पहिचानी ॥
जैसे रहै मति तैसे परै निज देह अनित्य लिखे दृढ़ मानी ॥
है सब थान में मोह महान सुभाकै प्रधान ये पूरन ज्ञानी ॥ ६१ ॥
ऊपर साधु को वेष किये अरु भीतर नीच विषै अभिलाखी ॥

बास कहैं सत मारग को नहिं मानत वेद पुरान की साखी ॥
चोरिन कोटिन पाप करैं बजै कोउ ताही तरैंगहि ऑंखी ॥
ज्ञान के पापिन की यह चाल प्रधान पुरान जथारथ भाखी ॥ ६२ ॥
थोरो सुधर्म करैं न कबों नित झूठे सुकर्म सभा में सुनावैं ।
ज्ञान कथै जग झूठो सबै तिय के हित भूषन रोज गढावैं ॥
दान के लेहु कहैं सब सों एक कौड़िहु आप न देहि देवावैं ।
बातन ही के बनैं फिर साधु प्रधान येई ठग भक्त कहावैं ॥ ६३ ॥

हिन्दी का पहिला नाटक।

(बाबू राधाकृष्ण दास लिखित)

यह नाटक जो आगे दिया जाता है हिन्दी का प्रथम नाटक है। इसके रचयिता पूज्य भारतेन्दु जी बाबू हरिश्चन्द्र जी के पिता श्रीकवि गिरिधर दास प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र थे। भारतेन्दु जी जब ९ वर्ष के थे तब यह नाटक बना था। अतएव सन् १८४१ ई० में यह बना था। इसके पहिले जो कई ग्रंथ नाटक के नाम से प्रसिद्ध थे, जैसे ब्रजबासीदास का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक या नेवाज का शकुन्तला नाटक, ये सब काव्य के ढङ्ग पर थे। पात्र प्रवेश आदि नाटक के नियम इनमें नहीं बरते गए थे।

इस नाटक की पूरी प्रति का कहीं पता नहीं लगता, केवल प्रथम अङ्क कविवचनसुधा के पहिले वर्ष के एक अङ्क में संयोग से रद्दियों में मिल गया। उसे पाठकों के विनोदार्थ प्रकाशित करता हूं।

कवि का जीवनचरित अलग भारतेन्दु जी के जीवनचरित में विस्तार के साथ प्रकाशित हो चुका है इसलिये उसका यहां देना आवश्यक नहीं है।

नहुष नाटक।

महाकवि श्री गिरिधरदास

(उपनाम बाबू गोपालचन्द्र) कृत।

(प्रस्तावना)

दो०। नागर नट पट-पीत-धर, जिमि घन विज्जु विलास।
भव आतप को भय हरत, होत सुखी सब दास॥ १॥

(मङ्गलाचरणान्तर नान्दी)

कवित्त। मेचक वरन वर जीवन निवास वर
	अङ्गुलनि की लसति सुन्दर परम दाम।
सहित पर भंजन की गति धरै अम्बर
	विराजै प्रगटावै तिय तन काम॥
छिय हरषित महा सारंग धनुस धरै
	बरसत सर पर पूरै जन अभिराम।
गिरिधरदास देखि नीलकंठ नृत्य करैं
	ऐसो बसो आय मेरे मन कोऊ घनस्याम॥ २॥

(अपिच)

सवैया। नित गावत सेस महेस सुरेस से
	पावत वांछित भृत्य औ भृत्या।
श्रुतिकीरति विश्रुत जासु महा
	जग पातक वृन्दनि पातक कृत्या॥
भव तारन को गिरिधारन जा मधि
	जामुने सों अधिकी धरी सत्या।
वर आनंद-धाम सुदाम गुनाकर–
	स्याम को नाम हतै सब हत्या॥ ३॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधारः)

सूत्र–सब कोऊ मौन ह्वै हमारी बात सुनौ। विविध बिबुध वृन्दारकवृन्द–वन्दित वृन्दाबनवल्लभ ब्रजवनिता वनजवनी विभाकर बंसीधर विधुवदन-चकोर चारु चतुर चूडामणि चर्चित चरण परमहंस प्रसंसित मायावाद–विध्वंसकर श्री मत् वल्लभाचार्य बंस अवतंस श्री गिरिधर जी महाराजाधिराज ने मोकों आज्ञा दीनी है। सो मैं गिरिधरदासकृत नहुष नाटक आरम्भ करौं हौं।

(तब आगे बढ़ि हाथ जोरि के)

इहां सब सुभ सभ्य सभाध्यच्छ अपने अपने पच्छन के रच्छन मैं परम विचच्छन दच्छ हैं इनके समच्छ इह ढिठाई है तथापि कृपा करि सब सुनौ।

छप्पय। जदपि मातु पितु भ्रात बिप्र गुन-गन अधिकाई।
तदपि तोतरे बोल सुनत सिसु के मन लाई॥
जदपि प्रकासक आप सूर जग और न दूजा।
तदपि भक्त जो दीप देत तेहि मानत पूजा॥
तिमि जदपि सबै पंडित सुघर गुन बिनु कोउ न लेखिए।
यह तदपि हमारी नाट्य-विधि चित दैके अब देखिए॥ ४॥

(तब पारिपार्श्वक)

(भाव) अहो तुमारी बात सों मेरे गात मैं आनन्द नहीं स-मात है। तासों कौन श्री गिरिधर जी महाराज हैं सो बतावो।

सूत्रधार। (सानन्द) अहो तुमने नहीं जाने।

(तब सामुहे देखि कै)

यह सिंहासन पर सूरज समान तेजमान चन्द्र समान सीतल सुभाव मंगल समान मंगल नाम बुध समान बुध गुरु समान गुरु कवि समान कवि सप्तम यह सों रहित बिराजैं हैं।

छप्पय। श्रुति उद्धारक मीन कमठ निरजर कुल जयकर।
महि उद्धरन बराह भक्त भय हर नर नाहर॥
असुर मोह कर बटुक दुष्ट मद हरन परसुधर।
धरम धीर रघुबीर सीरधर ब्रज जन प्रियवर॥
बुध सदा अहिंसा रति धरन कलकी कलि कलमस हरन।
गिरिधर सम दस वपु॰ धर प्रगट गिरिधर लाल कृपा करन॥ ५॥

पारिपार्श्वक। तुमने जैसे कृपा करि श्री महाराजाधिराज को दरसन करायो तैसे कृपा करि नाटक हू दिखायो चाहिए।

सवैया। थावर जंगम सृष्टि रची बिधि-
न्यारी करी सबहीन की रीतै।
तामैं सिरोमनि मानव की तन
देवहु गावत जा गुन गीतै॥
विद्या बनी सिगरी इहि हेत
विचारिकै जा सुखसार प्रतीतै।

सोई घरी अरु कंचन की धन
जो रस की चरचा मधि बीते ॥ ६ ॥

सूत्रधार। घर सों सुघर घरनी कों बुलाइकै मैं यामें प्रवृत्त होउ हैं।।
(यह कहि नेपथ्य की ओर देखि कै कह्यौ)

अरी यहां आउ।
(तब प्रविसि कै नटी)

आर्यपुत्र, कहा आज्ञा।

सूत्रधार। दोहा। जा बिधि राजा नहुष नैं कियो स्वर्ग कों राज।
सो नाटक चाहत करन हुकुम कियो महराज ॥ ७ ॥

नटी। जो आज्ञा।

सो तू सावधान होय कै कारज कों साधि।
(इतने में नेपथ्य में)

अरे शैलूषाधम

सवैया। जथा श्रुति में बरन्यो बिसतार
तथा हयमेध करै सतवार।
हजारन पुन्य के पाव दहै
गिरिधारन पूजै अनेक प्रकार॥
मिलै तब आसन इन्द्र को स्वर्ग मैं
आइ करै सुर वृन्द जुहार.।
कहै तेहि बैठि है मानव क्षुद्र
अरे नट पापी गंवार लबार ॥ ८ ॥

सूत्रधार। (करन दै कै)

सवैया। गौर सरीर अबीर से लोचन
मस्तक मैं कसमीर बनाए।
सीस किरीट नफीस लसै
बिबिकुण्डल कानन रत्न जराए॥
श्री गिरिधारन के बल सों
बधि वृत्रासुरै सब दैत नसाए।

सो बतियां सुनि कोप भरो
सुरनायक आवत बज्र उठाए ॥ ९ ॥

दोहा। यह हम सों सब बिधि बड़ो निरजर कुल को छत्र।
अब इत रहनो उचित नहिं तासों चलु अन्यत्र ॥ १० ॥

(यह कहि दोऊ निकरे)

इति प्रस्तावना

प्रथम अङ्क।

स्थान—राजभवन

(तब प्रविस्यो इन्द्र)

अरे शैलूषाधम (यह कहत फिरन लाग्यो)

(इतने मैं नेपथ्य मैं)

सवैया। देखहु तो बिपरीतता काल की जो करतार हू अघता ठानै।
ऊंचो सिंघासन देइ अघी कहं धर्म धरे तेहि दारिद सानै॥
माया बली गिरिधारन की जिहि नैन सहस्रन सों पहिचानै।
काटिकै ब्राम्हन मस्तक कों यह आपुने कों धरमातमा मानै ॥ ११ ॥

इन्द्र। (सभय करन दै कै)

कवित्त। भलो हू करत आय बिपति परत सीस
यह विपरीति रीति बिधि की कुचाली सी।
लोक सोक हस्यो हरि असुर को आसु तऊ
कढ़ी ब्रम्हहत्या दीह सांस लेत व्याली सी॥
मेरे ज्ञान मेरी जान लेन पाछे आवति है
सूल लिए कोप भरी प्रलय कपाली सी।
कुमति कलंकिनि कुचालिनि कुचैल कूर
काल सी कराल काज रात की सी काली सी ॥१२॥

(यह कहि चल्यो) (तब इन्द्र आत्मगत)

दोहा। एक बार मार्यो गुरुहिं तब विधि मार्यो ताप।
अब दूजी हत्या लगी हा ! किमि जै है पाप ॥ १३ ॥
(यह कहि निकस्यो। तब प्रविसी ब्रह्महत्या)

ब्रह्महत्या। अरे निज मुख निज प्रसंसक नृसंस, ब्राह्मन बध करने वारे, कहाँ भाग्यो जाय है।
(यह कहत खलित नृत्य कियो। फेरि निकरी)
(तब प्रविसे जयंत, कार्तिकेय)

जयंत। सवैया। मैं जननी घर बैठो हुतो
तित दूत ने आय हवाल उचार्यो।
नर्मदा तीर भयो अति संगर
काल ने दानव देव सँहार्यो ॥
श्री गिरिधारन के परताप सों
बासव वृत्र को प्रान निकार्यो।
जानत ताकहँ आप अहो सो
कहो किमि तात महा रिपु मार्यो ॥ १४ ॥

कार्तिकेय। (साचरज)
दोहा। सुरपति सुर यह बचन सुनि अचरज मोहि बिसाल।
कहा न तुम रन में रहे जो पूछत हो हाल ॥ १५ ॥

जयंत। सवैया। जा दिन सों अरि की भय भागि कै
त्याग कियो घर मेरे पिता नैं।
ता दिन सों जननी ने तज्यो सब
धारे हिये गिरिधारन ध्यानैं ॥
सेवन तासु लियो हम प्रीति सों
सामा प्रसून फलादिक आनैं।
संगर मैं नहिं संग रहे
कछु तासों न ताके हवालहिं जानैं ॥ १६ ॥

कार्तिकेय। जब वृत्रासुर के भय सों सूर सब भागे तब छीरनिधि के निकट जायके यह कहन लागे।

---

* यहां से मूल प्रति में अङ्क गड़बढ़ हो गए हैं। उसमें यहां १७ का अङ्क दिया है

छप्पय । जै रमेस परमेस सेस सांई सुरेस हरि ।
जै अनंत भगवंत संत बन्दित दानव अरि ॥
जै दयाल गोपाल प्रतिपाल गुनाकर ।
जै अनन्य गति धन्य धरमधुर पंचजन्यधर ॥
वृन्दारक वृन्द अनन्दकर कृपाकन्द भव फन्द हर ।
हरवंश मनोहर रूप धर जै मुकुन्द दुःख दुन्द दर ॥ १७ ॥

जयंत । (सानन्द) तब कहा भयो ।

कार्तिकेय । जब देवतान ने ऐसे बीनती करी तब आकासबानी भई ।

दोहा । सब सुर जाहु दधीच पै मांगहु तिनको गात ।
तासु अस्थि को कुलिस रचि करहु वृत्र को घात ॥ १८ ॥

जयंत । (सानन्द) तब कहा भयो ।

कार्तिकेय । यह सुनि प्रनाम करि सब देवता दधीच पैं जाय हाथ जोरि कहन लागे ।

दोहा । जय मुनि मंडन धरम धर पर उपकारक आर्ज ।
दीनबन्धु करूना सदन साधहु सुर को कार्ज ॥ १९ ॥

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे सबके बचन सुनि दधीच बोले ।

बरवै । जों मोसों जाचत सुर सहित सनेह ।
तो मन इच्छित दैहों मम व्रत एह ॥ २० ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे मुनि के बचन सुनि प्रसन्न होय देवता बोले ।

दोहा । वृत्रासुर भय भीत हम मांगत तुमरो गात ।
वज्र विरचिकै अस्थि को करिहैं ताको घात ॥ २१ ॥
जदपि देह बल्लभ सबहिं चहत यासु जग श्रेय ।
तदपि धरम धुर धरन कों लहिं कछु अहै अदेय ॥ २२ ॥

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे देवतन के बचन सुनि खिन्न मन होइ के बोले ।

सवैया । देखहु तो जग जब की रीतिहिं

आपुने ही हित सों हित ठानैं।

देवहु भूलि रहे इहि मैं
तब और की बात कहा कहि छानैं॥

का करतव्य निसेध कहा
गिरिधारन कोऊ नहीं पहिचानैं।

स्वारथ में मन दौरि रह्यौ
परमारथ तासों अकारथ जानैं॥ २३॥

दोहा। निज अरि कारन हेतु तुम अस्थि चहत मम देव।
कैसा दुख मोहि मरन को सो नहिं जानत भेव॥ २४॥

जयंत। (चिन्ता सहित) तब तब।

कार्तिकेय। तब देवता सब उदास होय कै यह बोले।

दोहा। जिमि तब गात विनास दुख गुनत न हम निज स्वार्थ।
तिमि न तुमहुं मम दुख गुनत समुझहु बिप्र जथार्थ॥ २५॥

जयंत। तब तब।

कार्तिकेय। ऐसे देवतान के बचन सुनि मुनि मन मैं विचारन लागे।

सवैया। विधि देह रची सब की गढ़ि भूतन हैं जहं जन्म बिनास प्रकार।
जगती महं जाहिं जन्यो जननी वह जैहैं हन्यौ जम सों व्यवहार॥
गिरिधारन भक्ति करै सम ह्वै यह संसृति रोग को है उपचार।
श्रुति चार विचार कियो निरधार अहै उपकारहि जीवन सार॥२६॥

(ऐसे सोचिकै प्रसन्न ह्वै बोलत भए)

दोहा। सब देही कों देह यह जदपि परम प्रिय एव।
तदपि मुदित चित स्याम हित तुम कहं दैहैं देव॥ २७॥

सोरठा। इमि कहि मुनि मति पीन हरहिं ध्याइ मूंदे दृगन।
भए ब्रह्म मैं लीन गात पात पुहुमी भयो॥ २८॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा। तब लै आए अस्थि सुर गावत मुनि गुन गाथ।
विसुकरमा बज्रहिं बिरचि दियो देवपति हाथ॥ २९॥

जयंत। (सानन्द)।

सवैया । सोइ धर्मनिधान सुजान महा गिरिधारन मैं रति जासु भई ।
पर को उपकार रुचै मन मैं परमारथ की वर राह लई ॥
पितु मातु कृतारथ ताके सदा जिनके सुत ने जस बेल बई ।
वह धन्य दधीच मुनीस अहैं जिन अन्य के कारन देह दई ॥३०॥

कार्तिकेय । सत्य सत्य ।

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । सवैया ।

ध्याय कै पाय रमावर के उर पूजि घनी बिधि विप्र समाजा ।
आसिष लै गुरुदेव की प्रेम सों मंगल मै बजवाय कै बाजा ।
(गिरिधारन*) रत्न (है जा) चक पैं सुभ सोधि मुहूरत आनंदसाजा ।
जंग के काज उमंग भरो सित रंग मतंग चल्यौ सुरराजा ॥ ३१ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । चलत देखि सुरपतिहि चली सुर सैना भारी ।
कोटिन मत्त मतंग तुरग स्यन्दन पद चारी ॥
कहि न जाय अति भीर तीर तरवार चमक्कैं ।
फरहराहिं बहु केतु बीर धह धह यह बक्कैं ॥
जम जलपति धनद दिनेस ससि अस्विनिसुत वसु रुद्रगन ।
सिखि साध्य जच्छ किन्नर मरुत चले सबहि बढ़ि रन करन ॥ ३२ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । आवत सुनि सुर सैन कों वृत्र बली असुरेस ।
सजंग होहु सब बीर मन ऐसो दियो निदेस ॥३३॥

छप्पय । प्रमुचि नमुचि सत नयन संकुसिर द्विसिर अनर्वा ।
सकुनी हेति प्रहेति विप्रचित्ती वृषपर्वा ॥
अंबर उत्कल कपिल बाजिमुख इल्वल संवर ।
असिलोमा अतिनाम रिसभ बल्वल बल बलधर ॥
रन आदि अनेकन असुर वर निज निज सैना सजि चले ।
तिनके मधि वृत्रासुर लसै जाहि देखि सुर खलभले ॥ ३४ ॥

* मूल ग्रन्थ में केवल "रत्न चक पैं" "पाठ है। जान पड़ता है कि "गिरिधारन" और रत्न के पीछे "है जा" यह छापेवालों के भ्रम से छूट गया था।

जयंत । (चिन्ता सहित) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब दुहुं दिसि के सुभट बढ़ि करत भए संग्राम ।
तुमुल शब्द सुनियत श्रवन जासों लय छन छाम ॥ ३५ ॥

छप्पय । तबै घोर संघट्ट मच्यो सुर असुर भट्ट सों ।
भिरे समर चोहट्ट सबै धरु मारु रट्ट सों ॥
सूल सक्ति असि पट्ट गदा सर परिघ टट्ट सों ।
श्रोनित सरित प्रगट्ट भई दुहुं दिसिन भट्ट सों ॥
बहु कवच कुंड कुंडल मुकुट सिर पद कटि कटि गिरे ।
असुर बाजि बाजन बली युद्ध थली सोहहिं परे* ॥ ३६ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब जम धनद प्रहारसों विमुख भई पर सैन ।
कोपि सूल गहि† भिरत भो वृत्रासुर सुर जैन ॥ ३७ ॥

जयंत । (चिन्ता सहित) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । इमि निज सैन विनास लखि सहसनैन बल ऐन ।
वृत्रासुरहिं प्रचारिकै भिरत भए अरि जैन ॥ ३८ ॥
सक्र चाप टंकारिकै हने अनेकन पत्र ।
तिनहिं सहत दौरत भयो महाकाल सम वृत्र ॥ ३९ ॥

छप्पय । तब सुरपति गहि गदा असुर दिसि भए चलावत ।
ताहि पकरि कर वाम तजी लखि कै ऐरावत ॥
तासों ह्वै कै बिकल भयो गज भूतल आवत ।
चेत खोय बल गोय तुरत गिरि पर्यो महावत ॥
सुरनाथ महा सम्भ्रम सहित उतरि समर ठाढ़े भए ।
सो लखि अमरन हा हा कियो उर अतिही चिन्ता मए ॥ ४० ॥

जयंत । (सकम्प) तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब मातलि लायो सुरथ सुन्दर अर्व लगाय ।
तापै बैठ सुपर्वपति भिरे वृत्र सों जाय ॥ ४१ ॥

---

* यहां से फिर अङ्क गड़बड़ हुआ है यहां ४९ का अङ्क दिया है ।
+ मूल प्रति में कुछ अक्षर छूट गए थे, मैंने पाठ ठीक करने के लिये "कोपि सूल ग" इतना बढ़ा दिया है ।

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । अरिल्ल । वृत्रासुर सह कोप सूल कर धारिकै ।
धायौ सुरपति ओर घोर ललकारिकै ॥
सुनासीर रनधीर वीर तिहि डांटिकै ।
कुलिस त्यागि सह सूल दियौ भुज काटिकै ॥ ४२ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब दूजे कर परिघ गहि हन्यो बासवहि भूमि ।
ता प्रहार सों हाथ सों कुलिस गिर्‌यो रन भूमि ॥४३॥

सोरठा । लाज सहित सुर राज वज्र उठावन नहिं चहे ।
तबहिं दनुज सिरताज बिहंसि बचन बोलत भयो ॥ ४४ ॥

छप्पय । देह करम आधीन चलै ताके अनुसारहि ।
तासो बरबस जीव लहै सुख दुख संसारहि ॥
और चाह अनुसरै काज तहं औरहि जोवे ।
कोटि जतन कोउ करै जोन होनी सो होवै ॥
द्वै करत जहां संगर तहां इक जीतत इक मरत ध्रुव ।
यह गुनि बुध इहि चिन्तत नहीं अति असार व्यवहार भुव ॥ ४५ ॥

कवित्त । जेते जग भोग जामैं भूलि रहे लोग ते
करहिं सब रोग कहि सोग के बताइयै ।
करम को गेह पंच भूत मई देह
नासमान गुनि एह नेह काहे को बढ़ाइयै ॥
गिरिधर दास कोऊ काहू को न संगी स्वास
करि बिसवास वृथा त्रास उपजाइयै ।
दारा सुत विरत अहै सबहिं अनित तासों
गुनि निज हित चित स्याम पद लाइयै ॥ ४६ ॥

दोहा । तातें तुम भय लाज तजि बज्र उठावहु हाथ ।
जो भवितब सो होय है समर करहु मम साथ ॥ ४७ ॥

जयंत । (साचरज) वाह वाह ।

कार्तिकेय । दोहा । वृत्रासुर के बचन सुनि चकित होय सुर राय ।
सत्रुहिं बहुत प्रसंसि के कहत महत हरखाय ॥४८॥

सवैया। लहिकै यह तामस दानव को तन
जामें बिवेक न नेकु रहै।
मुनि सी वर बात बखानत हौ
गुनिकै जन जो भव ताप दहै॥
गिरिधारन भक्ति प्रभाव महा
कहिए किमि जा जस बेद कहै।
हरिभक्त अनन्य मैं गन्य सदा
तुमरे सम धन्य न अन्य अहै॥ ४९॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा। दूमि कहि कुलिस उठाइकै प्रमुदित चित सुरनाथ।
परिघ सहित असुरेस को काट्यो दूजो हाथ॥ ५०॥
तब निज बदन पसारिकै वृत्रासुर अरिकाल।
बाहन सहित सुरेस को लील गयो बिकराल॥ ५१॥
लखि सहसा सहसाच्छ कहं निगलत समर मंझार।
देवन हाहाकार किय असुरन जैजैकार॥ ५२॥

छप्पय। असुर उदर मैं सुरथ सहित चलि गए पुरन्दर।
जैसे कोऊ जाय स्याम गिरि कन्दर अन्दर॥
कृष्ण कवच परभाव भयो असु को अभाव नहिं।
काटि कुलिस सों कच्छ कढ़े तुरतहिं ता थल महिं॥
जिमि फारि महातम निकर कों निकरत नभ मैं नखतपति।
तिमि कढ़त भए अरि-अंग सों सुरपति वर भट विमल मति॥५३॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा।
तब निज कर महं कुलिस गहि रोस सहित सुरनाथ।
कई बरस मैं काटि कै महि पार्‌यौ अरि माथ॥ ५४॥

कवित्त। वृत्रासुर धर जबै धरनी पै आय गिर्‌यौ
थर थर हाले तबै तीन लोक नव खंड।
मेरे जान स्याम ने अपानी सता धरी जाय
तासों बची सृष्टि प्रलैकाल ना भयो अखंड॥

गिरिधरदास ना तौ कौन जानै कहा होतो
पाय कै प्रहार महाकाल दंड सो अखंड ।
कूटि जातो गज प्रान टूटि जातो कोल, रदु
कूटि जातो सेस फन फूटि जातो ब्रम्हअंड ॥ ५५ ॥

दोहा । वृत्रासुर की ज्योति कढ़ि भई व्याम मैं लीन ।
लखि व्याकुल भागे असुर सुरन नगारे दीन ॥ ५६ ॥

जयंत । (सानन्द) पाप कट्यो पाप कट्यो ।

दोहा । अब मोहि उपजी चित्त मैं पितु पद दरसन चाह ।
ते कित देहु बताय मोहि निर्जर सैनानाह ॥ ५७ ॥

कार्तिकेय । दोहा । वृत्रासुर के नास लौं हम देखे अमरेस ।
अब तिनको जानत नहीं अहैं कौन से देस ॥५८॥*

(इतने मैं आयो मातलि दोउन के पाय परि ठाढ़ो भयो)

जयंत । दोहा । कह मातलि अरि मारि कै कित राजत सुरराज ।
मैं तिनको दरसन चहत भयो सिद्ध सब काज ॥ ५९ ॥

मातलि । दोहा । वृत्रासुर कों मारिकै द्विज भय हत्या पागि ।
हम नहिं जानत कौन थल गए देवपति भागि॥६०॥

जयंत । दोहा । शत्रु मर्यो हत्या लगी मनु दोहरानो रोग ।
अब चलि तिन कों खोजिकै हरिए कोउ बिधि सोग ॥६१॥

कार्तिकेय, मातलि । सत्य सत्य

(इमि कहिकै सब निकरे)

इति श्री नहुष नाटके प्रथमोङ्कः ।

---

* यहां फिर गड़बड़ हो गया है, ६३ के स्थान पर ६४ का अङ्क दिया है ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

नवां भाग।

सम्पादक

श्यामसुन्दर दास बी० ए०

सहकारी सम्पादक

किशोरीलाल गोस्वामी

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

द्वारा प्रकाशित।

Benares
Printed at the Medical Hall Press.

1905.

सूचीपत्र ।

टैन और वैज्ञानिक चित्रों (स्लाइड्स) की जो आवश्यकता है उसमें यह रुपया ख़र्च किया है । इस रुपए से सभा ने लंडन से चुने चुने चित्र और लालटैन आदि मंगवाई है ।

(६) संयुक्त प्रदेश के भाषा स्कूलों के विद्यार्थियों को नागरी लिपि पर यथानियम पारितोषिक और प्रशंसा पत्र इस वर्ष भी दिए गए ।

(७) अवध और रुहेलखंड रेलवे ने यह स्वीकार किया है कि हर स्टेशनों पर किराए का टेबुल नागरी अक्षरों में छपवाकर लगाया जाय ।

(८) पृथ्वीराजरासो का छापना प्रारम्भ हो गया है । वैज्ञानिक कोश की चौथी संख्या (रासायनिक परिभाषा) छप कर प्रकाशित हो गई । उसका मूल्य ॥) है ।

नवीन अधिकार प्राप्त सभासद ।

२७ अगस्त १९०४–(१) बा० सीतल प्रसाद जैनी, लखनऊ ।

२८ जनवरी १९०५–(१) स्वामी नित्यानन्द, काशी (२) पं० हृदयनारायण शर्म्मा, ज़ि० मुज़फ्फरगढ़ ।

२५ फ़रवरी १९०५–(१) पं० रामनाथ मिश्र, काशी (२) बा० दामोदर प्रसाद वकील, ज़ि० पलामू (३) बाबू जानकीशरण बुलाकी-लाल वर्म्मा, लक्खीसराय (४) पं० कृष्णानन्द जोशी, ज़ि० नैनीताल (५) श्रीयुत दीवान शत्रुजीत जू, छत्रपुर (६) सेठ जमुनालाला जैलाल, जैपुर (७) बा० कानजी मल, ज़ि० बुलन्दशहर (८) बा० कल्यान सिंह, ज़िला बुलन्दशहर (९) बा० नानकचन्द सौदागर, बुलन्दशहर (१०) बा० नारायण दास, बुलन्दशहर (११) बा० बिहारी लाल आर्य, बुलन्दशहर (१२) पं० भोजराज शर्म्मा, बुलन्द शहर (१३) बा० धनसिंह मुदर्रिस, बुलन्दशहर (१४) पं० श्याममनोहर शुक्ल, बुलन्द-शहर (१५) बा० परशादी लाल मुख़्तार बुलन्दशहर (१६) बा० जगन्नाथ प्रसाद, छतरपुर (१७) लाला भगवानदीन, छतरपुर (१८) (१८) बा० हरिबहादुर सिंह, छतरपुर [१९] बा० शंकरबहादुर वर्म्मा, ज़ि० झांसी (२०) बा० शिवसहाय अढ़तिया, बुलन्दशहर २१ बा०

डूंगरसिंह पटवारी, बुलन्दशहर (२२) बा० गोपालनारायण वकील, बुलन्दशहर ।

२५ मार्च १९०५–(१) पं० गङ्गाराम सारस्वत, काशी (२) बाबू केशव दास, काशी (३) पं० माधवराव करमरकर, काशी (४) बा० शिवप्रसाद, जौनपुर (५) पं० नारायण प्रसाद, अजमेर (८) पं० रामस्वरूप शर्म्मा, अजमेर (९) बा० राजबहादुर लाल, फैज़ाबाद (१०) बा० अखिलचन्द्र पालित, कूचबिहार (११) स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी, बम्बई [१२] ।

२९ अप्रैल १९०५–[१] बा० बद्रीप्रसाद, काशी [२] पं० बासुदेवप्रसाद शर्म्मा, दिल्ली (३) रेवरेण्ड जे० ट्रेल, जैपुर (४) कुंअर दशरथ सिंह, लखनऊ [५] पं० रामलोचन पांडे, भागलपुर (६) पं० जुगलकिशोर तिवारी, होशंगाबाद (७) बा० ज्ञानचन्द्र, देवबन्द (८) बाबू देवी प्रसाद, बिजावर ।

२७ मई १९०५–[१] रायसाहब रलाराम, लाहौर (२) लाला माधोराम मुख़ार, मेरठ ।

——:0:——